* ओ३म् *

दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह

[काशी-शास्त्रार्थ के तात्कालिक लेखक पं० सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा प्रकाशित काशी-शास्त्रार्थ विवरण से समन्वित]

सम्पादक—डा० भवानीलाल भारतीय

ट्रस्ट के उद्देश्य

प्राचीन वैदिक साहित्य का अन्वेषण, रक्षा तथा प्रचार तथा भारतीय संस्कृति, भारतीय शिक्षा, भारतीय विज्ञान और चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा।

●

ओ३म्

दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह

सम्पादक—
श्री डा० भवानीलाल जी भारतीय, एम. ए.

प्रकाशक—
श्री मन्त्री, रामलाल कपूर ट्रस्ट,
बहालगढ़ (सोनीपत, हरियाणा)

29-10-2013

मुद्रक—
सुरेन्द्र कुमार कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस, सोनीपत।

५०० प्रति] पौष २०२७ वि० [मूल्य ३-००

लेखक श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने जो विवरण लिखा था और उसे अपनी 'प्रत्नकम्र नन्दिनी' पत्रिका में भी छापा था, उसका महान् परिश्रम से उपलब्ध करके प्रकाशित करना। अभी तक सभी जीवन चरितकारों ने उसका स्वल्पांश ही उद्धृत किया था। उसे इस ग्रन्थ के अन्त में सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित करना इस संग्रह की महती विशेषता है।

श्रीमान् भारतीयजी के परिश्रम को देखकर मैं कह सकता हूं कि मैं स्वयं इतना शोध-कार्य नहीं कर सकता था। यह उनकी महती लगन ही का फल है। इस महत्त्वपूर्ण सम्पादन कार्य के लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं। मैंने मूल शास्त्रार्थों में यत्र तत्र आवश्यक टिप्पणियां बढ़ा दी हैं।

आशा ही नहीं पूर्णविश्वास है कि आर्य जनता श्रीमान् भारतीय जी के इस परिश्रम-साध्य महत्त्वपूर्ण कार्य से लाभ उठायेगी।

जिज्ञासु-शोध-प्रतिष्ठान
(रामलाल कपूर ट्रस्ट)
बहालगढ़, (सोनीपत-हरयाणा)

विदुषां वशंवदः
युधिष्ठिर मीमांसक

891

दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह

[आलोचनात्मक भूमिका तथा महत्त्वपूर्ण टिप्पणियों सहित महर्षि दयानन्द के अद्यावधि पुस्तकाकार एवं जीवन चरितों में पूर्णतया प्रकाशित शास्त्रार्थों का अनुसंधानपूर्ण सम्पादित संस्करण]

सम्पादक—डा० भवानीलाल भारतीय,
एम० ए०, पी० एच० डी०, सिद्धान्तवाचस्पति ।

शास्त्रार्थ-सूची

परिशिष्ट

प्राक्कथन

इस युग में वैदिक चर्चा के पुनरुद्धारक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने मन्तव्यों तथा विचारों के प्रसार के लिये व्याख्यान, प्रवचन, शंका-समाधान तथा शास्त्रार्थ की प्रणालियों को स्वीकार कर देश में सर्वत्र धर्मान्दोलन उपस्थित किया था। उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ आज से १०१ वर्ष पूर्व काशी में हुआ था, जिसमें उन्होंने प्रतिमापूजन का खण्डन किया तथा वाराणसी की पण्डित-मण्डली को मूर्तिपूजा-विधान की वैदिकता सिद्ध करने के लिए ललकारा। उसके पश्चात् तो वे अपने जीवन के अवशिष्ट काल में सर्वत्र वैदिकेतर मतावलम्बियों से शास्त्रार्थ करते दिखाई पड़ते हैं। पौराणिक पण्डितों के अतिरिक्त मौलवियों, पादरियों तथा जैन साधुओं से भी उनके शास्त्रार्थ हुये। उनके द्वारा किये गये समग्र शास्त्रार्थों की संख्या लगभग ५० ठहरती है।

ये शात्रार्थ लिखित और मौखिक दोनों रीतियों से होते थे। जहां शास्त्रार्थ का विवरण लेखक द्वारा लिपि-बद्ध कर लिया जाता वहां उसे यथासुविधा प्रकाशित भी कर दिया जाता था। ऐसे शास्त्रार्थ कालान्तर में पुस्तकाकार छप भी गये। गत वर्ष आर्य जगत् ने महर्षि दयानन्द के काशी-शास्त्रार्थ का शताब्दी उत्सव मनाया। तब यह अनुभव किया गया कि महर्षि के उन समस्त शास्त्रार्थों को एक पृथक् ग्रन्थ के रूप में सम्पादित कर प्रकाशित किया जाय। इसी योजना को क्रियान्वित करने हेतु इस शास्त्रार्थ-संग्रह का सम्पादन किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री महाराज के ८ शास्त्रार्थों का विवरण संगृहीत किया गया है। इन शास्त्रार्थों का चयन करने में मुख्य दृष्टि यह रही है कि उन्हीं शास्त्रार्थों को लिया जाय जो पुस्तकाकार छप चुके हैं। इस दृष्टि से काशी-शास्त्रार्थ, शास्त्रार्थ हुगली, सत्यधर्म विचार मेला चांदापुर, शास्त्रार्थ जालन्धर, सत्यासत्य विवेक—शास्त्रार्थ बरेली उल्लेखनीय हैं। शेष शास्त्रार्थ अजमेर, उदयपुर तथा मसूदा अद्यापि पुस्तक रूप में नहीं छपे, परन्तु उनका विशद विवरण स्वामी जी के जीवन चरित तथा अन्यत्र प्रकाशित हो चुका है। इस संग्रह में शास्त्रार्थों का मूलपाठ वही रखा गया गया है, जो या

तो तत् तत् पुस्तक में उपलब्ध है अथवा तत्कालीन किसी पत्र-पत्रिका अथवा महर्षि के जीवन चरित में वर्णित हुआ है। जो शास्त्रार्थ स्वामीजी के जीवन काल में पुस्तकाकार प्रकाशित हुये वे अन्यत्र भी छपे थे। इस दृष्टि से यहां हमने प्रत्येक शास्त्रार्थ के प्रारम्भ में तत् तत् शास्त्रार्थ का ऐतिहासिक विवेचन करते हुये उसके सम्बन्ध के प्रत्येक उल्लेखयोग्य तथ्य को प्रकाशित करने का प्रयास किया है।

इस सम्बन्ध में जिस आधारभूत सामग्री की सहायता ली गई है, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—मुन्शी बख्तावर सिंह सम्पादित **आर्य-दर्पण** आर्य समाज की सर्वाधिक प्राचीन मासिक पत्रिका थी। इसके पुराने अंकों में **काशी शास्त्रार्थ**, **हुगली शास्त्रार्थ**, **मेला चांदापुर** तथा **शास्त्रार्थ अजमेर** का विवरण प्रकाशित हुआ था। प्रथम तीन शास्त्रार्थ, जो कालान्तर में पुस्तक रूप में प्रकाशित हुये, उनका मूल आधार 'आर्यदर्पण' में प्रकाशित यही विवरण है। फर्रूखाबाद निवासी पं० गोपाल शास्त्री शर्मा लिखित **दयानन्द दिग्विजयार्क** के प्रथम खण्ड में काशी शास्त्रार्थ, जालन्धर शास्त्रार्थ, अजमेर शास्त्रार्थ, मेला चांदापुर तथा बरेली शास्त्रार्थ का संक्षिप्त विवरण प्रकाशित हुआ था। श्री महाराज का यह जीवन चरित उनके जीवनकाल में ही सन् १८८१ ई० में प्रकाशित हो चुका था। इसमें बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री मौजूद है। मसूदा (जिला अजमेर) में स्वामीजी का जैन साधु सिद्धकरण से जो लिखित शास्त्रार्थ हुआ था उसे अजमेर आर्यसमाज के मुख-पत्र **देश-हितैषी** ने अपने ज्येष्ठ, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष सं० १९३९ के प्रारम्भिक अङ्कों (खण्ड १, अङ्क २, ४, ५, ६, ७, ८) में धारावाही रूप से प्रकाशित किया था। इस पुस्तक के सम्पादन में इन सभी आधारभूत पत्र-पत्रिकाओं तथा ग्रन्थों से सहायता ली गई है।

स्वामीजी के जीवन चरितों में स्व० पं० लेखराम संगृहीत सामग्री के आधार पर लिखित उर्दू जीवन चरित का महत्त्व निर्विवाद है। इस अकेली पुस्तक में ही स्वामी जी के उपर्युक्त सभी शास्त्रार्थ न्यूनाधिक रूप से संगृहीत किये गये थे। पं० जगत्कुमार शास्त्री सम्पादित 'श्रीमद्दयानन्द ग्रन्थ संग्रह' में संगृहीत सत्यासत्य विवेक (शास्त्रार्थ बरेली) उपर्युक्त जीवन चरित से ही संकलित किया गया है। इसी वर्ष 'आर्ष साहित्य प्रचारक ट्रस्ट' दिल्ली द्वारा '**दयानन्द**

शास्त्रार्थ-संग्रह' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसमें स्वामीजी के ६१ शास्त्रार्थों (?) का विवरण छपा है। वस्तुतः इसमें वास्तविक शास्त्रार्थों के साथ साथ सामान्य रूप से किये गये शंका समाधान, प्रश्नोत्तर तथा विज्ञापनादि अवान्तर सामग्री को भी शास्त्रार्थ के नाम से प्रकाशित कर दिया गया है। इस पुस्तक के सम्पादक ने पं० लेखराम संगृहीत महर्षि का जीवन चरित तथा पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय रचित महर्षि के जीवन चरित को ही अपनी सामग्री का आधार बताया है। इस ग्रन्थ के छप जाने के उपरान्त भी हमने महर्षि के शास्त्रार्थों को पृथक् रूप से सम्पादित करने की आवश्यकता अनुभव की, तो उसका मुख्य कारण यही था कि उपर्युक्त ग्रन्थ में शास्त्रार्थों तथा सामान्य प्रश्नोत्तर एवं शंका समाधान के बीच ऐसी कोई विभाजक रेखा नहीं खींची गई थी, जिसके आधार पर पाठक यह समझ सकें कि शास्त्रार्थ निश्चित एवं पूर्व निर्धारित विषय या विषयों पर न्यायदर्शन प्रतिपादित वाद-प्रणाली का आश्रय लेकर किया गया है, जब कि प्रश्नोत्तर अथवा शंका-समाधान का विचार क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता है। इसी बात को लक्ष्य में रखकर हमने उन्हीं शास्त्रार्थों का सम्पादन किया है जो पुस्तक रूप में छपे अथवा जिनका पूर्ण विवरण हमें उपलब्ध हो सका।

आर्य समाज के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् तथा लेखक पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक ने **'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास'** लिख कर महर्षि के समग्र लिखित, प्रकाशित तथा अप्रकाशित वाङ्मय का ऐतिहासिक, तथ्यपरक एवं वस्तु-निष्ठ विवरण आर्य जनता के समक्ष सर्वप्रथम उपस्थित किया। कहना नहीं होगा कि यह अपनी दृष्टि से किया गया प्रथम तथा अद्वितीय प्रयास था। समृद्ध भाषाओं के लेखकों तथा साहित्यकारों के ग्रन्थों तथा उनके लेखन-कार्य का समग्र विवेचन करने की परम्परा रही है। आर्य समाज जैसी युग परिवर्तनकारी संस्था के प्रवर्त्तक के वाङ्मय का इस दृष्टि से विवेचन तथा मूल्यांकन करना आवश्यक भी था। 'दयानन्द ग्रन्थ संग्रह' के सम्पादक पं० जगत् कुमार शास्त्री ने भी स्वामी जी के प्रत्येक ग्रन्थ के विषय में जो आलोचनात्मक भूमिका लिखी है वह भी मीमांसक जी के द्वारा निरूपित सामग्री पर ही आधृत है। ऋषि के ग्रन्थों के इतिहास के साथ साथ पं० भगवद्दत्त

द्वारा सम्पादित '**ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन**' भी स्वामी जी के शास्त्रार्थों के इतिवृत्त का संग्रह करने में अभूतपूर्व सहायता करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादन में इन दोनों ग्रन्थों से प्रचुर सहायता ली गई है। कारण यह है कि श्री मीमांसक जी ने तो अपनी पुस्तक में स्वामी जी के प्रकाशित शास्त्रार्थों पर एक स्वतन्त्र अध्याय ही लिखा है, तथा उसमें अद्यतन उपलब्ध सभी सामग्री का पूर्णतया उपयोग कर शास्त्रार्थों के विवरण को सर्वाङ्गीण बनाने का प्रयास किया गया है।

गत मई में मेरी एक अन्य पुस्तक '**आर्यसमाज के शास्त्रार्थ-महारथी**' प्रकाशित हुई थी। इसके अनन्तर जब श्री मीमांसक जी ने मुझे स्वामी जी के शास्त्रार्थों के सम्पादन का कार्य सौंपा तो मैंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। पाठक देखेंगे कि अन्य शास्त्रार्थों की अपेक्षा काशी शास्त्रार्थ विषयक आलोचनात्मक भूमिका ने ग्रन्थ का पर्याप्त कलेवर घेर लिया है। इसका कारण भी प्रत्यक्ष है। इस शास्त्रार्थ का महत्त्व स्वामी दयानन्द के जीवन और व्यक्तित्व का अध्ययन करने की दृष्टि से भी निर्विवाद है। पं. सत्यव्रत सामश्रमी ने अपनी लेखनी से इस शास्त्रार्थ का जो विवरण '**प्रत्नकम्र नन्दिनी**' में प्रकाशित किया था, उसे अनूदित कर आलोचनात्मक टिप्पणियों सहित उद्धृत करना इस ग्रन्थ की एक मुख्य विशेषता मानी जा सकती है। पुस्तक के सम्पादन में ऐतिहासिक दृष्टि को प्रधानता दी गई है, जो वैज्ञानिक शोध एवं अनुसंधान की दृष्टि से भी आवश्यक है।

ग्रन्थ सम्पादन की मूल प्रेरणा श्री पं युधिष्ठिर जी मीमांसक से प्राप्त हुई, तदर्थ उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना तो आवश्यक है ही, श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर के श्रीमद्दयानन्द पुस्तकालय से **आर्य-दर्पण**, **देश-हितैषी** आदि प्राचीन पत्रों तथा महर्षि के काशी, चांदापुर आदि शास्त्रार्थों के प्राचीन संस्करण देखने का भी अवसर प्राप्त हुआ, तदर्थ यह लेखक सभा के मान्य मन्त्री श्री श्रीकरण जी शारदा तथा पुस्तकाध्यक्ष पं० भगवानस्वरूप जी न्यायभूषण का आभार मानता है।

श्रीमद्दयानन्दाश्रम, अजमेर
श्रावणी पूर्णिमा २०२७ वि.

विदुषां वशंवद,
भवानीलाल भारतीय
एम.ए.पी.एच.डी.

१. शास्त्रार्थ-काशी

सम्पादकीय

पौराणिक मत तथा पौत्तलिक उपासना के सुदृढ़ दुर्ग काशी की विद्वन्मण्डली को शास्त्रार्थ-समर में पराजित कर निग्रह-स्थान पर पहुंचाने वाले पुण्य-श्लोक स्वामी दयानन्द सरस्वती कार्तिक कृष्णा २ या ३ संवत् १९२६ वि. तदनुसार २२ या २३ अक्टूबर १८६९ई[१]. को काशी नगर में अवस्थित हुये। प्रथम उन्होंने गोसांई जी के बाग में निवास किया, पुनः अमेठी के राजा के आनन्द बाग में जो दुर्गाकुण्ड पर है, चले गये। काशी के पण्डितों से उनका जगत्-प्रसिद्ध शास्त्रार्थ कार्तिक शुक्ला द्वादशी, १९२६ वि० मंगलवार तदनुसार १६ नवम्बर[२] १८६९ को हुआ। उसी वर्ष वि. सं. १९२६ में इस शास्त्रार्थ का विवरण काशी-स्थित मुन्शी हरिवंशलाल के लाइट प्रेस से छप कर प्रकाशित हुआ। यह सम्भवतः केवल संस्कृत में ही था, तथा इसका नाम **'सत्यधर्म-विचार'** या **'तत्वधर्म-विचार'** जैसा कुछ था।

वैदिक-यंत्रालय की स्थापना काशी में माघ शुक्ला २ सं० १९३६ वि. को लक्ष्मी कुण्ड पर महाराज विजयानगराधिपति के स्थान पर हुई। मुन्शी बख्तावरसिंह इसके प्रथम प्रबंधक थे। मुन्शीजी ने अपने मासिक पत्र 'आर्य दर्पण' (जो आर्यसमाज का प्रथम मासिकपत्र था) के जनवरी १८८० ई. के अंक में इस शास्त्रार्थ का विवरण हिन्दी और उर्दू में समानान्तर कालमों में प्रकाशित किया था, जो आज भी वैदिक-यंत्रालय, अजमेर द्वारा प्रकाशित काशी-शास्त्रार्थ के संस्कृत पाठ के हिन्दी अनुवाद के रूप में प्रकाशित होता है। इससे अनुमान होता है कि इस अनुवाद के

---

१. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा संगृहीत सामग्री के आधार पर पं० घासीराम रचित महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की जीवन चरित भाग १ पृ. १९७ चतुर्थावृत्ति।

२. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा लिखित दयानन्द चरित्र में यह तिथि १७ नवम्बर दी हुई है, जिसे कालान्तर में उन्होंने स्वयं शुद्ध कर लिया था।

कर्ता मुन्शी बख्तावरसिंह ही थे। 'आर्य दर्पण' में काशी शास्त्रार्थ के प्रारम्भ में भूमिका रूप में मुन्शी बख्तावरसिंह ने लिखा है—

"हम उस शास्त्रार्थ को, कि जो संवत् १९२६ में स्वामी जी और काशी के पण्डितों में महाराजे काशी नरेश के सामने आनन्द बाग में दुर्गाकुण्ड के समीप हुआ था, यहां लिखते हैं, क्यों कि उसके ठीक-ठीक वृत्तान्त को बहुत ही कम लोग जानते हैं। कुछ तो उसको और का और ही समझ गये हैं और कुछ कि जिन्होंने ठीक शास्त्रार्थ को कि जिसको काशी में मुन्शी हरिवंश लाल ने 'लाइट प्रेस' (बनारस) में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया था उसको देखा ही नहीं, केवल उसी को कि जो 'दयानन्द-पराभूति' के नाम से काशी नरेश के यंत्रालय में कुछ का कुछ छपा है, और जिसमें कि स्वामी जी की बातों को उनके अभिप्राय से बहुत उल्टा प्रकाशित कर दिया है, उसी को ठीक शास्त्रार्थ समझ गये हैं। जब ये लोग स्वामीजी के व्याख्यान सुनते हैं और उनके रचित पुस्तकों को देखते हैं तो उसको इनसे उलटा ही पाकर भ्रम में पड़ जाते हैं। और एक बड़ी भारी बात भ्रम में पड़ने की यह भी हुई है कि वह शास्त्रार्थ केवल संस्कृत में ही हुआ था कि जिसको बहुत ही कम लोग समझ सकते थे। तब तो इस समय को बड़े भाग्य से आया समझ कर पोपों ने कुछ का कुछ ही लोगों पर विदित कराके अपनी जय प्रसिद्ध कर दी, अब हम इन सब भ्रम की बातों के नाश के लिये उस शास्त्रार्थ को कि जिसको मुन्शी हरिवंश लाल ने संवत् १९२६ में छपवाया था, शुद्ध करके और उस पर कितने एक नोट[1] लिखके यहां आर्य भाषा और उर्दू में ठीक २ प्रकाशित करते हैं। आशा है कि सब सज्जन मनुष्य पक्षपात रहित होकर इसको देखेंगे, और स्वामीजी और काशी के पण्डितों की व्यवस्था को ठीक-ठीक जान लेवेंगे।"

इस प्रारम्भिक टिप्पणी के पश्चात् उक्त अंक के पृष्ठ १० से पृष्ठ २० पर्यन्त काशी शास्त्रार्थ का विवरण हिन्दी और उर्दू में

१. इससे स्पष्ट है कि काशी-शास्त्रार्थ की पुस्तक में छपी टिप्पणियां मुन्शी बख्तावरसिंह की हैं, संस्कृत टिप्पणियां उन्होंने किसी से अनूदित करवाई होंगी।

छापा गया है। पृ. २१ से पृ. २४ पर्यन्त 'एडीटोरियल नोट्स' शीर्षक एक टिप्पणी और है, वह किञ्चित् परिवर्तन के साथ वैदिक यंत्रालय से प्रकाशित होने वाले संस्करण की भूमिका के रूप में छपती आ रही है। मुन्शी बख्तावरसिंह ही इस भूमिका के लेखक थे, और प्रथम दो संस्करणों (१९३७ वि. तथा १९३९ वि.) को छोड़ कर शेष संस्करणों की भूमिका के अन्त में प्रकाशित होने वाला 'प्रबंधकर्ता वैदिक यंत्रालय' शब्द उक्त मुन्शीजी का ही सूचक है।

बंगाल के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० सत्यव्रत सामश्रमी न केवल इस शास्त्रार्थ में उपस्थित ही थे, अपितु दोनों पक्षों की ओर से उन्हें लेखक चुना गया था, यह उन्हीं के द्वारा रचित **'ऐतरेयालोचन'** ग्रन्थ से विदित होता है। सामश्रमी जी ने इस शास्त्रार्थ का विवरण अपनी संस्कृत मासिक-पत्रिका **'प्रत्नकम्रनन्दिनी'** जिसका अंग्रेजी नाम 'The Hindu Commentator था, के दिसम्बर १८६९ (वि० सं० १९२६) के संख्या २८ अंक में प्रकाशित किया था। इसके कुछ अंश को 'आर्य दर्पण' के फरवरी १८८० के अंक में किसी व्यक्ति ने सम्पादक के नाम लिखे गए अपने पत्र में कतिपय आलोचनात्मक टिप्पणियों सहित प्रकाशित किया था। उस अंश को हम पाठकों के मनोरञ्जनार्थ ग्रन्थ के अन्त में प्रथम परिशिष्ट में दे रहे हैं।

श्री महाराज के जीवनी लेखकों ने सामश्रमीजी के इसी उद्धरण को अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। यथा पं० भीमसेन शर्मा के जामाता पं० सत्यव्रत शर्मा द्विवेदी ने 'श्री १०८ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवन चरितम्' शीर्षक 'वेद प्रकाश यंत्रालय' इटावा से प्रकाशित जीवन चरित के पृ० १३७ से १४० तक **प्रत्नकम्रनन्दिनी** में प्रकाशित काशी-शास्त्रार्थ के उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण को ही उद्धृत किया है। देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा संगृहीत सामग्री पर आधृत जीवन चरित के प्रथम भाग में भी इसी संस्कृत अंश का हिन्दी अनुवाद दिया गया है। गत वर्ष जब काशी में काशी-शास्त्रार्थ की शताब्दी का उत्सव आर्यसमाज द्वारा आयोजित किया गया, तो आर्यसमाज के इस आयोजन की प्रतिद्वन्द्विता में पौराणिकों द्वारा 'सनातनधर्म विजयोत्सव' मनाया गया। इस उपलक्ष्य में स्वामी केशवपुरी ने 'काशी के विद्वानों और दयानन्दजी का सच्चा काशी शास्त्रार्थ' प्रकाशित किया। वस्तुतः इस पुस्तक का

प्रथम संस्करण साहित्योपाध्याय विद्यावारिधि पं० मथुराप्रसाद दीक्षित ने वी० एल० पावगी के 'हितचिंतक प्रेस' रामघाट बनारस सिटि से १९१६ ई० में प्रकाशित किया था। यह उसका दूसरा संस्करण है। इस ग्रन्थ की भूमिका में दीक्षितजी ने इसे 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' से उद्धृत किया बताया है, तथा यह भी लिखा है कि गवर्नमेंट लाईब्रेरियन पं. विन्ध्येश्वरीप्रसाद जी से उन्हें उक्त पत्रिका प्राप्त हुई थी। पं० माधवाचार्य द्वारा प्रकाशित 'लोकालोकपत्रिका' के विशेषांक (फरवरी ७०) में भी इसी विवरण को उद्धृत किया गया है।

काशी-शास्त्रार्थ की महत्ता और उसके लोकव्यापी प्रभाव का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि समकालीन सभी पत्र पत्रिकाओं ने उसकी चर्चा की। अनेक पत्रों के सम्पादकों ने उस पर अपनी टिप्पणियां लिखीं तथा पक्ष-विपक्ष में अनेक मत अभिव्यक्त किये गये। देवेन्द्रबाबू ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक तत् तत् पत्रों में प्रकाशित सम्मतियों का संग्रह किया था। पाठकों के सूचनार्थक उन पत्रों का विवरण यहां दिया जाता है—

१. एक सज्जन ने A. M. K. के नाम से २० नवम्बर सन् १८६९ को काशी से एक पत्र लिखकर The Poineer नामक अंग्रेजी पत्र में प्रकाशित कराया, जिसमें काशी के विद्वानों के स्वामीजी के प्रति किये गये व्यवहार की आलोचना की गई थी।

२. एक अन्य ईसाई लेखक ने A. F. R. H. के नाम से The christian Intelligeneer के मार्च १८७० के अंक में स्वामी जी के शास्त्रार्थ के विषय में निष्पक्ष भाव से लेख लिखा।

३. The Hindoo Patriot के १७ जनवरी १८७० के अंक में भी एक ऐसा ही लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें पण्डितों के व्यवहार को निन्दास्पद बताया गया।

४. उक्त 'पायोनियर' पत्रिका के ८ जनवरी १८८० के अंक में (शास्त्रार्थ के लगभग ११ वर्ष पश्चात्) एक व्यक्ति ने शास्त्रार्थ का पूर्वाग्रह युक्त विवरण प्रस्तुत करते हुये स्वामीजी को पराजित घोषित किया। इस पक्षपातपूर्ण वृत्तान्त में तो यहां तक लिखा गया— "The Swami hung down his head, and the Pandits clapped

their hands in triumph" अर्थात् स्वामीजी ने अपना सिर झुका लिया और विजयी पण्डितों ने करतल ध्वनि की। आगे चलकर इसी लेखक ने लिखा—"The Swami remained at Banaras for some days but he had lost his prestige." स्वामी कुछ दिनों तक बनारस में रहे, परन्तु उनकी प्रतिष्ठा भंग हो गई।

इस विवरण को यद्यपि लेखक ने अनतिरञ्जित और यथार्थ (unvarnished account) बताया है, तथापि पायोनियर के ही १५ जनवरी १८८० के अंक में एक अन्य व्यक्ति ने उक्त अंक में प्रकाशित शास्त्रार्थ के पूर्वाग्रह एवं पक्षपातपूर्ण विवरण का प्रतिवाद करते हुये इस सम्पूर्ण विवाद में पण्डितों की तर्क-प्रणाली की आलोचना करते हुए पूछा है—"उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि स्वामीजी पण्डितों से पराजित हो गये थे?"[1]

उपर्युक्त अंग्रेजी पत्रों के अतिरिक्त कतिपय अन्य देशी भाषाओं के पत्रों ने भी शास्त्रार्थ पर अपनी निष्पक्ष सम्मति व्यक्त की।

ब्रह्मसमाज के प्रधानाचार्य महर्षि-कल्प देवेन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा प्रवर्तित तथा अक्षयकुमार दत्त द्वारा सम्पादित 'तत्त्व-बोधिनी' पत्रिका के ज्येष्ठ १७९४ बङ्गाब्द के अंक में लिखा गया—वर्तमानिक काशी नरेश के उद्योग से नाना देशों के पण्डित गणों ने उक्त मत खण्डन करने के अर्थ विचार किया। जैसा कि (धर्म-विचार पुस्तक के) पढ़ने से विदित होता है कि "वेद से प्रतिमापूजन व्यवस्था देकर कोई पण्डित स्वामी दयानन्दजी को न हरा सका, इसलिए स्वामीजी को बड़ा वेद-वेत्ता समझना चाहिए।"

पुनः इसी पत्रिका के आसौज १७९४ शालिवाहन संवत् के अन्त में दुर्गोत्सव का वर्णन करते हुये उक्त पत्रिका के सम्पादक ने लिखा—"इस समय स्वामी दयानन्द नामी एक वेदज्ञ संन्यासी

---

1. "How can in the face of the above facts boldly assert that the Swami got the worst of the fight ? I leave for your impartial readers to judge."

२. इससे अनुमान होता है कि काशी-शास्त्रार्थ के प्रथम-संस्करण का नाम 'धर्म-विचार' या 'सत्यधर्म-विचार' जैसा ही कुछ था।—सम्पादक

काशी आदि नगरों में आकर घंटा-घोष से मूर्तिपूजा को वेद-विरुद्ध प्रतिपादन करता था। इस विषय में काशी नरेश की पण्डित-सभा तथा अन्य देशों के विद्वान् भी उपस्थित थे, परन्तु किसी ने भी वेदों से प्रतिमा-पूजन न दिखाया।"

'रुहेलखण्ड-समाचार' के नवम्बर १८६९ ई० के अंक में लिखा गया—"दयानन्द सरस्वती स्वामी······काशी के पण्डितों को उन्होंने जीत लिया, और काशी के पडितों ने झूठ ही अपनी जय की धूम मचा दी।"

ब्रह्मसमाज के पंजाब-प्रान्तीय नेता श्री नवीनचन्द्र राय द्वारा सम्पादित 'ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका' लाहौर के अप्रैल १८७० के अंक में लिखा गया—"शास्त्रार्थ में दोनों ओर से व्यर्थ वितण्डावाद बहुत हुआ, और इसमें सन्देह नहीं कि प्रतिमापूजन वेदों से पण्डित सिद्ध न कर सके।"

पत्र-पत्रिकाओं में अभिव्यक्त शास्त्रार्थ-विषयक सम्मतियों से जिन लोगों को सन्तोष नहीं हुआ, उन्होंने व्यक्तिगत जानकारी प्राप्त कर शास्त्रार्थ के फलागम को जानने का प्रयास किया। श्रीमहाराज के जीवन-काल में ही उनकी जीवन-गाथा को 'दयानन्द दिग्विजयार्क'[1] शीर्षक से तीन खण्डों में निबद्ध करने वाले पंडित गोपाल शास्त्री शर्मा ने उपर्युक्त ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के ३०वें पृष्ठ पर लिखा—"उन्हीं दिनों की बात है, हमको माह अगहन में मुकाम जौन्हरी परगना एत्मादपुर जिला आगरा में दो अच्छे विद्वान् संन्यासी एक कुएं पर बैठे मिले। वे काशी से आये थे, मथुरा को जाते थे। उनके मुख से प्रथम इस शास्त्रार्थ का समाचार वहां मिला था। उनने स्पष्ट काशी वालों की हार बताई और उनकी विद्या तथा बुद्धि और चाल-चलन पर उन लोगों ने अत्यन्त ही शोक किया। पीछे से मुकाम फर्रुखाबाद में एक महाराष्ट्र के परमहंस आत्मानन्द जी मिले, जो खुद शास्त्रार्थ के समय ऐन स्वामीजी के निकट बैठे थे। उन्होंने ठीक वैसा ही सब हाल कहा जैसा कि पुस्तक शास्त्रार्थ में लिखा है और स्वामीजी की जीत बताई और बहुत कुछ

१. इस पुस्तक का प्रथम खण्ड १८८१ ई० (१९३७ वि०) में प्रकाशित हुआ था।

काशी वालों के कर्मों पर बारम्बार धिक्कारते थे। तत्पश्चात् प्रसिद्ध साहूकार लाला पन्नीलालजी मिले। उनने भी सब हाल ऐसा ही कहा। वे खुद खास इसी बात की तहकीकात को फर्रूखाबाद से काशी गये थे। अनन्तर जब हमको काशी जाने का प्रसङ्ग हुआ तो वहां भी हमारे बहुत से मिलापी और रिश्तेदारों ने स्वामी जी की अतिप्रशंसा के साथ उनकी जीत और काशीवालों की हार बताई।"

इस उद्धरण से काशी-शास्त्रार्थ के प्रत्यक्ष-दर्शियों की साक्षी श्री महाराज के विजयी होने का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

काशी की पण्डित-मण्डली को श्री महाराज की शास्त्रार्थ में विजय के समाचारों ने इतना व्यथित और व्याकुल बना दिया कि उन्होंने अविलम्ब दो पुर्स्तकें 'दयानन्द-पराभूति' संस्कृत में तथा 'दुर्जन-मुखमर्दन' भाषा में लिख कर काशीराज के यन्त्रालय से प्रकाशित कीं। इन पुस्तकों का अन्वेषण किया जाना चाहिए। स्वामी जी की इस वाराणसी विजय ने उस नगर के निवासियों को कितना आकुल व्याकुल तथा आन्दोलित कर दिया, यह इस बात से भी जाना जाता है, कि वल्लभ-सम्प्रदायानुयायी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे प्रबुद्ध साहित्यकार भी अपने आपको तटस्थ नहीं रख सके। उन्होंने ६४ प्रश्नों की एक 'दूषण-मालिका' शीर्षक पुस्तक लिख कर उसे 'मूर्ति-पूजन का निषेध करने वाले दयानन्द प्रभृति लोगों के गले की दूषण-मालिका का अभिधान प्रदान किया। यह पुस्तक सर्वप्रथम १९२७ वि० में काशी की 'लाजरस कम्पनी' के मेडिकल हाल प्रेस में छपी। इसका द्वितीय संस्करण १८८८ ई० में 'खड्ग-विलास' प्रेस बांकीपुर पटना से छपा। मूर्तिपूजा जैसे कुसंस्कार के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाने वाले परिव्राजक दयानन्द को अपनी आलोचना का शिकार बनाते हुये हरिश्चन्द्र ने अपनी भूमिका में लिखा—

श्री श्रीवल्लभो विजयते

भूमिका

अथ दयानन्द नामी क्या जानै कौन जाति वा किस आश्रम के कोई नग्न पुरुष सब देशों में भ्रमण करते हुये सनातन सद्धर्म्म

रूपी सूर्य को राहु की भांति ग्रास करते हुये इसी बहाने अपना नाम लोगों में विदित करते हए और अपने वाक्य बना के आडम्बर से साधु लोगों का हृदय दहन करते हुये काशी में आये और दुर्गाकुण्ड निवासियों के सहवासी हुये, और उनने जो व्यर्थ उपद्रव किये वह सब पर विदित है। अब उन्होंने एक छोटी सी पुस्तक[1] छपवा कर लोगों पर यह विदित करना चाहा है कि मैं हारा नहीं। इससे मैंने ऐसा विचार किया कि ऐसे मनुष्य से सम्भाषण करना उचित नहीं और पत्र द्वारा शास्त्रार्थ करना जिसमें सब लोगों पर सदसत् का प्रकाश और हारने जीतने का निश्चय हो जाय, इस हेतु यह दूषणमालिका उनके गले में पहनाई जाती है। उनको उचित है कि इन सब प्रश्नों का प्रतिपद उत्तार दें. और इसी प्रकार से बराबर शास्त्रार्थ होय। और इतने प्रश्नों का एक जीतने के इश्तिहार की भांति उत्तार न दिया जाय, क्योंकि इन शब्दों के प्रति शब्द का उत्तार न देने से परास्त समझे जायेंगे, और प्रश्नोत्तार करते करते जो थक जाय और जिसकी बुद्धि में उत्तार देने की युक्ति न आवै वह हारा समझा जायगा।

१८७० ई.
काशी

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित दूषण-मालिका की इस भूमिका के कतिपय शब्द और शैली स्वामी दयानन्द रचित 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के वेद-संज्ञा-विचार प्रकरण की आलोचना में लिखित संस्कृत-पुस्तक 'महामोह-विद्रावण' की शैली और शब्दावली[2] से मिलते हैं। इसे आकस्मिक संयोग कहा

---

१. यह पुस्तिका सम्भवतः वही होगी जिसे मुन्शी हरिवंशलाल ने लाईट प्रेस बनारस से सं० १९२६ में ही प्रकाशित किया था।

२. अथैकदा पवित्रतमायां सुलभसुभगगाङ्गप्रवाहायां वाराणस्यां विज्ञैरज्ञैः सर्वैरपि धर्मध्वजशिरोमणिः पुण्यजनप्रवर इति समधिगतः पङ्क-बहुलाल्पजलात्पल्वलात् सद्यः काश्यादिपुण्यतीर्थभुवो दारयन्निव कश्चिद् भिक्षुवेषी देवनिन्दाघोरशब्दघुरघुरायितमुखः कलंकयन्निव स्ववेषं प्लावयन्निवाज्ञानाम्भसि जगदशेषं, संजयन्निव सतां चेतसः क्लेशं, वञ्चयन्निव स्वदेशं वस्तुतः स्वात्मानमेव वञ्चयन् कलुषयंश्च समुपागमत्।" महामोह विद्रावण का उक्त वाक्य दूषणमालिका की भूमिका के प्रारम्भिक वाक्य से किञ्चित् समानता रखता है।

जाय या हरिश्चन्द्र की शैली का अनुकरण महामोह-विद्रावण के लेखक ने किया, यह पृथक् विचारणीय है। अस्तु।

भारतेन्दु द्वारा प्रस्तुत ६४ प्रश्न तो अत्यन्त साधारण कोटि के हैं, तथा उनसे लेखक की शास्त्रीय योग्यता का दिवालियापन ही झलकता है। जिस विद्वद्मूर्धन्य दयानन्द की तेजस्वी प्रज्ञा के सम्मुख बाल शास्त्री और विशुद्धानन्द जैसे पण्डित गण भी दिग्मूढ़ से हो गये, उन सर्वशास्त्र-निष्णात महर्षि को भारतेन्दु जैसे हिन्दी लेखक द्वारा शास्त्रार्थ के लिये आहूत किया जाना विडम्बना ही कही जा सकती है।

पं. सत्यव्रत सामश्रमी ने काशी-शास्त्रार्थ का जो विस्तृत विवरण अपनी 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' पत्रिका में प्रकाशित किया था, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह विवरण उसी मूल लेख पर आश्रित है, जिसे उन्होंने काशी-शास्त्रार्थ के समय लेखनी-बद्ध किया था। हम उसे हिन्दी-अनुवाद तथा आवश्यक आलोचनात्मक टिप्पणियों के सहित इस संग्रह के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में दे रहे हैं।

शास्त्रार्थ में सम्मिलित विशिष्ट पौराणिक विद्वान्

प्रतिमा-पूजन को वेदोक्त सिद्ध करने हेतु इस शास्त्रार्थ में जिन विद्वानों ने भाग लिया उनमें से कतिपय प्रमुख व्यक्तियों के नाम इस प्रकार हैं—(१) स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती (२) दाक्षिणात्य पं० बाल शास्त्री (३) पं० शिव सहाय शास्त्री (४) माधवाचार्य (५) वामनाचार्य (६) देवदत्त शर्मा (७) जयनारायण तर्क वाचस्पति (८) चन्द्रदत्त त्रिपाठी (९) राधामोहन तर्कवागीश (१०) दुर्गादत्त (११) बस्तीराम दूबे (१२) काशीप्रसाद शिरोमणि (१३) हरिकृष्ण व्यास (१४) अम्बिकादत्त व्यास (१५) घनश्याम (१६) ठाकुरदत्त (१७) हरिदत्त दूबे (१८) भैरवदत्त (१९) श्रीधर शुक्ल (२०) विश्वनाथ मैथिल (२१) नवीननारायण तर्कालंकार (२२) मदनमोहन शिरोमणि (२३) कैलाशचन्द्र शिरोमणि (२४) माया कृष्ण वेदान्ती (२५) धनीराम (२६) नारायण शास्त्री (२७) देवधर (२८) नरसिंह शास्त्री (२९) परमहंस जवाहर दास उदासी (३०) ताराचरण तर्करत्न (३१) गणेशप्रसाद श्रोत्रिय (३२) स्वामी निरंजनानन्द (३३) राम शास्त्री (३४) शालिग्राम (३५) ढुढ़िराज शास्त्री (३६) राम मिश्र शास्त्री (३७)

भारद्वाज शास्त्री (३८) रामकृष्ण शास्त्री (३९) दामोदर शास्त्री (४०) बाबू प्रमदादास मित्र।

उपर्युक्त विद्वान् पण्डितों के अतिरिक्त स्वयं काशी नरेश, उनके भ्राता, उनके राजकुमार आदि काशी राजपरिवार के लोगों के साथ-साथ फतहनारायण सिंह शर्मा, ऐश्वर्य नारायण सिंह शर्मा, तेजसिंह वर्मा रईस मैनपुरी, रावकृष्णदेव शरण सिंह, चौधरी गुरुदत्त सिंह शर्मा, हजारी यदुनन्दन नागल, बा० हरिश्चन्द्र गुप्त (भारतेन्दु) तथा बाबू गोकुलचन्द (भारतेन्दु के अनुज) जैसे प्रतिष्ठित पुरुष भी शास्त्रार्थ में विद्यमान थे।

उपर्युक्त ५१ व्यक्ति तथा मूर्तिपूजनादि अवैदिक मन्तव्यों के निर्भीक आलोचक दयानन्द सरस्वती कोतवाल रघुनाथ प्रसाद सहित दालान में बैठे। दालान से बाहर तीन सौ व्यक्ति बैठे थे। बाहर मैदान में अनुमान साठ हजार जनता शास्त्रार्थ देखने के लिये उमड़ पड़ी। जिस आनन्द बाग में यह शास्त्रार्थ हुआ वह अमेठी नरेश माधव सिंह जी का था। उनके पौत्र राजकुमार रणञ्जयसिंह जी आर्यसमाज के श्रद्धालु भक्त तथा अनुयायी हैं। उन्होंने स्व० पं० महेशप्रसाद जी मौलवी, आलिम फाजिल (फारसी एवं अरबी विभाग के अध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) की प्रेरणा से निम्न शिलालेख उस स्थान पर लगा दिया है, जहां यह शास्त्रार्थ सम्पन्न हुआ था—

शास्त्र-द्वन्द्वाङ्कचन्द्रेऽब्दे वैक्रमे कार्तिके सिते।
भौमे भास्वात्तिथौ दिव्ये मूर्तिपूजः विनिर्णये॥
अमेठ्यानन्द बागेऽस्मिन् काशिराज-सभापतौ।
जनौघे विपुले वादः प्रवृत्तः श्रुतितत्परः॥
विशुद्धानन्दसुप्रज्ञैर्बालशास्त्र्यादिभिर्बुधैः।
शास्त्रार्थमकरोत् साकं दयानन्दो यतिर्महान्॥
भगवान्बख्शभूपाल-वचनात् तत्सुतः सुधीः।
अलेखयच्छिलालेखं श्रीमान् राजा रणञ्जयः॥

अर्थात् १९२६ वि० कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष मंगलवार द्वितीया के दिन मूर्तिपूजा का निर्णय करने हेतु अमेठी नरेश के इस बाग में काशीराज के सभापतित्व में विपुल जन समूह के बीच

वेद पर आधारित शास्त्रार्थ हुआ। विशुद्धानन्द तथा बाल शास्त्री जैसे लोक-विश्रुत विद्वानों के साथ महान् यति दयानन्द ने शास्त्रार्थ किया। राजा भगवान् बख्श की आज्ञा से उनके पुत्र विद्वान् राजा रणज्जय सिंह ने इस शास्त्रार्थ की स्मृति में यह लेख लगवाया है।

काशी-शास्त्रार्थ भारत के धर्मक्षेत्र में अद्भुत क्रान्ति उत्पन्न करने वाला महा समर था, जिसमें अविचल ईश्वर-विश्वासी दयानन्द एकमेव परमात्मा के विश्वास पर ही विचार संग्राम में अवतीर्ण हुआ। "शास्त्रार्थ प्रारम्भ होने से पूर्व श्रीमहाराज ने क्षौर कराया, स्नान किया और अपने सुन्दर शरीर पर मृतिका लगाई पुनः पद्मासनस्थ होकर थोड़ी देर परमेश्वर का ध्यान किया और फिर भोजन किया।" यह विवरण श्री महाराजजी के जीवन चरित में उपलब्ध होता है। पौराणिकों के आसन्न दुर्व्यवहार की आशंका से भयभीत अपने भक्त बलदेव को महाराज ने इन शब्दों में आश्वस्त किया था। ऐ "बलदेव, क्या चिन्ता है, एक मैं हूं, एक ईश्वर है, एक धर्म है और कौन है?"

जिन लोगों ने इस शास्त्रार्थ में स्वामी जी के प्रति सदाशयता का व्यवहार किया, उनमें कोतवाल रघुनाथ प्रसाद का नाम उल्लेखनीय है, जिसने श्रीमहाराज के लोक-कल्याण हेतु समर्पित अमूल्य शरीर की रक्षा ही नहीं की, अपितु वह उनके व्यक्तित्व के प्रति प्रणत भाव भी रखता था। साथ ही स्वामोजी के हितेच्छु पं० ज्योतिस्वरूप उदासी, साधु जवाहरदास उदासी तथा उन अज्ञातनामा परमहंसों का भी आर्यसमाज को कृतज्ञ होना चाहिए जो यद्यपि साक्षात्रूप से मूर्तिपूजा का खण्डन करने में अपने को असमर्थ पाते थे, परन्तु स्वामीजी को अपने वर्ण का संन्यासी समझकर उनके प्रति अपूर्व सहानुभूति का भाव रखते थे।

काशी शास्त्रार्थ के विभिन्न संस्करण तथा तत्-सम्बन्धी साहित्य

१. काशी-शास्त्रार्थ का मुन्शी हरिवंशलाल के स्टार प्रेस से प्रकाशित १९२६ वि० का प्रथम संस्करण।

२. वैदिक यन्त्रालय का संस्करण—(१९६९ ई० तक १३ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।)

३. आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर का संस्करण।

४. गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली का संस्करण।

५. शास्त्रार्थ-काशी भाषा व उर्दू।

६. काशी के विद्वानों और दयानन्द जी का सच्चा काशी-शास्त्रार्थ—मथुरा प्रसाद दीक्षित।

७. काशी-शास्त्रार्थ का इतिवृत्त—आचार्य विश्वश्रवाः व्यास, २०२६ वि० में प्रकाशित।

काशी-शास्त्रार्थ-विषयक इस आलोचनात्मक भूमिका के पश्चात् वैदिक-यंत्रालय द्वारा प्रकाशित शास्त्रार्थ का मूल-पाठ यंत्रालय के तत्कालीन प्रबन्धकर्त्ता की भूमिका सहित आगे दिया जाता है।

भूमिका

हम पाठकों को इस काशी के शास्त्रार्थ का (जो कि संवत् १९२६ वि० कार्तिक सुदि १२ मङ्गलवार के दिन "स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी" का काशीस्थ 'स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती' तथा 'बालशास्त्री' आदि पण्डितों के साथ हुआ था) तात्पर्य सहज में प्रकाशित होने के लिये विदित करता हूं।

इस संवाद में स्वामीजी का पक्ष पाषाणमूर्तिपूजनादिखण्डन-विषय और काशीवासी पण्डितजनों का मण्डन विषय था। उनको वेदप्रमाण से मण्डन करना उचित था, सो कुछ भी न कर सके। क्योंकि जो कोई भी पाषाणादिमूर्तिपूजनादि में वैदिक प्रमाण होता तो क्यों न कहते और स्वपक्ष को वैदिक प्रमाणों से सिद्ध किये विना वेदों को छोड़कर अन्य मनुस्मृति आदि ग्रन्थ वेदों के अनूकूल हैं वा नहीं. इस प्रकरणान्तर में क्यों जा गिरते? क्योंकि जो पूर्व-प्रतिज्ञा को छोड़ के प्रकरणान्तर में जाना है, वही पराजय का स्थान है। ऐसे हुए पश्चात् भी जिस जिस ग्रन्थान्तर में से जो जो पुराण आदि शब्दों से ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थों को सिद्ध करने लगे थे सो भी सिद्ध न

कर सके, पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्तिपूजा को सिद्ध करना चाहा था वह भी न हो सका। पुनः पुराण शब्द विशेष्य वा विशेषणवाची है, इस में स्वामीजी का पक्ष विशेषणवाची और काशीस्थ पण्डितों का पक्ष विशेष्यवाची सिद्ध करना था, इसमें बहुत इधर-उधर के वचन बोले परन्तु सर्वत्र स्वामीजी ने विशेषणवाची पुराण शब्द को सिद्ध कर दिया और काशीस्थ पण्डित लोग विशेष्यवाची सिद्ध नहीं कर सके। सो आप लोग देखिये कि शास्त्रार्थ की इन बातों से क्या ठीक-ठीक विदित होता है ?

और भी देखने की बात है कि जब माधवाचार्य्य दो पत्रे निकाल के सबके सामने पटक के बोले थे कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है? उस पर स्वामीजी ने उसको भी विशेषणवाची सिद्ध कर दिया, परन्तु काशी निवासी पण्डितों से कुछ भी न बन पड़ा। एक बड़ी शोचनीय यह बात उन्होंने की, जो किसी सभ्य मनुष्य के करने योग्य न थी, कि ये लोग सभा में काशीराज महाराज और काशीस्थ विद्वानों के सन्मुख असभ्यता का वचन बोले। क्या स्वामीजी के कहने पर भी काशीराज आदि चुप होके बैठे रहें और बुरे वचन बोलने वालों को न रोकें ? क्या स्वामीजी का पांच मिनट दो पत्रों के देखने में लगा के प्रत्युत्तर देना विद्वानों की बात नहीं थी ? और क्या सबसे बुरी बात यह नहीं थी कि सब सभा के बीच ताली शब्द लड़कों सदृश किया, और ऐसे महा असभ्यता के व्यवहार करने में कोई भी उनको रोकने वाला न हुआ ? और क्या एक दम उठके चुप होके बगीचे से बाहर निकल जाना और क्या सभा में वा अन्यत्र झूठा हल्ला करना धार्मिक और विद्वानों के आचरण से विरुद्ध नहीं था ?

यह तो हुआ सो हुआ परन्तु एक महा खोटा काम उन्होंने और किया, जो सभा के व्यवहार से अत्यन्त विरुद्ध है. कि एक पुस्तक स्वामीजी की झूठी निन्दा के लिये काशीराज के छापेखाने में छपा कर प्रसिद्ध किया और चाहा कि उनकी बदनामी करें और करावें, परन्तु इतनी झूठी चेष्टा किये पर भी स्वामीजी उनके कर्मों पर ध्यान न देकर वा उपेक्षा करके पुनरपि उनको वेदोक्त उपदेश प्रीति से आज तक बराबर करते ही जाते हैं, और उक्त २६ के संवत् से लेके अब संवत् १९३७ तक छठी वार काशीजी में आके सदा

विज्ञापन लगाते जाते हैं कि पुनरपि जो कुछ आप लोगों ने वैदिक प्रमाण वा कोई युक्ति पाषाणादि मूर्तिपूजा आदि के सिद्ध करने के लिए पाई हो तो सभ्यतापूर्वक सभा करके फिर भी कुछ कहो वा सुनो, इस पर भी कुछ नहीं करते, यह भी कितने निश्चय करने की बात है। परन्तु ठीक है कि जो कोई दृढ़ प्रमाण वा युक्ति काशीस्थ पण्डित लोग पाते अथवा कहीं वेद शास्त्र में प्रमाण होता तो क्या सन्मुख होके अपने पक्ष को सिद्ध करने न लगते और स्वामीजी के सामने न होते ?

इस से यही निश्चित सिद्धान्त जानना चाहिये कि जो इस विषय में स्वामीजी की बात है वही ठीक है। और देखो स्वामीजी की यह बात संवत् १९३६ के विज्ञापन से भी, कि जिस में सभा के होने के अत्युत्तम नियम छपवा के प्रसिद्ध किये थे, सत्य ठहरती है।

उस पर पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य्य ने अनर्थयुक्त विज्ञापन छपवा के प्रसिद्ध किया था, उस पर स्वामीजी के अभिप्राय से युक्त दूसरा विज्ञापन उस के उत्तर में पण्डित भीमसेन शर्मा ने छपवा कर कि जिसमें स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीजी और बालशास्त्रीजी से शास्त्रार्थ होने की सूचना थी प्रसिद्ध किया था। उस पर दोनों में से कोई एक भी शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त न हुआ, क्या अब भी किसी को शङ्का रह सकती है कि जो जो स्वामीजी कहते हैं वह वह सत्य है वा नहीं ? किन्तु निश्चय करके जानना चाहिए कि स्वामीजी की सब बातें वेद और युक्ति के अनुकूल होने से सर्वथा सत्य ही है। और जहां छान्दोग्य उपनिषद आदि को स्वामीजी ने वेद नाम से कहा है वहां वहां उन पडितों के मत के अनुसार कहा है किन्तु ऐसा स्वामी जी का मत नहीं। स्वामीजी तो मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मानते हैं, क्योंकि जो मन्त्रसंहिता हैं, वे ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्त सत्यार्थ-युक्त हैं, और ब्राह्मणग्रन्थ जीवोक्त अर्थात् ऋषि मुनि आदि के कहे हैं वे भी प्रमाण तो हैं, परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण हो भी सकते हैं, और मन्त्रसंहिता तो किसी के विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण कभी नहीं हो सकती, क्योंकि [वेद] तो स्वतःप्रमाण हैं॥

प्रबन्धकर्ता, वैदिक यंत्रालय
काशी

संवत् १९३७
सन् १८८०

शास्त्रार्थ-काशी

धर्माधर्मयोर्मध्ये शास्त्रार्थविचारो विदितो भवतु ।

एको दिगम्बरस्सत्यशास्त्रार्थविद् दयानन्दसरस्वती स्वामी गङ्गातटे विहरति । स ऋग्वेदादिसत्यशास्त्रेभ्यो निश्चयं कृत्वैवं वदति—

"वेदेषु पाषाणादिमूर्त्तिपूजनविधानं शैवशाक्तगाणपत-वैष्णवादिसम्प्रदाया रुद्राक्षत्रिपुण्ड्रादिधारणं च नास्त्येव, तस्मादेतत् सर्वं मिथ्यैवास्ति, नाचरणीयं कदाचित् । कुतः ? एतत् वेदविरुद्धाप्रसिद्धाचरणे[1] महत् पापं भवतीतीयं वेदादिषु[2] मर्यादा लिखितास्ति ।"

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी दिगम्बर गङ्गा के तीर विचरते रहते हैं, जो सत्पुरुष और सत्यशास्त्रों के वेत्ता हैं । उन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेदादि का विचार किया है, सो ऐसा सत्यशास्त्रों को देख निश्चय करके कहते हैं कि—"पाषाणादि मूर्त्तिपूजन, शैव शाक्त गाणपत और वैष्णव आदि संप्रदायों, और रुद्राक्ष-तुलसी-माला त्रिपुण्ड्रादि-धारण का विधान कहीं भी वेदों में नहीं है, इससे ये सब मिथ्या ही हैं, कदापि इनका आचरण न करना चाहिए । क्योंकि वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध के आचरण से बड़ा पाप होता है, ऐसी मर्यादा वेदादि में लिखी है ।"

एवं हरिद्वारमारभ्य गङ्गातटे अन्यत्रापि यत्र कुत्रचिद् दयानन्दसरस्वती स्वामी खण्डनं कुर्वन् सन् काशीमागत्य दुर्गाकुण्डसमीप आनन्दारामे यदा स्थितिं कृतवान् तदा काशीनगरे महान् कोलाहलो जातः । बहुभिः पण्डितै-

१. वेद-विरुद्धं च अप्रसिद्धं च, वेदविरुद्धाप्रसिद्धे, तयोराचरणमित्यर्थः । अप्रसिद्धत्वं चाप्तपुरुषेषु । वेदविरुद्धाचरणे असदाचरणे च महत् पापमाहुराप्ताः ।

२. आदिपदेन धर्मशास्त्रादीनि ।

वेदादिपुस्तकानां मध्ये विचारः कृतः, परन्तु क्वापि पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादिविधानं न लब्धम् ।

इस हेतु से उक्त स्वामीजी हरिद्वार से लेकर सर्वत्र इसका खण्डन करते हुए काशी में आके दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग में स्थित हुए। उनके आने की धूम मची, बहुत से पण्डितों ने वेदों के पुस्तकों में विचार करना आरम्भ किया, परन्तु पाषाणादि मूर्त्तिपूजा का विधान कहीं भी किसी को न मिला।

प्रायेण बहूनां पाषाणपूजनादिष्वाग्रहो महान् अस्ति, अतः काशीराजमहाराजेन बहून् पण्डितान् आहूय पृष्टं किं कर्त्तव्यमस्ति ? तदा सर्वैर्जनैर्निश्चयः कृतः—येन केन प्रकारेण दयानन्दस्वामिना सह शास्त्रार्थं कृत्वा बहुकालात् प्रवृत्तस्याचारस्य स्थापनं यथा भवेत् तथा कर्त्तव्यमेवेति ।

बहुधा करके इसके पूजन में आग्रह बहुतों को है। इससे काशीराज महाराज ने बहुत से पण्डितों को बुलाकर पूछा कि इस विषय में क्या करना चाहिए ? तब सब ने ऐसा निश्चय करके कहा कि किसी प्रकार से दयानन्द सरस्वती स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके बहुकाल से प्रवृत्त आचार को जैसे स्थापन हो सके करना चाहिए।

पुनः कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेकोनविंशतिशतषड्विंशतितमे संवत्सरे (१९२६) मङ्गलवासरे महाराजः काशीनरेशो बहुभिः पण्डितैः सह शास्त्रार्थकरणार्थमानन्दारामं यत्र दयानन्दस्वामिना निवासः कृतः, तत्रागतः ।

तदा दयानन्दस्वामिना महाराजं प्रत्युक्तम्—वेदानां पुस्तकान्यानीतानि न वा ?

निदान कार्तिक सुदी १२ स० १९२६ मङ्गलवार को महाराज काशीनरेश बहुत से पण्डितों को साथ लेकर जब स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के हेतु आए, तब दयानन्द स्वामीजी ने महाराज से पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आए हैं वा नहीं ?

तदा महाराजेनोक्तम्—वेदाः पण्डितानां कण्ठस्थाः सन्ति, किं प्रयोजनं पुस्तकानामिति ?

महाराज ने कहा कि वेद सम्पूर्ण पण्डितों को कण्ठस्थ हैं, पुस्तकों का क्या प्रयोजन है ?

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—पुस्तकैर्विना पूर्वापरप्रकरणस्य यथावद् विचारस्तु न भवति। अस्तु तावत् पुस्तकानि नानीतानि ।

तब दयानन्द सरस्वतीजी ने कहा कि पुस्तकों के बिना पूर्वापर प्रकरण का विचार ठीक ठीक नहीं हो सकता। भला पुस्तक नहीं लाए तो नहीं सही, [1][परन्तु किस विषय पर विचार होगा ?

पण्डितों ने कहा कि तुम मूर्तिपूजा का खण्डन करते हो, हम लोग उसका मण्डन करेंगे।

पुनः स्वामीजी ने कहा कि जो कोई आप लोगों में मुख्य हो वही एक पण्डित मुझ से संवाद करे।]

तदा पण्डितरघुनाथप्रसादकोटपालेन नियमः कृतः—दयानन्दस्वामिना सहैकैकः पण्डितो वदतु, न तु युगपदिति ।

पण्डित रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने यह नियम किया कि स्वामीजी से एक एक पण्डित विचार करे।

तदादौ ताराचरणनैयायिको विचारार्थमुद्यतः, तं प्रति स्वामिदयानन्देनोक्तम्---युष्माकं वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमस्ति न वेति ?

पुनः सबसे पहिले **ताराचरण** नैयायिक स्वामीजी से विचार के हेतु सम्मुख प्रवृत्त हुए।

स्वामीजी ने उन से पूछा कि आप वेदों का प्रमाण मानते हैं वा नहीं ?

तदा ताराचरणेनोक्तम्—सर्वेषां वर्णाश्रमस्थानां वेदेषु प्रामाण्यस्वीकारोऽस्तीति ।

१. कोष्ठान्तर्गतस्य संस्कृतभागो नोपलभ्यते।—यु०मी०

उन्होंने (=ताराचरण ने) उत्तर दिया कि जो वर्णाश्रम में स्थित हैं, उन सब को वेदों का प्रमाण ही है[१]।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदे पाषाणादिमूर्त्तिपूजनस्य यत्र प्रमाणं भवेत् तत् दर्शनीयम्, नास्ति चेद् वद नास्तीति।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि कहीं वेदों में पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजन का प्रमाण है वा नहीं? यदि हो तो दिखाइये, और जो नहीं, तो कहिये कि नहीं है।

तदा ताराचरणभट्टाचार्येणोक्तम्—वेदेषु प्रमाणमस्ति वा नास्ति, परन्तु वेदानामेव प्रामाण्यं नान्येषामिति यो ब्रूयात् तं प्रति किं वदेत्?

पण्डित **ताराचरण** ने कहा कि वेदों में प्रमाण है वा नहीं परन्तु जो एक वेदों ही का प्रमाण मानता है औरों का नहीं उसके प्रति क्या कहना चाहिए?

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यो विचारस्तु पश्चाद् भविष्यति वेदविचार एव मुख्योऽस्ति, तस्मात् स एवादौ कर्त्तव्यः, कुतो वेदोक्तकर्मैव मुख्यमस्त्यतः। मनुस्मृत्यादीन्यपि वेदमूलानि सन्ति तस्मात्तेषामपि प्रामाण्यमस्ति न तु वेदविरुद्धानां वेदा-प्रसिद्धानां चेति।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि औरों का विचार पीछे होगा, वेदों का विचार मुख्य है, इस निमित्त से इसका विचार ही पहिले करना चाहिये, क्योंकि वेदोक्त ही कर्म्म मुख्य है। और मनुस्मृति आदि भी वेदमूलक हैं इससे इनका भी प्रमाण हैं, क्योंकि जो जो वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध हैं उनका प्रमाण नहीं होता।

तदा ताराचरणभट्टाचार्येणोक्तम्—मनुस्मृतेः क्वास्ति वेदमूलमिति?

---

१. इससे यह समझना कि स्वामीजी भी वर्णाश्रमस्थ हैं, वेदों को मानते हैं।

पण्डित **ताराचरण** ने कहा कि मनुस्मृति का वेदों में कहां मूल है ?

स्वामिनोक्तम्—यद् वै किंचन मनुरवदत्तत् भेषजं भेषजतायै"[1] इति सामवेदे[2] ।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि जो जो मनुजी ने कहा है सो सो औषधों का भी औषध है, ऐसा सामवेद के ब्राह्मण में कहा है[3] ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम्"[4] इत्यस्य व्याससूत्रस्य किं मूलमस्तीति ?

[तब] **विशुद्धानन्द स्वामी** ने कहा कि रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमान-प्रतिपाद्य प्रधान, जगत् का कारण नहीं, व्यासजी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्य प्रकरणस्योपरि विचारो न कर्त्तव्य इति ।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि यह प्रकरण से भिन्न बात है, इस पर विचार न करना चाहिये ।

पुनर्विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वदैव त्वं यदि जानासीति ।

फिर **विशुद्धानन्द स्वामी** ने कहा कि यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो ।

तदा दयानन्दस्वामिना प्रकरणान्तरे गमनं भविष्यतीति मत्वा नेदमुक्तम् ।

---

१. ता० ब्रा० २३।१६।७।। प्रकरणानुसारमत्र वैवस्वतमनोर्निर्देशः, न स्वायम्भुवमनोः, येन मनुस्मृतेः प्रवचनं विहितम् ।—यु० मी०

२. पण्डितानामेव मतमङ्गीकृत्योक्तमतो नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।

३. यह कहना उन पण्डितों के मत के अनुसार ठीक है, परन्तु स्वामीजी तो ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते किन्तु मन्त्रभाग ही को वेद मानते हैं ।

४. वेदान्त २।२।१।।

कदाचित् कण्ठस्थं यस्य न भवेत् स पुस्तकं दृष्ट्वा वदेदिति ।

इस पर **स्वामीजी** ने यह समझ कर कि प्रकरणान्तर में वार्त्ता जा रहेगी, इससे न कहा । [पुनः कहा—] जो कदाचित् किसी को कण्ठ न हो तो पुस्तक देख कर कहा जा सकता है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कण्ठस्थं नास्ति चेच्छास्त्रार्थं कर्तुं कथमुद्यतः काशीनगरे चेति ।

तब **विशुद्धानन्द** स्वामी ने कहा कि जो कण्ठस्थ नहीं है, तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए ?

तदा स्वामिनोक्तम्—भवतः सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ?

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि क्या आप को सब कण्ठाग्र है ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मम सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि हां हम को [सब] कण्ठस्थ है ।

तदा स्वामिनोक्तम्—धर्मस्य किं स्वरूपमिति ?

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि कहिये धर्म का क्या स्वरूप है ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्म इति ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो वेद-प्रतिपाद्य फलसहित अर्थ है, वही धर्म कहलाता है ।

स्वामिनोक्तम्—इदन्तु तव संस्कृतं, नास्त्यस्य प्रामाण्यं, कण्ठस्थां श्रुतिं स्मृतिं वा वदेति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह आप का संस्कृत है, इसका क्या प्रमाण ? [कण्ठस्थ] श्रुति स्मृति कहिये ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"चोदनालक्षणार्थो धर्मः"' इति जैमिनिसूत्रमिति[2] ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो चोदनालक्षण अर्थ है सो धर्म कहलाता है, यह जैमिनि का सूत्र है।

तदा स्वामिनोक्तम्—चोदना का ? चोदना नाम प्रेरणा, तत्रापि श्रुतिर्वा स्मृतिर्वा वक्तव्या यत्र प्रेरणा भवेत् ।

[इस पर] **स्वामीजी** ने कहा कि यह सूत्र है, यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते ? और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिये जहां प्रेरणा होती है।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् ।

तब इसमें **विशुद्धानन्द स्वामी** ने कुछ भी न कहा।

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्तु तावद्धर्मस्वरूपप्रतिपादिका श्रुतिर्वा स्मृतिस्तु नोक्ता, किं च धर्मस्य कति लक्षणानि भवन्ति वदतु भवानिति ?

तब **स्वामीजी** ने कहा कि अच्छा आपने धर्म का स्वरूप [प्रतिपादक श्रुति वा स्मृति] तो न कहा, परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैं कहिये ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—एकमेव लक्षणं धर्मस्येति ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि धर्म का एक ही लक्षण है।

तदा स्वामिनोक्तम्—किं च तदिति ?

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि वह कैसा है ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् ।

तब **विशुद्धानन्द स्वामी** ने कुछ भी न कहा।

---

१. इदन्तु सूत्रमस्ति, नेयं श्रुतिर्वा स्मृतिः, सर्वं मम कण्ठस्थमस्तीति प्रतिज्ञायेदानीं कण्ठस्थं नोच्यत इति प्रतिज्ञाहानेस्तस्य कुतो न पराजय इति बोध्यम् ?

२. मीमांसा १।१।२॥

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—धर्मस्य तु दश लक्षणानि सन्ति, भवता कथमुक्तमेकमेवेति ?

तब स्वामीजी ने कहा कि धर्म के तो दश लक्षण हैं, आप एक ही क्यों कहते हैं ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कानि तानि लक्षणानीति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि वे कौन से दश लक्षण हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्[१] ॥

इति मनुस्मृतेः श्लोकोऽस्ति[२] ।

इस पर स्वामीजी ने मनुस्मृति का यह वचन कहा कि—धैर्य १ क्षमा २ दम ३ चोरी का त्याग ४ शौच ५ इन्द्रियों का निग्रह ६ बुद्धि ७ विद्या का बढ़ाना ८ सत्य ९ और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग १० ये दश धर्म के लक्षण हैं, फिर आप कैसे एक ही लक्षण कहते हैं ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—अहं सर्वं धर्म्मशास्त्रं पठितवानिति ।

तब बालशास्त्री ने कहा कि हां हमने सब धर्मशास्त्र देखा है ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—त्वमधर्म्मस्य लक्षणानि वदेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि आप अधर्म का लक्षण कहिये ?

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् ।

तब बालशास्त्री ने कुछ भी उत्तर न दिया ।

तदा बहुभिर्युगपत् पृष्टम्—प्रतिमा शब्दो वेदे नास्ति किमिति ?

फिर बहुत से पण्डितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं ?

---

१. अत्रापि तस्य प्रतिज्ञाहानेर्निग्रहस्थानं बोध्यम् ।

२. मनु० ६।९२॥

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्दस्त्वस्तीति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो है ।

तदा तैरुक्तम्—क्वास्तीति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि कहां पर है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—सामवेदस्य ब्राह्मणे चेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सामवेद के ब्राह्मण में है।

तदा तैरुक्तम्—किं च तद्वचनमिति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि वह कौनसा वचन है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—"देवतायतनानि कम्पन्ते, दैवत-प्रतिमा हसन्ति"[1] इत्यादीनि ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह है—"देवता के स्थान कम्पायमान और प्रतिमा हंसती हैं इत्यादि[2] ।"

तदा तैरुक्तम्—प्रतिमाशब्दस्तु वेदे[3] वर्तते, भवान् कथं खण्डनं करोति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो वेदों में भी है फिर आप कैसे खण्डन करते हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्देनैव पाषाणपूजनादेः प्रामाण्यं न भवति, प्रतिमाशब्दस्यार्थः कर्त्तव्य इति ।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि प्रतिमा शब्द से पाषाणादि मूर्त्तिपूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है, इसलिये प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिये, इसका क्या अर्थ है ?

---

१. षड्विंश ब्रा० ५।६॥

२. यह वेदवचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है, परन्तु वहां भी यह प्रक्षिप्त है* क्योंकि वेदों से विरुद्ध है ।

३. अत्रापि तेषामवेदे ब्राह्मणग्रन्थे वेदबुद्धित्वाद् भ्रान्तिरेवास्तीति वेद्यम् ।

*. वस्तुतः षड्विंशब्राह्मण पञ्चविंशब्राह्मण ताण्ड्यब्राह्मण का परिशिष्ट है । अतः यह सारा ब्राह्मण ही उत्तरकालीन है ।—यु० मी०

तदा तैरुक्तम्—यस्मिन् प्रकरणेऽयं [1]मन्त्रोऽस्ति तस्य कोऽर्थ इति !

तब उन लोगों ने कहा कि जिस प्रकरण में यह मन्त्र[2] है, उस प्रकरण का क्या अर्थ है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—"अथातोऽद्भुतशान्तिं व्याख्यास्यामः"[3] इत्युपक्रम्य त्रातारमिन्द्रमित्यादयस्तत्रैव सर्वे मूलमन्त्रा लिखिताः, एतेषां मध्यात् प्रतिमन्त्रेण त्रित्रिसहस्राण्याहुतयः कार्यास्ततो व्याहृतिभिः पञ्चपञ्चाहुतयश्चेति लिखित्वा सामगानं च लिखितम् । अनेनैव कर्म्मणाद्भुतशान्तिर्विहिता । यस्मिन्मन्त्रे प्रतिमाशब्दोऽस्ति स मन्त्रो न मर्त्यलोकविषयोऽपि तु ब्रह्मलोकविषय एव । तद्यथा—"स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेति" प्राच्या दिशोऽद्भुतदर्शनशान्तिमुक्त्वा ततो दक्षिणस्याः पश्चिमाया दिशः शान्तिं कथयित्वा उत्तरस्या दिशः शान्तिरुक्ता, ततो भूमेश्चेति मर्त्यलोकस्य प्रकरणं समाप्यान्तरिक्षस्य शान्तिरुक्ता, ततो दिवश्च शान्तिविधानमुक्तम्, ततः परस्य स्वर्गस्य[4] च नाम ब्रह्मलोकस्यैवेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह अर्थ है—'अब अद्भुत शान्ति की व्याख्या करते हैं', ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिये ['त्रातारम् इन्द्र'] इत्यादि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं। इनमें से प्रति मन्त्र करके तीन तीन हजार आहुति करनी चाहियें, इसके अनन्तर व्याहृति करके

१. नायं मन्त्रः, अपि तु ब्राह्मणवाक्यम् ।—यु० मी०

२. यह ब्राह्मणवचन है, मन्त्र नहीं है । अतः इसे मन्त्र कहना पण्डितों का भ्रम है ।—यु० मी०

३. ष. ब्रा. ५।१ ।

४. स परं दिवमन्वावर्तते······ । ष. ब्रा. ५।१० ॥

पांच-पांच आहुति करनी चाहियें, ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है। इस क्रम करके अद्‌भुत शान्ति का विधान किया है। जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है, सो मन्त्र मृत्युलोक विषयक नहीं, किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है। सो ऐसा है कि 'जब विघ्नकर्त्ता देवता पूर्व दिशा में वर्त्तमान होवे' इत्यादि मन्त्रों से अद्‌भुत दर्शन की शान्ति कहकर फिर दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा, और उत्तर दिशा, इसके अनन्तर भूमि की शान्ति कहकर मृत्यु-लोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कहके, इसके अनन्तर स्वर्गलोक फिर परमस्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की शान्ति कही है। इस पर सब चुप रहे।

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—यस्यां यस्यां दिशि या या देवता तस्यास्तस्या देवतायाः शान्तिकरणेन दृष्टविघ्नोप-शान्तिर्भवतीति।

फिर **बालशास्त्री** ने कहा कि जिस-जिस दिशा में जो-जो देवता है उस-उस की शान्ति करने से अद्‌भुत देखने वालों के विघ्न की शान्ति होती है।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदं तु सत्यम्, परन्तु विघ्नदर्शयिता कोऽस्तीति?

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि यह सत्य है, परन्तु इस प्रकार विघ्न दिखाने वाला कौन है?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—इन्द्रियाणि दर्शयितॄणीति।

तब **बालशास्त्री** ने कहा कि इन्द्रियां दिखाने वाली हैं।

तदा स्वामिनोक्तम्–इन्द्रियाणि तु द्रष्टॄणि भवन्ति न तु दर्शयितॄणि, परन्तु 'स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेति' अत्र स शब्द-वाच्यः कोऽस्तीति?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि इन्द्रियां तो देखने वाली हैं दिखाने वाली नहीं, परन्तु "स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेति" इत्यादि में 'स' शब्द का वाच्यार्थ क्या है?

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् ।

तब बालशास्त्री ने कुछ न कहा ।

तदा शिवसहायेन प्रयागस्थेनोक्तम्—अन्तरिक्षादिगमनं शान्तिकरणस्य फलमनेनोच्यते चेति ।

फिर पण्डित शिवसहाय ने कहा कि अन्तरिक्ष आदि गमन, शान्ति करने से फल इस मन्त्र करके कहा जाता है ।

तदा स्वामिनोक्तम्—भवता तत्प्रकरणं दृष्टं किम् ? दृष्टं चेत्तर्हि कस्यापि मन्त्रस्यार्थं वदेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि आपने वह प्रकरण देखा है ? तो किसी मन्त्र का अर्थ तो कहिये ।

तदा शिवसहायेन मौनं कृतम् ।

तब शिवसहाय चुप हो रहे ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदाः कस्माज्जाता इति ?

फिर विशुद्धानन्दस्वामीजी ने कहा कि वेद किससे उत्पन्न हुए हैं?

तदा स्वामिनोक्तम्—वेदा ईश्वराज्जाता इति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कस्मादीश्वराज्जाताः ? किं न्यायशास्त्रोक्ताद्वा योगशास्त्रोक्ताद्वा वेदान्तशास्त्रोक्ताद्वेति ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि किस ईश्वर से ? क्या न्यायशास्त्र-प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र-प्रसिद्ध ईश्वर से अथवा वेदान्तशास्त्र-प्रसिद्ध ईश्वर से ? इत्यादि ।

तदा स्वामिनोक्तम्—ईश्वरा बहवो भवन्ति किमिति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या ईश्वर बहुत से हैं ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—ईश्वरस्त्वेक एव, परन्तु वेदाः कीदृग्लक्षणादीश्वराज्जाता इति ?

तब **विशुद्धानन्द स्वामीजी** ने कहा कि ईश्वर तो एक ही है, परन्तु वेद कौन से लक्षणवाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—सच्चिदानन्दलक्षणादीश्वराद् वेदा जाता इति ।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि 'सच्चिदानन्द' लक्षणवाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कोऽस्ति सम्बन्धः ? किं प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावो वा जन्यजनकभावो वा समवाय-सम्बन्धो वा स्वस्वामिभाव इति तादात्म्यभावो वेति ?

फिर **विशुद्धानन्द स्वामी जी** ने कहा कि ईश्वर और वेदों से क्या सम्बन्ध है ? क्या प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभाव वा जन्य-जनकभाव अथवा समवायसम्बन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्य सम्बन्ध है ? इत्यादि ।

तदा स्वामिनोक्तम्—कार्यकारणभावः सम्बन्धश्चेति ।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि कार्य्यकारणभाव सम्बन्ध है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—'मनो ब्रह्मेत्युपासीत',[1] 'आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत'[2] इति यथा प्रतीकोपासनमुक्तं तथा शालिग्रामपूजनमपि ग्राह्यमिति ।

फिर **विशुद्धानन्द स्वामी जी** ने कहा कि जैसे 'मन में ब्रह्मबुद्धि और 'सूर्य्य में ब्रह्मबुद्धि' करके प्रतीक उपासना कही है, वैसे ही शालिग्राम के पूजन का ग्रहण करना चाहिये ।

तदा स्वामिनोक्तम्—'यथा मनो ब्रह्मेत्युपासीत, आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत' इत्यादिवचनं वेदेषु[3] दृश्यते तथा 'पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीत' इति वचनं क्वापि वेदेषु न दृश्यते, पुनः कथं ग्राह्यं भवेदिति ?

---

१. छां० उ० ३।१८।१।।
२. तु० 'आदित्यो ब्रह्म' । छा० उ० ३।१६।१।।
३. इदमपि पण्डितानां मतानुसारेणोक्तम्, नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि जैसे "**मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत**" इत्यादि वचन वेदों[१] में देखने में आते हैं, वैसे "**पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीत**" इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देख पड़ता, फिर क्योंकर इसका ग्रहण हो सकता है ?

तदा माधवाचार्य्येणोक्तम्—'उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च'[२] इति मन्त्रस्थेन पूर्त्तशब्देन कस्य ग्रहणमिति ?

तब माधवाचार्य ने कहा कि "**उद्बुध्यस्वाग्ने प्रहि जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयञ्च०**" इस मन्त्र में पूर्त्त शब्द से किसका ग्रहण है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वापीकूपतडागारामाणामेव[३] नान्यस्येति ।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि वापी, कूप, तड़ाग और आराम का ही ग्रहण है [अन्य का नहीं] ।

तदा माधवाचार्य्येणोक्तम्—पाषाणादिमूर्त्तिपूजनमत्र कथं न गृह्यते चेति ?

माधवाचार्य्य ने कहा कि इससे पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पूर्त्तशब्दस्तु पूर्त्तिवाची वर्त्तते, तस्मान्न कदाचित् पाषाणादिमूर्त्तिपूजनग्रहणं सम्भवति । यदि शङ्कास्ति तर्हि निरुक्तम्[४] अस्य मन्त्रस्य पश्य ब्राह्मणं[५] चेति ।

---

१. यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है, स्वामीजी का नहीं, क्योंकि स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वरकृत नहीं मानते ।

२. यजु० १५।१४।।

३. कोशेषु पूर्तशब्दस्येम एवार्था निर्दिश्यन्ते ।—यु० मी०

४. निरुक्ते त्वयं मन्त्रों नोपलभ्यते ।—यु० मी०

५. शत० ८।६।३।२३।।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पूर्त्त शब्द पूर्ति का वाचक है, इससे कदाचित् पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता। यदि शङ्का हो तो इस मन्त्र का निरुक्त और ब्राह्मण देखिये।

ततो माधवाचार्य्येणोक्तम्—पुराणशब्दो वेदेष्वस्ति न वेति ?

तब माधवाचार्य ने कहा कि पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु[1] दृश्यते, परन्तु पुराणशब्देन कदाचिद् ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थानां ग्रहणं न भवति, कुतः ? पुराणशब्दस्तु भूतकालवाच्यस्ति सर्वत्र द्रव्यविशेषणं चेति।

[इस पर]स्वामीजी ने कहा कि पुराण शब्द तो बहुत सी जगह वेदों में है, परन्तु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं हो सकता, क्योंकि पुराण शब्द भूतकालवाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानि"[2] इत्यत्र बृहदारण्यकोपनिषदि पठितस्य सर्वस्य प्रामाण्यं वर्त्तते न वेति ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि बृहदारण्यक उपनिषद् के इस मन्त्र में कि **"एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति"**[2] यह सब जो पठित है, इसका प्रमाण है वा नहीं ?

१. इदमपि पण्डितानामेव मतमाश्रित्योक्तम्।—यु०मी०

२. बृ० उ० २।४।१० ॥

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्त्येव प्रामाण्यमिति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा—हां प्रमाण है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—श्लोकस्यापि प्रामाण्यं चेत्तदा सर्वेषां प्रामाण्यमागतमिति ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यदि श्लोक का भी प्रमाण है, तो सब का प्रमाण आया ।

तदा स्वामिनोक्तम्—सत्यानामेव श्लोकानां प्रामाण्यं नान्येषामिति[1] ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमिति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुस्तकमानय पश्चाद्विचारः कर्त्तव्य इति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पुस्तक लाइये, तब इसका विचार हो ।

तदा माधवाचार्य्येण वेदस्य[2] द्वे पत्रे निस्सारिते, अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्त्वेति ।

[तब] माधवाचार्य ने वेदों[3] के दो पत्रे निकाले, और कहा कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है ?

---

१. द्र०—'यस्त्वप्रमत्तगीतस्तत्प्रमाणम्' । महाभाष्य १।१।१॥

२. इदमपि पण्डितानां मतम्, नैव स्वामिन इति वेद्यम् ।

३. यह भी उन्हीं का मत है, स्वामीजी का नहीं । क्योंकि ये गृह्यसूत्र के पत्रे थे ।

तदा स्वामिनोक्तम्—कीदृशमस्ति वचनं पठ्यतामिति ।

[इस पर] **स्वामीजी** ने कहा कि कैसा वचन है, पढ़िये ।

तदा माधवाचार्य्येण पाठः कृतस्तत्रेदं वचनमस्ति—"ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति" ।

तब माधवाचार्य्य ने यह पढ़ा **'ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति'** ।

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणानि ब्राह्मणानि नाम सनातनानीति विशेषणमिति ।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है, अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं ।

तदा बालशास्त्र्यादिभिरुक्तम्—ब्राह्मणानि नवीनानि भवन्ति किमिति ?

तब **बालशास्त्री** आदि ने कहा कि ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—नवीनानि ब्राह्मणानीति कस्यचिच्छङ्कापि माभूदिति विशेषणार्थः ।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं, परन्तु ऐसी शङ्का भी किसी को न हो, इसलिये यहां यह विशेषण कहा है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासशब्दव्यवधानेन कथं विशेषणं भवेदिति ?

तब **विशुद्धानन्द स्वामीजी** ने कहा कि यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अयं नियमोऽस्ति किं व्यवधानाद्विशेषणयोगो न भवेत्, सन्निधानादेव भवेदिति ?

'अजो नित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणो न'[1] इति दूरस्थस्य

१. गीता २।२० ।।

देहिनो विशेषणानि गीतायां कथम्भवन्ति ? व्याकरणेऽपि नियमो नास्ति समीपस्थमेव विशेषणं भवेन्न दूरस्थमिति ।

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता, और अव्यवधान ही में होता है। क्योंकि [गीता के] **"अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे"**[1] इस श्लोक में दूरस्थ देही के भी क्या विशेषण नहीं हैं ? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासस्यात्र पुराणशब्दो विशेषणं नास्ति, तस्मादितिहासो नवीनो ग्राह्यः किमिति ?

तब **विशुद्धानन्द स्वामी जी** ने कहा कि यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है, इससे क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिए ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यत्रास्तीतिहासस्य पुराणशब्दो विशेषणं तद्यथा—इतिहासः पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः"[2] **इत्युक्तम् ।**

इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है। सुनिये—**"इतिहासः पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः**[2] इत्यादि में कहा है।

तदा वामनाचार्यादिभिरयं पाठ एव वेदे नास्तीत्युक्तम् ।

तब **वामनाचार्य** आदिकों ने कहा कि वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—यदि [3]वेदेष्वयं पाठो न भवे-

---

१. गीता २।२०।।

२. छां० उ० ७।२।४ ।। 'इतिहासपुराणः' इति पाठः । 'इतिहासपुराणं' इति छां० उ० ७।२।२ पाठः ।

३. इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्तं, नेदं स्वामिनो मतमिति वेदितव्यम् ।

च्चेन्मम पराजयः, यद्ययं पाठो वेदे यथावद्भवेत् तदा भवतां पराजयश्चेयं प्रतिज्ञा लेख्येत्युक्तम्, तदा सर्वैर्मौनं कृतमिति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यदि वेद[1] में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो, और जो हो तो तुम्हारा पराजय हो, यह प्रतिज्ञा लिखो, तब सब चुप हो रहे।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदानीं व्याकरणे 'कल्मसंज्ञा' क्वापि लिखिता न वेति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं 'कल्मसंज्ञा' करी है वा नहीं ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—एकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणोपहासः कृत इति।

तब बालशास्त्री ने कहा कि संज्ञा तो नही की है, परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है।

तदा स्वामिनोक्तम्—कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासश्चेत्युदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है ? यदि जानते हो तो इसके उदाहरण [प्रत्युदाहरण] पूर्वक समाधान कहो ?

[तदा] बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति।

तब बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा।

तदा माधवाचार्येण द्वे पत्रे वेदस्य[2] निस्सार्य्य सर्वेषां पण्डितानां मध्ये प्रक्षिप्ते। अत्र 'यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे

१. यह उन्हीं पण्डितों के मतानुसार कहा है, क्योंकि स्वामीजी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते।

२. एते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्य भवतामिति।

पुराणानां पाठं शृणुयाद्' इति लिखितम्, अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणम् ? इत्युक्तम् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना दयानन्दस्वामिनो हस्ते पत्रे दत्ते ।

[तब] **माधवाचार्य** ने दो पत्रे वेदों[१] के निकालकर सब पण्डितों के बीच में रख दिये और कहा कि यहां 'यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने' ऐसा लिखा है। यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

[२][**स्वामीजी** ने कहा कि पढ़ो इसमें किस प्रकार का पाठ है ? जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्दजी ने पत्रे उठा के स्वामीजी की ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो।

स्वामीजी ने कहा कि आप ही इसका पाठ कीजिए। तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि मैं ऐनक के बिना पाठ नहीं कर सकता, ऐसा कहके] वे पत्रे उठाकर **विशुद्धानन्द स्वामीजी** ने दयानन्द स्वामीजी के हाथ में दिये।

तदा स्वामी पत्रे द्वे गृहीत्वा पञ्चक्षणमात्रं विचारं कृतवान् । तत्रेदं वचनं वर्तते—"दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराणविद्या-वेदः, इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्य्यादिति"[३] ।

अस्यायमर्थः—पुराणी चासौ विद्या च पुराणविद्या पुराण-विद्द्येव वेदः पुराणविद्यावेद इति नाम ब्रह्मविद्द्यैव ग्राह्या, कुतः ? एतदन्यत्रर्ग्वेदादीनां[४] श्रवणमुक्तं न चोपनिषदाम् । तस्मादुप-

१. पत्रे गृह्यसूत्र के पाठ के थे, वेदों के नहीं।

२. कोष्ठन्तर्गत भाषा-पाठ का संस्कृत-पाठ नहीं है। सम्भवतः वह पाठ यहां भ्रष्ट हो गया है।—यु. मी.

३. अर्थतोऽयमनुवादः स्यात् । शत० १३।४।३।१३ कण्डिकायां नवमेऽह्नि पुराणपाठनिर्देश उपलभ्यते।

४. द्र० शत० १३।४।३।३-८ ।

निषदामेव ग्रहणं नान्येषाम् । पुराणविद्यावेदोऽपि ब्रह्मविद्यैव भवितुमर्हति, नान्ये नवीना ब्रह्मवैवर्त्तादयो ग्रन्थाश्चेति । यदि ह्येवं पाठो भवेद् ब्रह्मवैवर्त्तादयोष्टादश ग्रन्थाः पुराणानि चेति क्वाप्येव वेदेषु[1] पाठो नास्त्येव, तस्मात् कदाचित्तेषां ग्रहणं न भवेदेवेत्यर्थकथनस्येच्छा कृता [तावत्येव]।

इस पर **स्वामीजी** दोनों पत्रे लेकर [पांच क्षणमात्र] विचार करने लगे। [वहां इस प्रकार पाठ है—"यज्ञ समाप्ति पर दशवें दिन यजमान पुराणविद्यावेद का श्रवण करे।]

[इसका यह अर्थ है—] "पुरानी जो विद्या है उसे पुराणविद्या कहते हैं, और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्या वेद कहाता है, इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है। क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है, परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा, इसलिए यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है, औरों का नहीं। पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है। इससे ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते, क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि ब्रह्मवैवर्त्तादि १८ (अठारह) ग्रन्थ पुराण हैं, सो तो वेद में[2] कहीं ऐसा पाठ नहीं है, इसलिए कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता"। ज्यों ही यह उत्तर कहना चाहते थे कि—

तदा विशुद्धानन्दस्वामी मम विलम्बो भवतीदानीं गच्छामीत्युक्त्वा गमनायोत्थितोऽभूत् । ततः सर्वे पण्डिता उत्थाय कोलाहलं कृत्वा गताः । एवं च तेषां कोलाहलमात्रेण सर्वेषां निश्चयो भविष्यति दयानन्दस्वामिनः पराजयो जात इति ।

अथात्र बुद्धिमद्भिर्विचारः कर्त्तव्यः, कस्य जयो जातः कस्य पराजयश्चेति ?

दयानन्दस्वामिनश्चत्वारः पूर्वोक्ताः पूर्वपक्षास्सन्ति । तेषां चतुर्णां प्रामाण्यं नैव वेदेषु निःसृतम्, पुनस्तस्य पराजयः कथं भवेत्?

१. इदमपि तन्मतमेवास्ति, न स्वामिन इति ।

२. यह पण्डितों के मतानुसार कहा है, यह स्वामीजी का मत नहीं है ।

पाषाणादिमूर्तिपूजन[त्रिपुण्ड्रादि]रचनादिविधायकं वेद-वाक्यं सभायामेतैः सर्वैर्नोक्तम् । येषां वेदविरुद्धेषु वेदाप्रसिद्धेषु च पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादिषु शैवशाक्तवैष्णवादिसंप्रदायादिषु रुद्राक्षतुलसीकाष्ठमालाधारणादिषु त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरचनादिषु नवीनेषु ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोऽस्ति तेषामेव पराजयो जातः, इति तत्थ्यमेवेति ।

विशुद्धानन्द स्वामीजी उठ खड़े हुए और कहा कि हमको विलम्ब होता है हम जाते हैं, तब सब के सब [पण्डित] उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये । इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामीजी का पराजय[1] हुआ ।

[यहां बुद्धिमानों को विचार करना चाहिये कि] जो दयानन्द स्वामीजी के ४ पूर्वोक्त प्रश्न हैं, उनका वेदों में तो प्रमाण ही न निकला, फिर क्योंकर उनका पराजय हुआ ?

[पाषाणादि-मूर्ति-पूजन और त्रिपुण्ड्रादि रचनादि विधायक एक भी वेद-वचन सभा में इन लोगों में से किसी ने भी नहीं कहा । इससे जिनका वेदों से विरुद्ध और वेदों से सिद्ध न किये जा सकने वाले पाषाणादि-मूर्ति-पूजन, शैव-शाक्त-वैष्णवादि सम्प्रदायों, रुद्राक्ष तुलसी-काष्ठ मालादि धारण करने, त्रिपुण्ड्रऊर्ध्वपुण्ड्रादि लगाने, और नवीन ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थों में पूर्ण विश्वास है, उनका ही पराजय हुआ, यही सत्य है ।]

॥ इति ॥

---

१. क्या किसी का भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय हो सकता है कि स्वामीजी का पराजय और काशीस्थ पण्डितों का विजय हुआ ? किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का विजय हुआ और काशीस्थों का नहीं । क्योंकि स्वामीजी का तो वेदोक्त सत्यमत है, उनका विजय क्योंकर न होवे ? काशीस्थ पण्डितों का पुराण और तन्त्रोक्त मत, जो पाषाणादि मूर्त्तिपूजादि है, उनका पराजय होना कौन रोक सकता है ? यह निश्चय है कि असत्य पक्ष वालों का पराजय और सत्य वालों का सर्वदा विजय होता है ।

२. शास्त्रार्थ-हुगली

सम्पादकीय

काशी-नरेश के सभा-पण्डित ताराचरण तर्करत्न से स्वामी दयानन्द सरस्वती का **प्रतिमा-पूजन की वैदिकता या अवैदिकता** पर सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ चैत्र शुक्ला ११सं० १९३० वि० मंगलवार को हुगली में हुआ। पं० ताराचरण अपने युग के प्रसिद्ध नैयायिक विद्वान् थे। स्वामीजी से उनका साम्मुख्य काशी-शास्त्रार्थ के प्रसंग में भी हो चुका था। चौबीस परगना (बंगाल) जिले के हुगली नदी के बांये तट पर विद्यमान भाटपाड़ा ग्राम निवासी पं० ताराचरण से श्रीमहाराज का यह शास्त्रार्थ ८ अप्रैल १८७३ के दिन हुगली नगर में वृन्दावनचन्द्र मण्डल के निवास-स्थान पर हुआ था।

पं० लेखराम ने श्रीमहाराज के उर्दू जीवन-चरित में इस शास्त्रार्थ के प्रसंग में लिखा था—

"सं० १९३० में यह शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में हुआ। उसी समय उसका अनुवाद बंगला भाषा में मुद्रित किया गया। और बहुत शीघ्र ही सं० १९३० वि० (१८७३ ई०) में 'लाइट प्रेस, बनारस' से २८ पृष्ठ का बा० हरिश्चन्द्र एक मूर्तिपूजक ने जो कि गोकुलिया गोस्वामी मत में था, उसे शब्दशः आर्यभाषा में छपवा कर मुद्रित किया। वह आज तक पांच बार छप चुका है, परन्तु पृथक् पुस्तक (अर्थात् हुगली शास्त्रार्थ) विक्रयार्थ नहीं मिलता।" (श्रीमहाराज का उर्दू जीवन-चरित पृ० ७९१, १८९७ का प्रथम संस्करण)।

उपर्युक्त उल्लेख से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं—(१) हुगली-शास्त्रार्थ का विवरण सर्वप्रथम बंगला भाषा में मुद्रित हुआ, परन्तु उस बंगला पुस्तक का कुछ अता पता आज तक नहीं चल सका। (२) जिन हरिश्चन्द्र ने उसे आर्यभाषा (हिन्दी) में अनूदित कर प्रकाशित किया, वे हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और लेखक स्वनाम-धन्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही थे। उनके द्वारा प्रकाशित 'प्रतिमा-पूजन-विचार' शीर्षक यह शास्त्रार्थ १८×२२ के आठ पृष्ठ वाले

आकार में २८ पृष्ठों में छपा[१]। उसके मुख-पृष्ठ का ब्योरा इस प्रकार था—

प्रतिमा-पूजन-विचार

श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी और ताराचरण तर्करत्न का शास्त्रार्थ, जो कि हुगली में हुआ था, उसे बाबू हरिश्चन्द्र की आज्ञा से बनारस लाइट छापेखाने में गोपीनाथ पाठक ने मुद्रित किया सं० १९३० ।

Printed At "THE LIGHT PRESS" BENARES. 1873

पं० लेखराम के कथनानुसार इस पुस्तक के पांच संस्करण उस समय तक निकल चुके थे। इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण भारतेन्दु की मृत्यु (१८८५ ई०) के तीन वर्ष पश्चात् १८८८ ई० में 'खड्ग विलास प्रेस' बांकीपुर पटना से प्रकाशित हुआ। इसके मुख पृष्ठ पर निम्न बातें अंकित हैं—

Reg. under Act of 1847

प्रतिमा-पूजन-विचार

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामी और ताराचरण तर्करत्न का शास्त्रार्थ

जो कि हुगली में हुआ था

भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र संगृहीत

जिसको हिन्दी भाषा के प्रेमी तथा रसिकजनों के मनोविलास के लिए क्षत्रिय-पत्रिका सम्पादक श्री म० कु० बाबू रामदीन सिंह ने प्रकाशित किया।

पटना खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर

साहिब प्रसाद सिंह ने मुद्रित किया

१८८८ मूल्य=)

इस द्वितीय संस्करण की एक प्रति आर्यसमाज अजमेर के 'श्री मुन्नालाल नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय' में विद्यमान है।

जिन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १८६९ ई० के काशी-शास्त्रार्थ के तुरन्त बाद ही "दूषण-मालिका" लिख कर स्वामीजी पर आक्षेपों

१. इसकी एक प्रति पं० भगवद्दत्त जी के माडल टाउन लाहौर स्थित संग्रह में थी। १९४७ के उपद्रवों में वह पुस्तक-संग्रह नष्ट हो गया।

की वृष्टि की थी, उन्हीं वल्लभ-सम्प्रदायानुयायी भारतेन्दु ने १८७३ ई० में उन्हीं स्वामी दयानन्द के प्रतिमा-पूजन विषयक शास्त्रार्थ को प्रकाशित किया, इससे बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है। इससे यह सहज निष्कर्ष निकलता है कि प्रगतिशील विचार-धारा के अनुयायी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वामी दयानन्द के युग-परिवर्तनकारी क्रान्तिकारी विचारों के अन्तःकरण से समर्थक थे।

मुन्शी बख्तावर सिंह सम्पादित 'आर्य-दर्पण' के फरवरी १८८० के अंक में 'शास्त्रार्थ-हुगली, जो संवत् १९२९ में स्वामी दयानन्द सरस्वती और पंडित ताराचरण के बीच हुआ था' इस शीर्षक से पृष्ठ ३५ से पृष्ठ ४२ पर्यन्त उर्दू तथा हिन्दी में समानान्तर कालमों में प्रकाशित हुआ। परन्तु यह उस पुस्तक का पूर्वार्द्ध मात्र ही था, जिसमें स्वामी जी तथा पं० तर्करत्न के शास्त्रार्थ का विवरण दिया गया है। 'प्रतिमा-पूजन-विचार' शीर्षक के अन्तर्गत जो प्रतिमा शब्द तथा तत् सम्बन्धी अन्य विषयों का शास्त्रीय विवेचन स्वामीजी ने किया, वह इस पत्र में प्रकाशित नहीं हुआ। पं० लेखराम द्वारा रचित उर्दू जीवन चरित तथा देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा संगृहीत जीवन चरित में भी ग्रन्थ का पूर्वभाग (संक्षप्त रूप से) क्रमशः पृष्ठ २०१-२०८ तथा पृष्ठ २७०-२७३ (द्वितीय भाग) दिया गया है। परन्तु पाठ भेद सर्वत्र है। पूर्वार्द्ध का यही अंश पं. गोपालराव शर्मा (अथवा पं. गोपालशास्त्री शर्मा) रचित दयानन्द 'दिग्विजयार्क' प्रथम खण्ड के तृतीय मयूखान्तर्गत भी प्रकाशित हुआ। इसके अन्त में 'दिग्विजयार्क' के लेखक की निम्न टिप्पणी बड़ी मार्मिक है—

"आर्यगण! पं. ताराचरणजी जो अपने असत्य-भाषण का कारण अपना पेट दिखाते हैं; सो बहुत ही ठीक है। यही हाल देश भर के पण्डित और पुजारी वैरागियों का जानो कि विचारे पेट के मारे चारनाचार असत्य को सत्य ठहरा रहे हैं, परन्तु नहीं मालूम कि इनको छोड़ बाकी रहे लोग किमर्थ अन्धे बहरे बन रहे हैं। ये वही राज पं. हैं जो प्रथम काशी के शास्त्रार्थ में अगुआ बन बोले थे।"

'आर्यदर्पण,' पं. लेखराम रचित जीवन चरित तथा 'दयानन्द दिग्विजयार्क' में उद्धृत हुगली-शास्त्रार्थ पूर्वार्द्ध के पाठ में पर्याप्त भेद है। उसका कारण लिपि-कर्ताओं की भूल ही मानीं जा सकती है।

परन्तु ग्रन्थ का मूल सही पाठ वही है, जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा १८७३ ईस्वी में प्रकाशित किया गया था, तथा जिसका द्वितीय संस्करण १८८८ ई० में पटना से प्रकाशित हुआ था। इसे ही पण्डित भगवद्दत्त जी द्वारा सम्पादित 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' (द्वितीय संस्करण २०१२ वि.) में पृष्ठ ५—१७ पर्यन्त तथा पं. जगत्कुमार शास्त्री सम्पादित 'ऋषि-दयानन्द-ग्रन्थ-सग्रह' में पृष्ठ ३०३—३१३ पर्यन्त प्रकाशित किया गया है। गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली ने इसे पृथक् पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया था। **'प्रतिमा-पूजन-विचार'** के 'प्रतिमा' तथा 'पुराण' विषयक विवेचनीय ग्रंशों को भी मुन्शी बख्तावर सिंह ने 'आर्य-दर्पण' के मार्च १८८० ईस्वी (पृष्ठ ५०--५३) तथा जून १८८० ई० (पृ० १२५-१२७) के अंकों में उर्दू हिन्दी के समानान्तर कालमों में 'यथार्थ-प्रकाश'-३-४ शीर्षक से प्रकाशित किया था। ग्रन्थान्त के निम्न श्लोक तथा पुष्पिका के वाक्य से इस ग्रन्थ का मूल संस्कृत भाग श्रीमहाराज ने स्वयं बनाया होगा, ऐसा अनुमान होता है—

> **दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः**
> **सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यवचना।**
> **तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा [1]राष्ट्रिशरणा**
> **स को दान्तः शान्तो विदितविदितो वेद्यविदितः॥**

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितमिदमिति विज्ञेयम्॥

यहां भारतेन्दु हरिश्चन्द्र संगृहीत 'प्रतिमा-पूजन-विचार' का मूल पाठ **'शास्त्रार्थ-हुगली'** शीर्षक से आगे दिया जा रहा है।

१. 'राष्ट्रिन्'-शब्दो निघण्टौ [२।२२] ईश्वरनामसु पठितम्।—यु०मी०

शास्त्रार्थ-हुगली

चैत्र शुक्ला एकादशी संवत् १९३० अर्थात् ८ अप्रैल १८७३

[पूर्व-पीठिका]

एक पण्डित ताराचरण तर्करत्न नामक भाटपाड़ा ग्राम[1] के निवासी हैं, जो कि ग्राम हुगली के पास है। उस ग्राम में उनकी जन्मभूमि है, परन्तु आजकल श्रीयुत काशीराज महाराज के पास रहते हैं। संवत् १९२९ में वे अपनी जन्मभूमि में गये थे। वहां से कलिकाता में भी गये थे और किसी स्थान में ठहरे थे।

जिन के स्थान में मैं ठहरा था, उनका नाम श्रीयुत राजा ज्योतीन्द्र मोहन ठाकुर तथा श्रीयुत राजा शौरिन्द्र मोहन ठाकुर है। उन के पास तीन बार जा-जा करके ताराचरण ने प्रतिज्ञा की थी कि हम आज अवश्य शास्त्रार्थ करने को चलेंगे। ऐसे ही तीन दिन तक कहते रहे, परन्तु एक वार भी न आये। इससे बुद्धिमान् लोगों ने उनकी बात झूठी ही जान ली।

मैं कलिकाता से हुगली में आया और श्रीयुत वृन्दावनचन्द्र मण्डल जी के बाग में ठहरा था। सो एक दिन उन्होंने अपने स्थान में सभा की। उसमें मैं भी वक्तृत्व करने के लिए गया था, तथा बहुत पुरुष सुनने को आये थे। उन से मैं अपना अभिप्राय कहता था, वे सब लोग सुनते थे। उसी समय में ताराचरण पण्डित जी भी वहां आये। तब उन से वृन्दावनचन्द्रादिकों ने कहा कि आप सभा में आइए, इच्छा हो सो कहिए। परन्तु सभा के बीच में पण्डित ताराचरण नहीं आए, किन्तु ऊपर जाकर दूर से गर्जते थे।

वहां भी उन्होंने जान लिया कि पण्डित जी कहते तो हैं, परन्तु समीप क्यों नहीं जाते? इस से जैसे वे ताराचरण जी थे, वैसे ही उन्होंने जान लिये। फिर जब नव घण्टा बज गया, तब लोगों ने मेरे से कहा कि अब समय दश घण्टा का है। उठना चाहिए, बहुत रात आ गई।

---

१. भाटपाड़ा ग्राम हुगली नदी के बांये तट पर है. और हुगली ग्राम दाहिने तट पर।

फिर मैं और सब सभास्थ लोग उठे, उठके अपने-अपने स्थान में चले गये। फिर मैं बाग में चला आया। उसके दूसरे दिन वृन्दावनचन्द्र मंडल जी ने मेरे से कहा कि उस वक्त ताराचरण भी आये थे। जब मैंने उनसे कहा कि सभा में क्यों नहीं आए ? उन्होंने कहा कि वे तो बड़ा अभिमान करते हैं। तब मैंने उनसे कहा—जो अभिमान करता है, सो पण्डित नहीं होता, किन्तु वह काम मूर्ख का ही है। और जो पण्डित होता है, सो तो कभी अपने मुख से अपनी बड़ाई नहीं करता। जो ताराचरण पण्डित जी अभिमान में डूबे जावें, तब तो उनको मेरे पास एक वार ले आइये। फिर वे अभिमान-समुद्र में डूबने से बच जायें तो अच्छा हो।

तब वृन्दावनचन्द्रादिकों ने कहा कि आप बाग में चलिए, और जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा शास्त्रार्थ कीजिए। पण्डित जी की कुछ इच्छा न देखी, तब वृन्दावनचन्द्र से मैंने कहा कि आप उनसे कहें कि कुछ चिन्ता आप न करें। स्वामी जी ने हम से कह दिया है कि पण्डित जी प्रसन्नता से आवें, मैं किसी से विरोध नहीं रक्खता। तब तो पण्डित जी ने कहा—हम चलेंगे।

[शास्त्रार्थ]

सो मंगलवार की सन्ध्या समय में बहुत लोग नगर से शास्त्रार्थ सुनने को आये[1]। वृन्दावनचन्द्र भी बहुत लोगों के साथ आये। तथा पाठशालाओं के अध्यक्ष श्री भूदेव मुकुर्ज्या आये, तथा श्री हरिहर तर्कसिद्धान्त-पंडित भी आये। उसके पीछे पंडित ताराचरण जी सशिष्य तथा अपने ग्राम-निवासियों के साथ आये, जो कि उनके पक्षपाती थे।

ये सब लोग आ के सभा के स्थान में इकट्ठे भये। तब मैं भी उस स्थान में आया, फिर सब यथायोग्य बैठे। तब ताराचरण जी ने प्रतिज्ञा की कि हम प्रतिमा का स्थापन पक्ष लेते हैं। फिर मैंने कहा कि जो आपकी इच्छा हो सो लीजिये, मैं तो इस बात का खण्डन ही करूंगा।

तब उन ने मुझसे कहा कि इस संवाद में वाद होना ठीक है, वा जल्प अथवा वितण्डा ? उन से मैंने कहा कि वाद ही होना उचित

१. चैत्र सु० ११ संवत् १९३० अर्थात् ८ एप्रिल १८७३।

है, क्योंकि जल्प और वितण्डा सज्जनों को करना कभी उचित नहीं,[किन्तु]वाद गोतमोक्त[1] लेना। तब उन्होंने भी स्वीकार किया।

फिर दूसरी यह प्रतिज्ञा उस समय में की गई कि चार वेद तथा चार उपवेद, छः वेदों के अंग और छः दर्शन मुनियों के किये, तथा मुनि और ऋषियों के किये छः शास्त्रों के व्याख्यान, उन्हों के वचन प्रमाण से ही कहना, अन्य कोई का प्रमाण नहीं। तब उन ने भी स्वीकार किया, मैंने भी।

तर्करत्न[2]—पातंजल-सूत्रम्—

चित्तस्य आलम्बने स्थूल आभोगो वितर्कः। इति व्यासवचनम्।

स्वामी—[3]तर्करत्न के हाथ में पुस्तक भी थी, उसको देखा, तब भी मिथ्या ही उनने लिखा। क्योंकि योगशास्त्र पढ़ा होय, तब उस शास्त्र को जान सकता है। तर्करत्न नें पढ़ा तो था नहीं, इससे उनने अशुद्ध लिखा। जो पढ़ा भया होता है, सो ऐसा भ्रष्ट कभी नहीं लिखता[4]। देखना चाहिये कि ऐसा पातञ्जल-शास्त्र में सूत्र ही नहीं है। किन्तु ऐसा सूत्र तो है—

[5]**विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी**, इति[6]।

सो इस सूत्र के व्याख्यान में "**नासिकाग्रे धारयतः**" इत्यादिक वहां लिखा है। यह तो उनने जाना भी नहीं, इससे उनका लिखना भ्रष्ट है।

फिर लिखते हैं कि—**इति व्यासवचनम्**। इस प्रकार का

---

१. अर्थात् न्याय-शास्त्र-प्रतिपादित—'**प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः।**
न्याय० १।२।१॥

२. जहां-जहां तर्करत्न शब्द आवे, वहां-वहां ताराचरण पण्डित जी को जान लेना। और जहां-जहां स्वामी शब्द आवे, वहां-वहां दयानन्द सरस्वती स्वामीजी को जान लेना।

३. यहां से अगला पाठ स्वामी जी का समालोचनात्मक लेख रूप है।

४. इस पद से तथा आगे प्रयुक्त ऐसे शब्दों से विदित होता है कि यह शास्त्रार्थ लिखित हुआ था।—यु० मी०

५. योग० १।३५॥

६. संस्कृत-शास्त्रार्थ के संकेत मात्र यहां उद्धृत हैं। पूरा पाठ अनुवादक ने सम्भवतः छोड़ दिया।—यु० मी०

वचन व्यास जी ने कहीं योगशास्त्र की व्याख्या में नहीं लिखा। इससे यह भी उनका वचन भ्रष्ट ही है। फिर यह लिखा कि—

तर्करत्न—स्वरूपे साक्षाद्वती प्रज्ञा आभोगः स च स्थूल-विषयत्वात् स्थूलः, इत्यादि।

स्वामी—यह भी उनका लिखना अशुद्ध ही है। क्योंकि प्रतिज्ञा तो ऐसी पूर्व की गई थी कि वेदादिक शास्त्र-वचनों से ही प्रतिमा-पूजन का स्थापन हम करेंगे, और वचन फिर लिखा **वाचस्पति** का। इस से तर्करत्न की प्रतिज्ञा-हानि हो गई। प्रतिज्ञा की हानि होने से उनका पराजय हो गया। क्योंकि—**प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञान्तरम्**[1] इत्यादिक निग्रहस्थान होते हैं। यद्यपि हमको जय तथा पराजय की इच्छा कभी नहीं है, तथापि गोतम मुनिजी ने छब्बीस निग्रहस्थान लिखे हैं। निग्रहस्थान सब पराजय के स्थान ही होते हैं। और पहिले प्रतिज्ञा की थी कि जल्प और वितण्डा न करेंगे, फिर जाति-साधन से प्रतिमा का स्थापन करने लगे, क्योंकि प्रतिमा भी स्थूल-साधर्म्य से आती है।

यावान् जागरितावस्थाविषयः तावान् सर्वः स्थूलः कुतः? इत्यादि। मैंने उनको ज्ञापक से जना दिया कि ये गृहस्थ हैं, इनकी अप्रतिष्ठा न हो जाय, तदपि उनने कुछ भी नहीं जाना। जानें तो तब जब कुछ शास्त्र पढ़ा हो, अथवा बुद्धि शुद्ध हो। **साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्ष०**[2] इत्यादिक चौबीस प्रकार का शास्त्रार्थ जाति के विषय में गोतम मुनि जी ने लिखा है। इसके नहीं जानने से जल्प और वितण्डा तर्करत्न ने किये। क्योंकि—

यथोक्तोपपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः ॥१॥

सः प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा ॥२॥[3]

जैसा कि इन सूत्रों का अभिप्राय है, वैसा ही तर्करत्न जी ने

१. न्याय० ५।२।११॥ २. न्याय० ५।१।१॥
३. न्याय० १।२।२-३॥

प्रतिमा-पूजन का स्थापन करने में जल्प और वितण्डा ही किया। इससे दूसरे बेर प्रतिज्ञाहानि उनने की। अत: द्वितीय पराजय उनका हुआ।

तर्करत्न—यदुक्तं भवता तेनैव प्रतिमापूजनमेव सिद्ध्यत्येव तस्य स्थूलत्वात्।

स्वामी—इसमें तीन बेर 'एव' शब्द लिखने से यह जाना गया कि ताराचरणजी को संस्कृत का यथावत् बोध भी नहीं है। इससे तर्करत्न जी अभिमान में डूबे जाते हैं। क्योंकि हम बड़े पण्डित हैं, इस प्रकार का जो स्वमुख से कहना है, सोई विद्याहीनता को जनाता है।

फिर **लोकान्तरस्थ** शब्द से मैंने उनको जनाया कि जो चतुर्भुज को आप लेते हो, सो तो वैकुण्ठ में सुने जाते हैं, [उनकी] "**उप**" अर्थात् समीप "**आसना**" अर्थात् स्थिति सो मनुष्यलोक में रहने वाला कैसे कर सकेगा? कभी नहीं। और जो पाषाणादिक की मूर्ति शिल्पी की रची भई, सो तो विष्णु है नहीं। तब भी पण्डित जी कुछ नहीं समझे। क्योंकि जो कुछ विद्या पढ़ी होती अथवा सत्पुरुषों का संग किया होता, तो समझ जाते। सो तो कभी किया नहीं, इससे ताराचरण जी उस बात को न समझ सके। फिर एक कहीं से सुनी सुनाई ब्राह्मण की श्रुति बिना प्रसंग से पढ़ी। सो यह है—

तर्करत्न—अथ स यदा पितॄनावाहयति पितृलोकेन तेन सम्पन्नो महीयते। इस श्रुति से लोकान्तरस्थ की भी उपासना आती है, इस अभिप्राय से देखना चाहिए।

स्वामी—इस श्रुति में उपासना लेशमात्र नहीं आती, क्योंकि यह श्रुति जिस योगी को अणिमादिक सिद्धि हो गई हैं, वह सिद्ध जिस-जिस लोक में जाने की इच्छा करता है, उस उस लोक को उसी समय प्राप्त होता है। सो जब पितृलोक में जाने की इच्छा करता है, पितृलोक को प्राप्त होके आनन्द करता है। क्योंकि—'**तेन पितृलोकेन महीयते**' इत्युक्तत्वात्। ऐसे इच्छा मात्र से ही ब्रह्मलोकादिक में विहार करता है। इससे इस श्रुति में मरकर उस लोक में जाता है, अथवा पितरों की उपासना इस लोक में करता है, इस अभिप्राय के नहीं होने से ताराचरण जी का कहना मिथ्या ही है। इससे क्या आया कि

अर्थान्तर का जो कहना है, सो निग्रहस्थान ही है। निग्रहस्थान के होने से पराजय हो गया।

'सर्वः स्थूल इत्यनेन' इत्यादिदेहान्तरगतस्य प्राप्तित्वादिति दिव्ययोगदेहप्राप्तित्वाद्योगिनो न तु प्राकृतदेहस्य माहात्म्यमिदमित्यर्थस्य जागरूकत्वात् देहान्तरम् ।

अर्थात् जो दिव्य योग-सिद्धियों से प्राप्त होता है, उस देह से यह बात होती है। और जो अयोगी का देह नाम शरीर उससे कभी यह बात नहीं होती।

तर्करत्न—प्रथमतः अस्माभिरित्यादि०।

स्वामी—दूषण अथवा भूषण का ज्ञान तो विद्या होने से होता है। अन्यथा नहीं। क्योंकि दूषण तो आपके वचनों में हैं, परन्तु आपने नहीं जाने। यह आपकी बुद्धि का दोष है, जो आपने प्रत्यक्ष दिखाये दूषणों को भी नहीं जाना। ऐसे दूषणों को तो बालक भी जान सकता है।

तर्करत्न—तन्मध्ये प्रतिमापि वर्तते इत्येव, इत्यादि।

स्वामी—आप देख लीजिये कि हम वाद ही करेंगे, जल्प और वितण्डा कभी नहीं। फिर बार-बार स्थूलत्व-साधर्म्य से ही प्रतिमा-पूजन स्थापन किया चाहते हो, सो अपनी प्रतिज्ञा को आप ही नाश करते हो, और फिर चाहते हो कि हमारा विजय होवे, सो कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि विजय तो पूर्ण विद्या और सत्य-भाषण करने से होता है, सो आप में एक भी नहीं। इससे आप विजय की इच्छा कभी मत करो, किन्तु आपको अपने पराजय की इच्छा करनी उचित है। किंच जो आप लोगों की इच्छा होवे, तो वेदादिक सत्यशास्त्रों को अर्थ-ज्ञान सहित पढ़ेंगे तथा पढ़ावेंगे, तब फिर आप लोगों का पराजय कभी न होगा, किन्तु सर्वत्र विजय ही होगा. अन्यथा नहीं।

तर्करत्न—दृष्टान्तत्वेनेत्यादि० छान्दोग्य०दहरविद्यायामित्यादि० चेति।

स्वामी—उस श्रुति का एक अंश दार्ष्टान्त में नहीं मिलने से यह आपका कहना मिथ्या ही है। सो मैंने कह दिया है, पहिले उससे जान लेना।

यह किसने कहा कि जीवता पुरुषों को उपासना का अधिकार नहीं है? सो यह आपका कहना मिथ्या ही है। क्योंकि ब्रह्मविद्या का और पाषाणादिक मूर्तिपूजन का क्या प्रसंग है? कुछ भी नहीं। इससे यह भी अर्थान्तर है, अर्थान्तर के होने से निग्रहस्थान अर्थात् पराजय-स्थान आपका है। सो आप यथावत् विचार करके जान लेवें।

तर्करत्न—**प्रथमतः अस्माभिः यत् भवत्पक्ष इत्यादि, तत्र प्रतिमापि वर्त्तते इत्येवेति।**

स्वामी—आप जान लेवें कि साधर्म्य-हेतुप्रमाण से ही बोलते हैं। इससे आपके कहे जितने दूषण हैं, वे सब आपके ऊपर ही आ गये। क्योंकि आपकी प्रतिज्ञा अर्थात् वाद ही हम करेंगे, ऐसी प्रथमतः कह चुके हैं, फिर भी जल्प और वितण्डा ही बारम्बार करते हैं। इससे अपना पराजय आप ही कर चुके। क्योंकि आपको जो विद्या और बुद्धि होती, तो कभी ऐसी भ्रष्ट बात न करते और निग्रहस्थान में बारम्बार न आते। आपको संस्कृत भाषण करने का भी यथावत् ज्ञान नहीं है। क्योंकि **प्रथमतः अस्माभिः यत्** ऐसा भ्रष्ट[1] असम्बद्ध भाषण कभी न करते। किंच **प्रथमतोऽस्माभिर्यत्** ऐसा श्रेष्ठ और संबद्ध संस्कृत ही कहते।

तर्करत्न—**दृष्टान्ते सर्वविषयाणां साम्यप्रयोजनं नास्तीति।**

स्वामी—यह भी आपका कहना भ्रष्ट ही है। क्योंकि मैंने कब ऐसा कहा था कि सब प्रकार से दृष्टान्त मिलता है। वह श्रुति एक अंश से आपके अभिप्राय से मिलती नहीं। इसमें मैंने कहा कि इस श्रुति का पढ़ना आपका मिथ्या ही है। ऐसा ही आपका कहना सब भ्रष्ट है।

भवत्पक्ष इत्यादि तत्र प्रतिमापि वर्त्तते०[2]। यह आप का जो कहना है, सो प्रतिज्ञान्तर ही है। क्योंकि स्थूलत्व तुल्य जो प्रतिमा में और गर्दभादिकों में है, इस हेतु से ही प्रतिमा-पूजन का स्थापन करा चाहते हो। सो फिर भी जल्प

---

१. सन्ध्यभावरूप भ्रष्ट। २. यह ताराचरण का वचन है

और वितण्डा ही आती है, वाद नहीं। इससे बारम्बार आपका पराजय होता गया, फिर भी आपको बुद्धि वा लज्जा न आई। यह बड़ा आश्चर्य जानना चाहिये कि अभिमान तो पण्डितता का करें; और काम करें अपण्डित का।

तर्करत्न—प्रतिमापि वर्त्तते इत्यादि, अयं तु प्रकृतविषयस्य साधकः, न तु प्रतिज्ञान्तरम्, इत्यादि।

स्वामी—प्रकृत विषय यही है कि प्रतिमा-पूजन का स्थापन, सो स्थापन वाद से और वेदादिक सत्यशास्त्रों के प्रमाण से ही करना। फिर उस प्रतिज्ञा को छोड़ के जल्प, तथा वितण्डा और मिथ्या-कल्पित वचन ये वाचस्पत्यादिकों के उनसे स्थापन करने में लग गये। अहो अत्याश्चर्य कि ताराचरण जी की बुद्धि विद्या के विना बहुत छोटी है, जो प्रतिज्ञा करके शीघ्र ही भूल जाती है। यह आपका दोष नहीं, किन्तु आपकी बुद्धि का दोष है, और आपके काम क्रोध अविद्या लोभ मोह भय विषयासक्त्यादिक दोषों का दोष है। तर्करत्न जी! यह आप देख लीजिये कि कितने बड़े-बड़े दोष आप में हैं?

प्रथम तो प्रतिमा-पूजन का स्थापन पक्ष लेके फिर जब कुछ भी स्थापन न हो सका, तब **उपासनामात्रमेव भ्रममूलम्**[1]। [इस प्रकार] अपने आप ही खण्डन प्रतिमा-पूजन का करने लगे कि भ्रममूल अर्थात् प्रतिमा-पूजन मिथ्या ही है। इससे आपके पक्ष का आपने ही खण्डन कर दिया, फिर मिथ्या ग्रन्थ जो **पञ्चदशी**, उसके प्रमाण देने लग गये। और जो प्रथम वेदादिक जो बीस[2] सनातन ऋषि मुनियों के किये मूल और व्याख्यान तथा परमेश्वर के किये चार वेद इनके प्रमाण से बोलेंगे, सो आपकी प्रतिज्ञा मिथ्या हो गई। प्रतिज्ञा के मिथ्या होने से आपका पराजय भी हो गया।

फिर—[1]**भ्रान्तिरस्माकं न दूषणीया** यह भी पहिले आपका कहना है, सो कोई भी पण्डित न कहेगा कि भ्रान्ति भूषण होता

१. ताराचरण का कथन।

२. पूर्व पृष्ठ ५१ पर गिनाये गये। ६ शास्त्रों की व्याख्याओं का संबन्ध करने से २६ होते हैं।—यु०मी०

है। यह तो आपकी भ्रान्त बुद्धि का ही वैभव है, और जो सज्जन लोग हैं, वे तो भ्रान्ति को दूषण ही जानते हैं। तथा—[1]भ्रमः खलु द्विविधः, इत्यादि० यह पञ्चदशी का वचन है। यह भी प्रतिज्ञा से विरुद्ध ही है, क्योंकि वेदादि शास्त्रों में इसकी गणना नहीं है।

पाषाणादि की रचित मूर्त्ति में देवबुद्धि का जो करना है, सो दीप-प्रभा में मणिभ्रम की नांई ही है, क्योंकि दीप तो कभी मणि न होगा, और मणि तो सदा मणि ही रहेगा। सो आपने मुख से कहा परन्तु हृदय में शून्यता के होने से कुछ भी नहीं जाना। ऐसा ही आपका सब कथन भ्रष्ट है। आपको जो कुछ भी ज्ञान होय तब तो जान सकते, अन्यथा नहीं।

तर्करत्न जी ने आगे-आगे जो कुछ कहा है, सो-सो भ्रष्ट ही है। बुद्धिमान् लोग विचार लेवें, ताराचरण जी इस प्रकार के मनुष्य हैं कि कोई बुद्धिमान् [के] सामने जैसा बालक। और भाषण वा श्रवण करने के योग्य भी नहीं, क्योंकि जिसको बुद्धि और विद्या होती है, सोई कहने वा श्रवण में समर्थ होता है। सो तर्करत्न जी [में] न बुद्धि है, और न कुछ विद्या है, इससे न कहने न सुनने में समर्थ हो सकते हैं। इनका नाम जो तर्करत्न कोई ने रखा है, सो अयोग्य ही रखा है। क्योंकि—

अविज्ञाते तत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः।[2]

यह गोतम मुनि जी का सूत्र है। इसका यह अभिप्राय है कि जिस पदार्थ का तत्वज्ञान अर्थात् जिसका यथावत् स्वरूपज्ञान न होवे, उसके ज्ञान के वास्ते कारण अर्थात् हेतु और प्रत्यक्षादि प्रमाणों की उपपत्ति अर्थात् यथावत् युक्ति से ऊह नाम वितर्क अर्थात् विविध विचार और युक्तिपूर्वक विविध वाक्य कहना विनयपूर्वक श्रेष्ठों मे, उसे 'तर्क' कहते हैं। तर्क—सो इसका लेशमात्र सम्बन्ध भी ताराचरण जी में नहीं होने से तर्करत्न तो नाम अनर्थक है।

किन्तु इनके कथन में थोड़े से दोष मैंने दिखाये हैं, जैसा कि समुद्र के आगे एक बिन्दु। किन्तु उनके भाषण में केवल दोष ही हैं, गुण एक भी नहीं, सो विद्वान् लोग विचार कर लेवें।

---

१. ताराचरण का कथन। २. न्याय १।१।४०॥

वेई ये ताराचरण जी हैं कि जब काशी नगर के पण्डितों से आनन्द बाग में सभा[1] भई थी, उसमें विशुद्धानन्द स्वामी तथा बाल-शास्त्री इत्यादिक पण्डित आये थे। उनके सामने डेढ पहर तक एक बात में मौन करके बैठे रहे थे, दूसरी बात भी मुख से नहीं निकली थी। और जो उनका कुछ भी सामर्थ्य होता, तो अन्य पण्डित लोग क्यों शास्त्रार्थ करते ?

जब उनने—**उपासनामात्रमेव भ्रममूलम्** [कहा, तब] उसी वक्त श्री भूदेव मुखर्ज्या आदिक श्रेष्ठ लोग उठ गये कि पण्डित आये तो प्रतिमा-पूजन का स्थापन करने को किन्तु वह अपना आप खण्डन कर चुके। ये पण्डित कुछ भी नहीं जानते हैं, ऐसा कहके उठ के चले गये। फिर अन्य पुरुषों से उनने कहा कि पण्डित हार गया।

श्रीमत्कथनेनैव प्रतिमापूजनविघातो जात एवेति शिष्टा विचार-यन्तु—ताराचरण जी से मैंने कहा कि आपके कहने से ही प्रतिमा पूजन का विघात अर्थात् खण्डन हो गया, [यह भद्र जन विचार लें] और मैं तो खण्डन करता ही हूं।

फिर पण्डित जी चुप होके ऊपर के स्थान में चले गये। उसके पीछे मैं भी ऊपर जाने को चला। तब पण्डित सीढ़ी में मिले। मैंने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा कि ऊपर आओ। फिर ऊपर जाके सब वृन्दावनचन्द्रादिकों के सामने उन पण्डित ताराचरण से मैंने कहा कि आप ऐसा बखेड़ा क्यों करते फिरते हैं ?

तब वे बोले कि मैं **तो काक-भाषा का खण्डन करता हूं, और सत्यशास्त्र पढ़ने तथा पढ़ाने का उपदेश भी करता हूं, और पाषाणादिक मूर्त्ति-पूजन भी मिथ्या ही जानता हूं। परन्तु मैं जो सत्य-सत्य कहूं, तो मेरी आजीविका नष्ट हो जाये, तथा काशीराज महाराज जो सुनें तो मुझको निकाल बाहर कर देवें। इससे मैं सत्य-सत्य नहीं कह सकता हूं, जैसे कि आप सत्य-सत्य कहते हैं।**

देखना चाहिए कि इस प्रकार के मनुष्यों से जगत् का उपकार तो कुछ नहीं बनता, किन्तु अनुपकार ही सदा बनता है। बिना सत्य

१. अर्थात् काशी-शास्त्रार्थ।

उपदेश के उपकार कभी नहीं हो सकता। इतना मुझको अवकाश नहीं है कि मिथ्यावादी पुरुषों के साथ सम्भाषण किया करें। जो-जो मैंने लिखा है, इसमें इसी से सज्जन लोग जान लेवें।'[1]

[प्रतिमादि-शब्द-विचार]

इसके आगे जिन शब्दों के अर्थ के नहीं जानने से टीकाकारों को भ्रम हो गया है, तथा नवीन ग्रन्थ बनाने वाले और कहने वाले तथा सुनने वाले को भी भ्रम होता है, उन शब्दों का शास्त्र-रीति तथा प्रमाण और युक्ति से जो ठीक-ठीक अर्थ है, उन्हों का प्रकाश संक्षेप से लिखा जाता है।

प्रथम तो एक **प्रतिमा** शब्द है—

प्रतिमीयते यया सा प्रतिमा अर्थात् प्रतिमानम्—जिससे प्रमाण अर्थात् परिमाण किया जाये, उसको कहना 'प्रतिमा'। जैसे कि छटाँक, आधपाव, पावसेर, सेर, पंसेरी इत्यादि और यज्ञ के चमसादिक पात्र। क्योंकि इनसे पदार्थों के परिमाण किये जाते हैं, इससे इन्हों का ही नाम है—'प्रतिमा'। यही अर्थ मनु भगवान् ने मनुस्मृति में लिखा है—

> **तुलामानं प्रतिमानं, सर्वं च स्यात् सुलक्षितम्।**
> **षट्सु षट्सु च मासेषु, पुनरेव परीक्षयेत्॥**[2]

पक्ष-पक्ष में वा मास-मास में, अथवा छठ-छठवें मास तुला की राजा परीक्षा करे। क्योंकि तराजू की दण्डी में भीतर छिद्र करके पारा उसमें डाल देते हैं। जब कोई पदार्थ को तौल के लेने लगते हैं, तब दण्डी को पीछे नमा देते हैं, फिर पारा पीछे जाने से चीज अधिक आती है। और जब देने के समय में दंडी आगे नमा देते हैं, उससे चीज थोड़ी जाती है। इससे तुला की परीक्षा अवश्य करनी चाहिये। तथा प्रतिमान अर्थात् प्रतिमा की परीक्षा [राजा] अवश्य

१. यहां तक शास्त्रार्थ का वृत्तान्त है। इस से आगे प्रतिमा-पूजन की विस्तृत आलोचना है।—यु. मी.

२. मनु ८।४०३॥

करें, जिससे कि अधिक न्यून प्रतिमा अर्थात् दुकान के बाट जितने हैं, उन्हों का ही नाम 'प्रतिमा'। इसी वास्ते प्रतिमा के भेदक अर्थात् घाट बाढ़ तौलने वाले के ऊपर दण्ड लिखा है:—

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ।
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पंच दद्याच्छतानि च ॥[1]

यह मनु जी का श्लोक है। इसका अभिप्राय यह है कि संक्रम अर्थात् रथ, उस रथ के ध्वजा की यष्टि, जिसके ऊपर ध्वजा बांधी जाती है, और प्रतिमा छटांक आदिक बटखरे इन तीनों को जो तोड़ डाले वा अधिक न्यून कर देवे, उनको उससे राजा बनवा लेवे, और जैसा जिसका ऐश्वर्य उसके योग्य दण्ड करे। जो दरिद्र होवे तो उससे पांच सौ पैसा राजा दण्ड लेवे। जो कुछ धनाढ्य होवे तो पांच सौ रुपया उससे दण्ड लेवे। और जो बहुत धनाढ्य होवे, उससे पांच सौ अशर्फी दण्ड लेवे। रथादिकों को उसी के हाथ से बनवा लेवे। इससे सज्जन लोग बटखरा तथा चमसादिक यज्ञ के पात्र उन्हों को ही 'प्रतिमा' शब्द से निश्चित जानें।

दूसरा **पुराण** शब्द है—

पुराभवं पुराभवा वा पुराभवश्च इति पुराणं पुराणी पुराणः । जो पुराण पदार्थ होवे, उसको कहते हैं पुराणा। सो सदा विशेषण वाची ही रहता है, तथा पुरातन, प्राचीन और प्राक्तन आदिक सब शब्द हैं। तथा उनके विरोधी विशेषणवाची नूतन, नवीन, अद्यतन, अर्वाचीन आदिक शब्द हैं। जो विशेषणवाची शब्द होते हैं, वे सब परस्पर व्यावर्तक होते हैं। जैसे कि यह चीज पुरानी है, तथा यह चीज नवीन है। पुराण शब्द जो है, सो नवीन शब्द की व्यावृत्ति कर देता है। यह पदार्थ पुराना है अर्थात् नया नहीं, और यह पदार्थ नया है अर्थात् पुराना नहीं। जहां-जहां वेदादिकों में पुराणादिक शब्द आते हैं, वहां-वहां इन अर्थों के वाचक ही आते हैं, अन्यथा नहीं। ऐसा ही अर्थ गोतम मुनि जी के किये सूत्रों के ऊपर जो वात्स्यायन मुनि का किया भाष्य, उसमें लिखा है[2]। वहां ब्राह्मण पुस्तक जो शतपथादिक, उनों का ही नाम 'पुराण' है।

---

१. मनु ६।२८५॥
२. लोकव्यवस्थापनमितिहासपुराणस्य । ४।१।६२॥

तथा शंकराचार्य जी ने भी शारीरिक-भाष्य में और उपनिषद्-भाष्य में ब्राह्मण और ब्रह्मविद्या का ही 'पुराण' शब्द से ग्रहण किया है[1]। जो देखना चाहे, सो उन शास्त्रों में देख लेवे। वह इस प्रकार से कहा है कि जहां-जहां प्रश्न और उत्तरपूर्वक कथा होवे, उसका नाम 'इतिहास' है। और जहां-जहां वंश-कथा होवे ब्राह्मण पुस्तकों में, उसका नाम 'पुराण' है। और ऐसे जो कहते हैं कि अठारह ग्रन्थों का नाम पुराण है, यह बात तो अत्यन्त अयुक्त है। क्योंकि उस बात का वेदादिक सत्यशास्त्रों में प्रमाण कहीं नहीं है, और कथा भी इनों में अयुक्त ही है। इनों का नाम कोई पुराण रक्खें, तो इनों से पूछना चाहिये कि वेद क्या नवीन हो सकते हैं? सब ग्रन्थों से वेद ही पुराने हैं।

और यह बात कहते हैं कि अश्वमेध की जो पूर्ति हो जाय, उसके दसवें दिन पुराण की कथा यजमान सुने[2]। सो तो ठीक-ठीक है कि ब्राह्मण पुस्तक की कथा सुने, और जो ऐसा कहे कि ब्रह्मवैवर्तादिकों की क्यों नहीं सुने? उससे पूछना चाहिये कि सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में जब-जब अश्वमेध भये थे, तब-तब किस की कथा सुनी थी? क्योंकि उस वक्त व्यास जी का जन्म भी नहीं भया था। तब पुराण कहां थे?

१. बृ० उ० २।४।१० में पठित इतिहास पुराण के उदाहरण ब्राह्मण ग्रन्थों के ही दिये है। यथा—इतिहास इति—उर्वशीपुरुरवसोः संवादादिः, 'उर्वशी ह्यप्सराः' इत्यादि ब्राह्मणमेव। पुराणम्—'असद्वा इदमग्र आसीत्' इत्यादि। सायणाचार्य ने भी तै० आ० ८।२१ के भाष्य में स्पष्ट लिखा है—**ब्राह्मणं चाष्टधा भिन्नम्। तद्भेदास्तु बाजसनेयिभिराम्नायन्ते—'इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि** (बृ० उ० २।४।१०) इति। आगे सायण ने भी शंकराचार्य के समान ही इन के उदाहरणों के रूप में ब्राह्मण वाक्य ही उद्धृत किये हैं।

२. शतपथ में अश्वमेध के नवम दिन पुराण सुनने का विधान है—**अथ नवमेऽहन्**········**तानुपदिशति पुराणं वेदः सोयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीत**। शत० १३।४।३।१३॥ शांखायन श्रौत० १६।२।२५-२७ में भी नवम दिन में पुराण पाठ का निर्देश है। आश्व० श्रौत० १०।७ में अष्टम दिन में श्रवण का विधान है।

और जो ऐसा कहे कि व्यास जी युग-युग में थे, यह बात भी उसकी मिथ्या है। क्योंकि अब तक युधिष्ठिरादिकों का निशान दिल्ली आदिकों में देख पड़ता है।[१] उसी वक्त व्यास जी और व्यास जी की माता आदिक वर्तमान थे। इससे यह भी उनका कहना मिथ्या ही है।

पुराण जितने हैं ब्रह्मवैवर्तादिक, वे सब सम्प्रदायी लोगों ने अपने-अपने मतलब के वास्ते बना लिये हैं। व्यास जी का वा अन्य ऋषि-मुनियों का किया एक भी पुराण नहीं है, क्योंकि वे बड़े विद्वान् थे और धर्मात्मा। उनका वचन सत्य ही है, तथा छः दर्शनों में उनों के सत्यवचन देखने में आते हैं, मिथ्या एक नहीं। और पुराणों में मिथ्या कथा तथा परस्पर विरोध ही है। और जैसे वे सम्प्रदायी लोग हैं, वैसे ही उनके बनाये पुराण भी सब नष्ट [=भ्रष्ट] हैं। सो सज्जनों को ऐसा ही जानना उचित है, अन्यथा नहीं।

तीसरा **देवालय**, और चौथा **देवपूजा** शब्द है—

देवालय, देवायतन, देवागार तथा देवमन्दिर इत्यादिक सब नाम यज्ञशालाओं के ही हैं। क्योंकि जिस स्थान में देवपूजा होवे, उसके नाम हैं देवलयादिक। और देवा संज्ञा है परमेश्वर की, तथा परमेश्वर की आज्ञा जो वेद उसके मन्त्रों की भी देव संज्ञा है। देव जो होता है, सोई देवता है। यह बात पूर्वमीमांसा शास्त्र में विस्तार से लिखी है।[२] जिसको देखने की इच्छा हो, वह उस शास्त्र में देख ले, विस्तार से लिखी है, जो कि शास्त्र कर्मकांड के ऊपर है, वे जैमिनि मुनि के किये सूत्र हैं। यहां तक उसमें लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिक देव जो देवलोक में रहते हैं, उनका भी पूजन कभी न करना चाहिये,[३] एक परमेश्वर के विना। सो वेद में इस प्रकार से निषेध किया है कि—

१. यहां सम्भवतः पाण्डवों के किले की ओर यह संकेत है।

२. मीमांसा ६।१।६-६ के मन्त्र-देवताधिकरण में मन्त्र को ही देवता माना गया है।—यु० मी०

३. मीमांसा ६।१।६-६ के मन्त्र-देवताधिकरण में विग्रहवती=शरीरधारी देवता का खण्डन स्पष्ट शब्दों में किया गया है। इस से स्पष्ट है कि यदि ब्रह्मा विष्णु महेशादिक कोई देव लोक में रहने वाले देवता हों, तो भी वे यज्ञ में आहूत=बुलाये नहीं जाते।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन्[1] ।

यह यजुर्वेद की श्रुति है। ब्रह्मादिक जो देव वे जब यज्ञ करते हैं, तब उनों से अन्य कौन देव हैं, जो कि उनके यज्ञों में आके भाग लेवें। सो उनों से आगे कोई देव नहीं है। और जो कोई मानेगा तो उनके मत में अनवस्था दोष आवेगा। इससे परमेश्वर और वेदों के मन्त्र उनों को ही देव और देवता मानना उचित है, अन्य कोई नहीं।

अग्निर्देवता[2] इत्यादिक जो यजुर्वेद में लिखा है, सो अग्नि आदिक सब नाम परमेश्वर ही के हैं, क्योंकि देवता शब्द के विशेषण देने से। इसमें मनुस्मृति का प्रमाण है—

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणम् ॥१॥
प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥२॥
एतमग्निं वदन्त्येके, मनुमेके प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥३॥[3]

इन श्लोकों से आत्मा—जो परमेश्वर—उसी का देवता नाम है, और अग्न्यादिक जितने नाम हैं, वे भी परमेश्वर के ही हैं। परन्तु जहां-जहां ऐसा प्रकरण हो कि उपासना, स्तुति, प्रार्थना तथा इस प्रकार के विशेषण, वहां-वहां परमेश्वर का ही ग्रहण होता है, अन्यत्र नहीं[4]। किन्तु '**सर्वमात्मन्यवस्थितम्**' सिवाय परमेश्वर के कोई में सब जगह नहीं ठहर सकता, और '**प्रशासितारं सर्वेषाम्**' इत्यादिक विशेषणों से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है, अन्य का नहीं। क्योंकि सब का शासन करने वाला विना परमेश्वर से कोई नहीं; तथा सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म और पर-पुरुष परमेश्वर से भिन्न ऐसा कोई नहीं हो सकता है।

निरुक्त में भी यह लिखा है कि—**यत्र देवतोच्यते तत्र तल्लिङ्गो मन्त्रः**।[5] जहां-जहां देवता शब्द आवे, तहां-तहां उस नाम वाले मन्त्र

१. यजुः ३१।१६॥ २. यजुः १४।२०॥
३. मनु १२।११९, १२२, १२३॥ [१२३ पाठान्तर से है।]
४. तुलना करो सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समु०।
५. निरुक्त में ऐसा साक्षात् वचन नहीं है। यह तदर्थ-प्रतिपादक वचन है। 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में भी ऐसा ही वचन पढ़ा है।

को ही लेना। जैसा कि—'**अग्निर्देवता**'[१] इसमें अग्नि शब्द आया सो जिस मन्त्र में अग्नि शब्द होवे, उस मन्त्र का ही ग्रहण करना। '**अग्निमीडे पुरोहितम्**'[२] इति, यह मन्त्र ही देवता है, अन्य कोई नहीं। इससे क्या आया कि **परमेश्वर और वेदों के मन्त्र ही 'देव' और 'देवता' हैं।**

जिस स्थान में होम, परमेश्वर का विचार ध्यान और समाधि करें, उसके नाम हैं देवालयादिक। इसमें मनुस्मृति का प्रमाण भी है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिसेवनम् ॥१॥
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि ।
पितॄन् श्राद्धैर्नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥२॥[३]

इन श्लोकों से क्या आया कि होम जो है सोई देवपूजा है, अन्य कोई नहीं। और होम-स्थान जितने हैं, वे ही देवालयादिक शब्दों से लिये जाते हैं। **पूजा नाम सत्कार**, क्योंकि '**अतिथिपूजनम्**', '**होमैर्देवानर्चयेत्**'— अतिथियों का पूजन नाम सत्कार करना, तथा देव परमेश्वर और मन्त्र इन्हों का सत्कार इसका नाम है 'पूजा', अन्य का नहीं। और पाषाणादि-मूर्ति-स्थान देवालयादिक शब्दों से भी नहीं लेना। तथा घण्टानादादि पूजा शब्द से भी कभी नहीं लेना।

देवल और देवलक शब्द का यह अर्थ है कि—

यद्वित्तं यज्ञशीलानां, देवस्वं तद्विदुर्बुधाः ।
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं प्रचक्षते ॥[४]

यह मनु का श्लोक है। इसका यह अभिप्राय है कि जिन्हों का यज्ञ करने का शील अर्थात् स्वभाव होवे, उनका सब धन यज्ञ के वास्ते ही होता है अर्थात् देवार्थ धन है। '**यद्धनं तदेव देवस्वम्**' अर्थात् होम के लिए जो धन होवे, उसका नाम **देवस्व** है। सो भिक्षा अथवा प्रतिग्रह करके यज्ञ के नाम से धन लेके यज्ञ तो करे नहीं, और उस धन से अपना व्यवहार करे, इसका नाम है

१. यजुः १४।२०॥ २. ऋक् १।१।१॥
३. मनु ३।७०, ८१॥
४. मनु ११।२०॥ ['यद् धनं' इतने पाठ-भेद से]

'देवल'। सो इसकी शास्त्र में निन्दा लिखी है। देवपितृकार्य में उसको निमन्त्रण कभी न करना चाहिये, ऐसा उसका निषेध लिखा है। और जो यज्ञ के धन की चोरी करता है, वह होता है 'देवलक'। **कुत्सितो देवलो देवलकः। 'कुत्सिते'[1] इत्यनेन कन् प्रत्ययः।** देवलक तो अत्यन्त निन्दित है।

एक यह अन्धकार लोगों का देखना चाहिये कि **'विद्वान् भोजनीयः सत्कर्तव्यश्चेति'**—विद्वान् को भोजन कराना चाहिये और उसका सत्कार भी करना चाहिये। इससे कोई की ऐसी बुद्धि न होगी कि पाषाणादिक मूर्ति को भोजन कराना वा उसका सत्कार करना चाहिये। वह भी बात ऐसी ही है।

एक बात वे लोग कहते हैं कि पाषाणादिक तो देव नहीं हैं, परन्तु भाव से वे देव हो जाते हैं। उनसे पूछना चाहिये कि भाव सत्य होता है वा मिथ्या?[2] जो वे कहें कि भाव सत्य होता है, फिर उनसे पूछना चाहिये कि कोई भी मनुष्य दुःख का भाव नहीं करता, फिर उसको क्यों दुःख होता है? और सुख का भाव सब मनुष्य चाहते हैं, फिर उनको सुख सदा क्यों नहीं होता? फिर वे कहते हैं कि यह बात तो कर्म से होती है। अच्छा तो आपका भाव कुछ भी नहीं ठहरा, अर्थात् मिथ्या ही हुआ है, सत्य नहीं हुआ। आपसे मैं पूछता हूं कि अग्नि में जल का भाव करके हाथ डाले, तो क्या वह न जल जायेगा? किन्तु जल ही जायेगा। इससे क्या आया—पाषाण को पाषाण ही मानना और देव को देव मानना चाहिये; अन्यथा नहीं। इससे जो जैसा पदार्थ है, वैसा ही उसको सज्जन लोग मानें।

काश्यादिक स्थान, गंगादिक तीर्थ, एकादशी आदिक व्रत, राम शिव कृष्णादिक नाम स्मरण, तथा तोबा शब्द वा यीसू के विश्वास से पापों का छूटना और मुक्ति का होना, तिलक छाप माला धारण, तथा शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, क्रिश्चन और मुहम्मदी और नानक, कबीर आदिक सम्प्रदाय, इन्हों से पाप सब छूट जाते हैं और मुक्ति भी हो जाती है—यह अन्यथा बुद्धि ही

---

१. अष्टा० ५।३।७४॥

२. यह विचार 'सत्यार्थ प्रकाश' समु० ११ में भी किया गया है।—यु. मी.

है। क्योंकि इस प्रकार के सुनने और मिथ्या निश्चय के होने से सब लोग पापों में प्रवृत्त हो जाते हैं; कोई न भी होगा।

कभी कोई मनुष्य पाप करने में भय नहीं करते हैं। जैसे—

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं, काशीक्षेत्रे विनश्यति।
काशीक्षेत्रे कृतं पापं पंचक्रोश्यां विनश्यति ॥१॥
पंचक्रोश्यां कृतं पापमन्तर्गृह्यां विनश्यति।
अन्तर्गृह्यां कृतं पापमविमुक्ते विनश्यति ॥२॥
अविमुक्ते कृतं पापं स्मरणादेव नश्यति।
काश्यां तु मरणान्मुक्तिर्नात्र कार्या विचारणा ॥३॥

इत्यादि श्लोक काशीखण्डादिकों में लिखे हैं। '**काश्यां मरणान्मुक्तिः**' कोई पुरुष इसको श्रुति कहता है। सो यह वचन उसका मिथ्या ही है, क्योंकि चारों वेदों के बीच में कहीं नहीं है। कोई ने मिथ्या जाबालोपनिषद्[1] रच लिया है, किन्तु अथर्ववेद के संहिता में तथा कोई वेद के ब्राह्मण में इस प्रकार की श्रुति है नहीं। इनसे यह श्रुति तो कभी नहीं हो सकती, किन्तु कोई ने मिथ्या कल्पना कर ली है, जैसे कि '**अन्यक्षेत्रे कृतं पापं०**' इत्यादि मिथ्याश्लोक बना लिये हैं। इस प्रकार के श्लोकों को सुनने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रष्ट होने से सदा पाप-प्रवृत्त हो जाते हैं। इससे सब सज्जन लोगों को निश्चित जानना चाहिये कि जितने-जितने इस प्रकार के माहात्म्य लिखे हैं, वे सब मिथ्या ही हैं। इन्हों से मनुष्यों का बड़ा अनुपकार होता है। जो कोई धर्मात्मा बुद्धिमान् राजा होवे, तो इन पुस्तकों का पठन-पाठन, सुनना-सुनाना बन्द कर दे, और वेदादि सत्य शास्त्रों की यथावत् प्रवृत्ति करा देवे। तब इस उपद्रव की यथावत् शांति होने से सब मनुष्य शिष्ट हो जायें, अन्यथा नहीं।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी। [यो० समा० सू० ३५] इस सूत्र के भाष्य में लिखा है कि—

एतेन चन्द्रादित्यग्रहमणिप्रदीपरत्नादिषु प्रवृत्तिरुत्पन्ना विषयवत्येव वेदितव्येति।

---

१. जाबालोपनिषद् २। मुक्तिकोपनिषद् १।१६॥ दोनों स्थानों पर यह भाव है, पाठ नहीं।

इससे प्रतिमा-पूजन कभी नहीं आ सकता, क्योंकि इन्हों में देवबुद्धि करना नहीं लिखा। किन्तु जैसे वे जड़ हैं, वैसे ही योगी लोग उनको जानते हैं। और बाह्यमुख जो वृत्ति, उसको भीतरमुख करने के वास्ते योगशास्त्र की प्रवृत्ति है। बाहर के पदार्थ का ध्यान करना योगी लोग को नहीं लिखा। क्योंकि जितने सावयव पदार्थ हैं, उनमें कभी चित्त की स्थिरता नहीं होती। और जो होवे तो मूर्तिमान् धन पुत्र दारादिक के ध्यान में सब संसार लगा ही है, परन्तु चित्त की स्थिरता कोई की भी नहीं होती।

इस वास्ते यह सूत्र लिखा—**विशोका वा ज्योतिष्मती**। [यो० समा० सू० ६६] इसका यह भाष्य है—

प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनीत्यनुवर्त्तते । हृदय-पुण्डरीके धारयतो बुद्धिसंवित् बुद्धसत्त्वं हि भास्वरमाकाशकल्पन्तत्र स्थिति-वैशारद्यात् प्रवृत्तिः सूर्येन्दुग्रहमणिप्रभारूपाकारेण विकल्पते । तथास्मितायां समापन्नं चितं निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं शान्तमनन्त-मस्मितामात्रं भवति । यत्रेदमुक्तम्—तमणुमात्रमात्मानमनुविद्या-स्मीति एवं तावत् संप्रजानीत इति । एषा द्वयी विशोका विषयवती, अस्मितामात्रा च प्रवृत्तिर्ज्योतिष्मतीत्युच्यते, यया योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति ।

इसमें यह देखना चाहिये कि हृदय में धारणा चित्त की लिखी। इससे निर्मल प्रकाशस्वरूप चित्त होता है। जैसा सूक्ष्म विभु आकाश है, वैसी हीं योगी की बुद्धि होती है। तत्र ताम अपने हृदय में विशाल स्थिति के होने से बुद्धि की जो शुद्ध प्रवृत्ति, सोई बुद्धि सूर्य चन्द्र ग्रह मणि इन्हों की जैसी प्रभा, वैसी ही योगी की बुद्धि समाधि में होती है।

तथा अस्मितामात्रा अर्थात् यही मेरा स्वरूप है, ऐसा साक्षात्कार स्वरूप का ज्ञान बुद्धि को जब होता है, तब चित्त निस्तरङ्ग अर्थात् निष्कम्प समुद्र की नाईं एक रस व्यापक होता है। तथा शान्त, निरुपद्रव, अनन्त अर्थात् जिसकी सीमा न होवे, यही मेरा स्वरूप है, अर्थात् मेरा आत्मा है—सो विगत अर्थात् शोकरहित जो प्रवृत्ति वही विषयवती प्रवृत्ति कहाती है। उसको अस्मितामात्र प्रवृत्ति कहते हैं, तथा ज्योतिष्मती भी उसी को कहते हैं। योगी का जो चित्त है, सोई चन्द्रादित्य आदिक स्वरूप हो जाता है।

सू०—स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा। [यो० समा० सू० ३८]

भाष्य—स्वप्नज्ञानालम्बनं निद्राज्ञानावलम्बनं वा तदाकारं योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति।

जैसे स्वप्नावस्था में चित्त ज्ञानस्वरूप होके पूर्वानुभूत संस्कारों को यथावत् देखता है, तथा निद्रा अर्थात् सुषुप्ति में आनन्दस्वरूप ज्ञानवान् चित्त होता है, ऐसा ही जागृतावस्था में जब योगी ध्यान करता है। इस प्रकार आलम्ब से तब योगी का चित्त स्थिर हो जाता है।

सू०—यथाभिमतध्यानाद्वा। [यो० समा० सू० ३९]

भाष्य—'यद्वाभिमतं तदेव ध्यायेत्, तत्र लब्धस्थितिकमन्यत्रापि स्थितिपदं लभत इति। नासिकाग्रे धारयतो या गन्धसंवित्' इससे लेके **'निद्राज्ञानालम्बनं वा'** यहां तक शरीर में जितने चित्त के स्थिर करने के वास्ते स्थान लिखे हैं, इन्हों में से कोई स्थान में योगी चित्त को धारण करे। जिस स्थान में अपनी अभिमति, उसमें चित्त को ठहराये।

सू०—देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। [योग० विभू० सू० १]

भाष्य—नाभिचक्रे हृदयपुण्डरीके मूर्ध्नि ज्योतिषि नासिकाग्रे जिह्वाग्र इत्येवमादिषु देशेषु बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति। बन्धो धारणा नाभि-हृदय-मूर्द्धा-ज्योति०।

अर्थात् नेत्र, नासिकाग्र, जिह्वाग्र इत्यादिक देशों के बीच में चित्त को योगी धारण करे। तथा बाह्य विषय जैसा कि ओङ्कार वा गायत्री मन्त्र, इनमें चित्त लगावे, हृदय से। क्योंकि—

सू०—तज्जपस्तदर्थभावनम्। [यो० स० पाद सू० २८]

यह सूत्र है योग का। इस [ओङ्कार] का योगी जप अर्थात् चित्त से पुनः पुनः आवृत्ति करे, और इसका अर्थ जो ईश्वर उसको हृदय में विचारे।

सू०—तस्य वाचकः प्रणवः। [योग० स० सू० २७]

ओङ्कार का वाच्य ईश्वर है। और उस का वाचक ओङ्कार है। बाह्य विषय से इनको ही लेना, और कोई को नहीं। क्योंकि अन्य में प्रमाण कहीं नहीं।

सू०—तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् । [योग० विभू० सू० २]

भाष्य—तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानतासदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तेरणापरामृष्टो ध्यानम् ।

तीन देशों में अर्थात् नाभि आदिकों में, ध्येय जो आत्मा उस आलम्बन की और चित्त की एकतानता, अर्थात् परस्पर दोनों की एकता, चित्त आत्मा से भिन्न न रहे तथा आत्मा चित्त से पृथक् न रहे, उसका नाम है—सदृशप्रवाह। जब चित्त से प्रत्येक चेतन से ही युक्त रहे, अन्य प्रत्यय कोई पदार्थान्तर का स्मरण न रहे, तब जानना कि ध्यान ठीक हुआ।

सू०—तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।
[यो० विभू० सू० ३]

जब ध्याता ध्यान और ध्येय इन तीनों का पृथक् भाव न रहे, तब जानना कि समाधि सिद्ध हो गयी।

सू०—त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः । [यो० वि० सू० ७]

यमादिक पांच अंगों से धारणा ध्यान और समाधि ये तीन अन्तरङ्ग हैं, और यमादिक बहिरङ्ग हैं।

सू०—भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥२६॥ चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥२७॥ ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥२८॥ नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥२९॥ मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥३२॥ प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥३३॥
[यो० विभू० पाद सू०]

इत्यादिक सूत्रों से यह प्रसिद्ध जाना जाता है कि धारणादिक तीन अङ्ग आभ्यन्तर के हैं। सो हृदय में ही योगी परमाणु-पर्यन्त जितने पदार्थ हैं, उनको योग-ज्ञान से ही जानता है। बाहर के पदार्थों से किंचिन्मात्र भी ध्यान में सम्बन्ध योगी नहीं रखता, किन्तु आत्मा से ही ध्यान का सम्बन्ध है और से नहीं। इस विषय में जो कोई अन्यथा कहे, सो उसका कहना सब सज्जन लोग मिथ्या ही जानें। क्योंकि:—

सू०—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । [यो० समा० सू० २]

सू०—तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् । [यो० समा० सू० ३]

जब योगी चित्तवृत्तियों को निरोध करता है बाहर और भीतर से, उसी वक्त द्रष्टा जो आत्मा उस चेतन स्वरूप में ही स्थित हो जाता है, अन्यत्र नहीं।

सू०—विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् [यो० समा० सू० ८]

विपरीत ज्ञान जो होता है, उसी को मिथ्याज्ञान कहते हैं। उसको तो योगी छोड़ के ही होता है, अन्यथा कभी नहीं। इससे क्या आया कि कोई योगशास्त्र से पाषाणादिक मूर्ति का पूजन कहे, सो मिथ्या ही कहता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

श्लोक

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यवचना।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा [1]राष्ट्रिशरणा,
स को दान्तः शान्तो विदितविदितौ वेद्यविदितः॥

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितमिदमिति विज्ञेयम्॥

१. 'राष्ट्रिन्' शब्द निघण्टु [२।२२] में ईश्वर-नामों में पढ़ा है।

३. सत्यधर्म-विचार–मेला-चांदापुर

सम्पादकीय

उत्तर-प्रदेश के शाहजहांपुर जिलान्तर्गत चांदापुर कस्बे में मुन्शी प्यारेलाल नामक एक कबीरपन्थी कायस्थ जमींदार निवास करते थे। उन्होंने परस्पर धर्म-चर्चा के लिये दितांक १९, २० मार्च सन् १८७७ (तदनुसार चैत्र शु० ५, ६ सं० १९३४ वि०) को एक मेले का आयोजन किया। इस धर्म-चर्चा-प्रसंग में ईसाई पादरी, मुसलमान मौलवी तथा पण्डित-गण एकत्रित हुए। आर्य धर्म का प्रतिनिधित्व स्वामी दयानन्द तथा मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबादी ने किया। स्वामी जी की हार्दिक इच्छा थी कि यह मेला निरन्तर दो सप्ताह तक चलता रहे, ताकि सभी विचारणीय एवं विवाद-ग्रस्त विषयों पर तात्त्विक-निर्णय हो सके, परन्तु मौलवियों और पादरियों की असहमति के कारण यह मेला अधिक दिन तक नहीं चल सका। **इसमें निम्न विचारणीय विषय रक्खे गये थे—**

१. ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से किस समय और किस उद्देश्य से रचा ?

२ ईश्वर सर्वव्यापक है या नहीं ?

३. ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?

४. वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वर का वाक्य होने में क्या प्रमाण है ?

५. मुक्ति क्या पदार्थ है और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?

समय के अभाव में केवल प्रथम तथा पञ्चम विषय पर ही विचार हो सका। 'मेला-चांदापुर' के नाम से जो पुस्तक प्रकाशित हुई है, उसके अन्त में ग्रन्थ-रचना के समय का सूचक निम्न श्लोक मिलता है—

ऋषिकालाङ्कब्रह्माब्दे नभश्शुक्ले दले तिथौ।
द्वादश्यां मंगलवारे ग्रन्थोऽयं पूरितो मया ॥

अर्थात् १९३७ वि० श्रावण शुक्ला द्वादशी मंगलवार को यह ग्रन्थ लिखा गया।

१२ अप्रैल १८७८ के ऋषि के एक पत्र से विदित होता है कि मेला-चांदापुर के शास्त्रार्थ का वृत्तान्त उर्दू भाषा में लिखा जाकर उक्त तिथि से पूर्व ही प्रकाशित हो गया था, तथा उसका मूल्य पांच पैसे था। परन्तु उक्त उर्दू-संस्करण के उपलब्ध न होने से यह ज्ञात नहीं होता कि उसका लेखक तथा प्रकाशक कौन था? मार्च सन् १८८० के 'आर्य-दर्पण' मासिक पत्र में मुन्शी बख्तावरसिंह ने **'सत्यधर्म विचार'** शीर्षक से इस शास्त्रार्थ का विवरण उर्दू और हिन्दी में पृथक्-पृथक् समानान्तर कालमों में प्रकाशित किया था। यह विवरण उक्त पत्र के पृष्ठ ५३ से पृष्ठ ९० तक छपा था। इसी विवरण को उसी प्रकार उर्दू व हिन्दी में 'वैदिक यन्त्रालय, काशी' से १९३७ वि० में पृथक् पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। यही इस शास्त्रार्थ का प्रथम संस्करण माना जा सकता है। थोड़े समय पश्चात् इसका पृथक् उर्दू संस्करण भी छपा, जिसकी सूचना हमें 'दयानन्द दिग्विजयार्क' खण्ड २ पृष्ठ ५ पर छपे विज्ञापन से मिलती है। यहां इस उर्दू संस्करण को **'सत्यासत्य-विवेक'** का नाम दिया गया है। यद्यपि स्वामी जी के प्रकाशित शास्त्रार्थों में पादरी टी. जी. स्काट से हुये बरेली के शास्त्रार्थ को 'सत्यासत्य विवेक' के नाम से प्रकाशित किया गया है। बात यह है कि उस युग में सत्य-धर्म विचार, सत्यासत्य-विवेक, सत्यमत-निरुपण जैसे नाम सामान्यतया हर ऐसे ग्रन्थ के लिये प्रयुक्त होते थे, जिनमें परस्पर धर्म-चर्चा या वास्तविक धर्म-जिज्ञासा निहित रहती थी। मेला-चांदपुर में हुए इस शास्त्रार्थ का विवरण मुसलमानों की ओर से **'मुबाहसा शाहजहांपुर'** के नाम से उर्दू में प्रकाशित हुआ था। 'मुजतबाई प्रेस' दिल्ली में छपी इस पुस्तक को पं० महेशप्रसाद जी ने १९१४ में देखा था।

चांदापुर-शास्त्रार्थ का संक्षिप्त विवरण पं० गोपाल शास्त्री, शर्मा रचित 'दयानन्ददिग्विजयार्क' के मयूख ६ में छपा है। उसे हम पाठकों के मनोरञ्जनार्थ यहां उद्धृत करते हैं—

खुलासा हाल—मेला चाँदापुर, जिला शाहजहांपुर

यह मेला कबीरपन्थी मुन्शी प्यारेलाल साहब रईस कौम कायस्थ ने अपना हजारहा रुपया लगाकर सत्य-धर्म के निर्णयार्थ

अपने ग्राम चांदापुर में लगाया था। इसकी मन्जूरी जनाब मिस्टर राबर्ट साहिब हाकिम जिला से लेकर इश्तिहार बहुत दिन पहले से सर्वत्र भेजा गया था, कि जो साहब इस मेले में आयेंगे उनका बहुत अच्छो प्रकार आतिथ्य होगा। तदनुसार चारों तरफ से हजारों आलिम व फाजिल आर्य व मुसलमान व ईसाई आदि लोग एकत्र हुये थे, उनमें से विशेष प्रसिद्धों का नाम अन्त में लिखा है।

मिती चैत्र सुदी चौथ व पंचमी संवत् १९३४ विक्रमी मुताबिक तारीख १९ व २० मार्च सन् १८७७ ई० को यह अपूर्व मेला बड़ी धूमधाम और आनन्द के साथ हुआ था। प्रथम दिवस मेला के प्रबन्ध और नियम इस प्रकार बांधे गये कि ईसाई व मुसलमानों में से पांच पांच और आर्यों में से केवल दो मनुष्य अर्थात् श्रीयुत स्वामीजी व मुन्शी इन्द्रमणि जी शास्त्रार्थ करने को प्रधान सभासद रहें। और ये लोग मुन्शी प्यारेलाल जी के अधोलिखित पांचों प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार अपने-अपने मतानुसार प्रीतिपूर्वक देवें कि जिससे हाज़िरीन जलसा तृप्त होवे। और इन तीनों में से किसका मत (मजहब) सत्य है, यह अच्छी प्रकार सब को प्रतीति हो जावे। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर प्रथम पादरी नोविल वा स्काट साहब आदि, बाद मौलवी कासिम साहब आदि, पश्चात् स्वामी जी महाराज देवें। जो कोई किसी पर प्रश्न करे वह १० मिनट में करे और हर एक का उत्तर आधे घण्टे में पूरा हो जाया करे।

दूसरे दिन बाग में दिन के साढ़े सात बजे से ११ बजे तक और १ बजे से ४ बजे तक शास्त्रार्थ होकर मेला समाप्त हुआ। स्वामीजी चाहते थे कि और भी कुछ दिन इसकी यथेच्छ चर्चा रहे, परन्तु पादरी व मौलवी लोग न जमे। तथापि उतने ही अवसर में सबको निश्चित हो गया कि सच्चा धर्म वैदिक ही है। सब लोग स्वामी जी के गुणों की तारीफ करते व उनको अन्तःकरण से समर्पित धन्यवाद देते हुये निज-निज स्थानों को गये। समाप्ति के समय मौलवी लोगों ने बड़ा गड़बड़ डाल दिया था। इसलिये कि गमारों को अपनी जीत प्रकाशित होवे, परन्तु तारीफ है पादरी लोगों की कि जिनने सिर तक ऊपर नहीं किया, बल्कि शास्त्रार्थ के समय मौलवी लोगों से स्पष्ट कहा कि भाई मौलवी

लोगो! स्वामीजी ऐसी बातों का उत्तर हजार प्रकार से दे सकते हैं। हम तुम हजारों मिलकर भी इनसे बातें करें तो भी इनके बराबर नहीं हो सकते। इसलिए इस विषय में अब अधिक खींचातानी करना सभ्यधर्म नहीं। इसके बाद पादरी लोग रात्रि को स्वामीजी के डेरे पर गये, वहां अपनी तरफ से पुनर्जन्म पर चार घण्टा वार्ता करके निःसंदेह होकर चले गये।

तारीख २१ व २२ को खत बनाम मुन्शी इन्द्रमणि जी मोती मियां साहब रईस शाहजहांपुर ने इस मजमून के भेजे कि आप स्वामी जी को साथ ले इसी जगह तशरीफ लावें, तो आपसे मौलवी अहमद अली साहब पुनर्जन्म के बारे में बहस करेंगे। उसके अनुसार ये दोनों साहब ता० २२ की दोपहर को शाहजहांपुर पहुंच कर डिप्टी साहिब के मकान पर ता० २३ के दोपहर तक ठहरे और इन्तजार किया, परन्तु कोई भी सामने नहीं आया? क्या आते, वह तो केवल मुसलमानों की गीदड़ भभकी थी।

नाम शख्श मोतबिरान हाजिरीन मेला चाँदापुर

शाहजहांपुर के बाबू हरगोबिन्द साहब हेडक्लर्क कलक्टरी, मौलवी मोती मियां साहब, लाला रामप्रसाद साहब आनरेरी मजिस्ट्रेट; लाला बनवारी लाल, बाबू बिहारीलाल, मुन्शी सोहन लाल, मुहम्मद हैदर अली मुख्त्यार, हाफिजउल्ला खां, मुहम्मद अली साहब व सखावत हुसैन साहब वकील आदि बहुत से। लखनऊ के राजाराम खजानची आदि बहुत से रईस। मुरादाबाद के मुन्शी जगन्नाथ प्रसाद साहब रईस आदि। अमरोहा के पं० बद्रीदास आदि रईस। अलीगढ़ के कुंवर मुकुन्दसिंह आदि रईस। बरेली के पं० मथुराप्रसाद आदि रईस। बनारस के मुन्शी दयाशंकर साहब डिप्टी आदि। देहली के मौलवी अब्दुल मनसूर आदि। इस प्रकार और भी कानपुर व फर्रुखाबाद आदि नगरों के बहुत से सभ्य लोग मौजूद थे। जिसको इस मेले की कैफियत विस्तारपूर्वक देखनी होवे वह भेजकर इसकी जुदी बनी हुई किताब 'वैदिक-यंत्रालय' इलाहाबाद से मंगवा लेवे, जो देखने के लायक और नागरी लिपि की भी मिलेगी।

'सत्य-धर्म-विचार' के निम्न संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं—

१. वैदिक-यंत्रालय का संस्करण।

२. आर्य-साहित्य-मण्डल, अजमेर।

३. गोबिन्दराम हासानन्द दिल्ली संस्करण। सम्पादक पं० जगत् कुमार शास्त्री।

४. Mela Chandapur (Translated into English) by the late Bawa Arjan Singh, Editor Arya Patrika and Revised by Bawa Chhajju Singh. अंग्रेजी का यह संस्करण The Aryan Printing, Publishing and General Trading Company Limited, Lahore द्वारा प्रकाशित हुआ था।

यहां आगे 'सत्यधर्मविचार' का वैदिक यंत्रालय द्वारा प्रकाशित पाठ दिया जाता है।

ओं खम्ब्रह्म

सत्यधर्म-विचार–मेला-चांदापुर

१९-२० मार्च १८७७ चैत्र सुदी ४-५, सं० १९३४ वि०

[जिसको मुन्शी बखतावर सिंह एडीटर 'आर्य' दर्पण ने शोधकर भाषा और उर्दू में वैदिक यन्त्रालय, काशी में अपने प्रबन्ध से छापकर प्रकाशित किया था।]

[भूमिका]

धमचर्चा-ब्रह्मविचार मेला चांदापुर[1], कि जिसमें बड़े बड़े विद्वान्[2] आर्य्यों, ईसाइयों और मुसलमानों की ओर से एक सत्य के निर्णय के लिए इकट्ठे हुए थे; सज्जन पाठकगणों के हितार्थ मुद्रित किया जाता है, कि जिससे प्रत्येक मतों का अभिप्राय सब पर प्रकाशित हो जावे। सब सज्जनों को, किसी मत के क्यों न हों, उचित है कि पक्षपातरहित होकर इसको सुहृद्भाव से देखें।

विदित हो कि यह मेला दो दिन रहा। मेले के आरम्भ से पूर्व कई लोगों ने स्वामीजी के समीप जाकर कहा कि आर्य और मुसलमान मिल के ईसाईयों का खण्डन करें तो अच्छा है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह मेला सत्य और असत्य के निर्णय के लिए किया गया है। इसलिए हम तीनों को उचित है कि पक्षपात छोड़कर प्रीतिपूर्वक सत्य का निश्चय करें, किसी से विरोध करना कदापि योग्य नहीं।

इसके पश्चात् विचार का समय नियत किया गया। पादरियों ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं ठहर सकते, और यही विज्ञापन में भी छापा गया था। इस पर स्वामीजी ने कहा कि हम इस

---

१. यहां यह मेला मुन्शी प्यारेलाल साहब की ओर से प्रतिवर्ष हुआ करता है।

२. इस धर्मचर्चा में आर्य्यों की ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मुन्शी इन्द्रमणिजी, ईसाइयों की ओर से पादरी स्काट साहब, पादरी नोबिल साहब, पादरी पार्कर साहब और पादरी जान्सन साहब और मुसलमानों की ओर से मौलवी मौहम्मद कासम साहब, सैयद अब्दुल मंसूर साहब विचार के लिये आये थे।

प्रतिज्ञा पर आये थे कि मेला कम से कम पांच और अधिक से अधिक आठ दिन तक रहेगा। क्योंकि इतने दिनों में सब मतों का अभिप्राय अच्छे प्रकार ज्ञात हो सकता है। जब इस प्रकार वे लोग प्रसन्न न हुए तब **मुन्शी इन्द्रमणिजी** ने कहा कि स्वामीजी! आप निश्चिन्त रहें। सच्चा मत एक दिन में प्रकट हो जावेगा।

फिर निम्नलिखित **पांच प्रश्नों** पर विचार करना सब ने स्वीकार किया—

१—सृष्टि को परमेश्वर ने किस चीज़ से किस समय और किसलिए बनाया?

२—ईश्वर सब में व्यापक है वा नहीं?

३—ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है?

४—वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है?

५—मुक्ति क्या है और किस प्रकार मिल सकती है?

पहिले दिन की सभा

मुन्शी प्यारेलाल साहब ने खड़े होकर सबसे पहिले कहा—

"प्रथम ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये कि जो सर्वव्यापक और सर्वान्तर्य्यामी है। हम लोगों के बड़े भाग्य हैं कि उसने हम सब को ऐसे राजप्रबन्ध के समय में उत्पन्न किया कि जिसमें सब लोग निर्विघ्नता से निर्भय होकर मतमतान्तरों का विचार कर सकते हैं। धन्य है इस आज के दिन को और बड़े भाग्य हैं इस भूमि के कि ऐसे सज्जन पुरुष और ऐसे ऐसे विद्वान् मतमतान्तरों के जानने वाले यहां सुशोभित हुए हैं। आशा है कि सब विद्वान् अपने अपने मतों की वार्ताओं को कोमल वाणी से कहेंगे, कि जिससे सत्य और असत्य का निर्णय होकर मनुष्यों की सत्यमार्ग में प्रवृत्ति हो जावेगी।"

इसके पश्चात् जब मुललमानों और ईसाइयों की ओर से पांच-पांच मनुष्य और आर्य्यों की ओर से **स्वामीजी और मुन्शी इन्द्रमणिजी** दो ही विचार के लिये नियत किये गए, तब मौलवियों और पादरियों ने हठ किया कि आर्य्यों की ओर से भी पांच मनुष्य होने चाहियें। इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि आर्य्यों की ओर से हम दो ही बहुत हैं।

तब मौलवियों ने पण्डित लक्ष्मण शास्त्रीजी का नाम अपने ही आप पादरियों से लिखवाना चाहा। तब स्वामीजी ने उनसे तो यह कहा कि आप लोगों को अपनी अपनी ओर के मनुष्यों के लिखवाने का अधिकार है, हमारी ओर का कुछ नहीं, और पण्डितजी से यह कहा कि आप नहीं जानते, ये लोग हमारे और तुम्हारे बीच विरोध कराके आप तमाशा देखना चाहते हैं। इस बात के कहने पर भी एक मौलवी ने पण्डितजी का हाथ पकड़ के उनसे कहा कि तुम भी अपना नाम लिखवा दो, इनके कहने से क्या होता है? तिस पर स्वामीजी ने कहा, कि अच्छा जो सब आर्य्य लोगों की सम्मति हो तो इनका भी नाम लिखवा दो, नहीं तो केवल आप लोगों के कहने से इनका नाम नहीं लिखा जावेगा। फिर एक **मौलवी साहब** उठकर बोले कि सब हिन्दुओं से पूछा जावे कि इन दोनों के नाम लिखाने में सब की सम्मति है वा नहीं? इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि जैसे आपको सिवाए फ़िर्क़े सुन्नत जमात के अहले शिया आदि फ़िर्क़ों ने सम्मति करके नहीं बिठलाया, और जैसे कि पादरी साहब को रोमन कैथोलिक फ़िर्क़ों ने नियत नहीं किया, ऐसे ही आर्य्य लोगों में भी बहुतसों की हमारे बिठलाने में सम्मति और बहुतसों की असम्मति होगी। परन्तु आप लोगों को हमारे बीच गड़बड़ मचाने का कुछ अधिकार नहीं है। **मुन्शी इन्द्रमणिजी** ने कहा कि हम सब आर्य्य लोग वेदादि शास्त्रों को मानते हैं, और पण्डितजी भी इन्हीं को मानते हैं। जो किसी का मत आर्य्य लोगों से वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध हो, तो चौथा पन्थ नियत करके भले ही बिठला दीजियेगा।

इन बातों से मौलवियों का यह अभिप्राय था कि ये लोग आपस में झगड़ें तो हम तमाशा देखें। पण्डितजी का नाम लिखना आर्य्य लोगों ने योग्य न समझा। फिर मौलवी लोग नमाज पढ़ने को चले गये, और जब लौट कर आये तब उनमें से मौलवी मुहम्मद कासम साहब ने कहा कि प्रथम मैं एक घन्टे तक उन प्रश्नों के सिवाए और कुछ अपने मत के अनुसार कहना चाहता हूं। उसमें जो किसी को कुछ शंका होगी तो उसका मैं समाधान करूंगा। इसको सब ने स्वीकार किया। मौलवी साहब के कथन का तात्पर्य यह है—

मौलवी मुहम्मद कासम साहब—परमेश्वर की स्तुति के पश्चात् यह कहा कि—जिस जिस समय में जो जो हाकिम हो उसी की सेवा

करनी उचित है। जैसे कि इस समय जो गवर्नर है, उसी की सेवा करते और उसी की आज्ञा मानते हैं, और जिसकी कि आज्ञापालन का समय व्यतीत हो गया, न कोई उसकी सेवा करता है और न उसकी आज्ञा को मानता है। और जैसे जब कोई कानून व्यर्थ हो जाता है, तो उसके अनुसार कोई नहीं चलता; परन्तु जो कानून उसकी जगह नियत किया जाता है, उसी के अनुसार सब को चलना होता है। तो इन्हीं दृष्टान्तों के समान जो जो अवतार और पैगम्बर पूर्व समय में थे और जो जो पुस्तकें तौरेत जबूर बाईबल उनके समय में उतरीं थीं, अब उनके अनुसार न चलना चाहिये। इस समय के सब से पिछले पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब हैं, इसलिए उनको पैगम्बर मानना चाहिए, और जो ईश्वरवाक्य अर्थात् कुरान उनके समय में उतरा है, उस पर विश्वास करना चाहिए। और हम श्रीराम और श्रीकृष्ण आदि और ईसामसीह की निन्दा नहीं करते, क्योंकि वे अपने अपने समय में अवतार और पैग़म्बर थे, परन्तु इस समय तो हजरत मुहम्मद साहब का ही हुकुम चलता है, दूसरे का नहीं। जो कोई हमारे मजहब वा कुरानशरीफ़ वा हजरत मुहम्मद साहब को बुरा कहेगा, वह मारे जाने के योग्य है।

पादरी नोबिल साहब—मुहम्मद साहब के पैगम्बर और कुरान के ईश्वरीय वाक्य होने में सन्देह है, क्योंकि कुरान में जो जो बातें लिखी हैं सो-सो बाइबिल की हैं, इसलिये कुरान अलग आसमानी पुस्तक नहीं हो सकता। और हजरत ईसामसीह के अवतार होने में कुछ सन्देह नहीं, क्योंकि उसके व्याख्यान से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह सत्यमार्ग बतलाने वाला था। केवल उसके व्याख्यान से ही मनुष्य मुक्ति पा सकता है, और उसने चमत्कार भी दिखलाये थे।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब—हम हजरत ईसा को अवतार तो मानते हैं, और बाइबिल को आसमानी पुस्तक भी मानते हैं, परन्तु ईसाइयों ने उसमें बहुत कुछ घटत बढ़त कर दी है, इसलिये यह वही मूल नहीं है। और जो कि उसका कुरान ने खण्डन भी कर दिया है, इसलिये वह विश्वास के योग्य नहीं रही। और हमारे हज़रत पैग़म्बर साहब का अवतार सबसे पिछला है, इसलिये हमारा मत सच्चा है।

फिर और मौलवियों ने बाइबिल में से एक आयत पादरी साहब को दिखलाई, और कहा कि देखिये आप ही लोगों ने लिखा है कि इस आयत का पता नहीं लगता।

पादरी नोबिल साहब—जिस मनुष्य ने यह लिखा है, वह सत्यवादी था, जो उसने लेखक-भूल को प्रसिद्ध कर दिया, तो कुछ बुरा नहीं किया। और हम लोग सत्य को चाहते हैं, असत्य को नहीं, इसलिये हमारा मत सत्य है।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब—यह तो ठीक है कि कुछ बुरा नहीं किया, परन्तु जबकि किसी पुस्तक में वा दस्तावेज में एक भी बात झूठ लिखी हुई विदित हो जावे, तो वह पुस्तक कदाचित् माननीय नहीं रहती, और न वह दस्तावेज़ ही अदालत में स्वीकार हो सकता है।

पादरी नोबिल साहब—क्या कुरान में लेखक-दोष नहीं हो सकता? इस बात पर हठ करना अच्छा नहीं। और जो हम सत्य ही को मानते हैं और सत्य ही की खोज करते हैं, इस कारण उस लेखक-भूल को हमने स्वीकार कर लिया। और तुम्हारे कुरान में बहुत घटत बढ़त हुई, जिसके प्रमाण में एक मौलवी ईसाई ने अरबी भाषा में बहुत कुछ कहा और सूरतों के प्रमाण दिये।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब—आप बड़े सत्य के खोजी हैं! (मुख बनाकर) जो आप सत्य ही को स्वीकार करते हैं, तो तीन ईश्वर क्यों मानते हो?

पादरी नोबिल साहब—हम तीन ईश्वर नहीं मानते, वे तीनों एक ही हैं, अर्थात् केवल एक ईश्वर से ही प्रयोजन है। ईसामसीह में मनुष्यता और ईश्वरता दोनों थीं, इस कारण वह दोनों व्यवहारों को करता है, अर्थात् मनुष्य के आत्मा से मनुष्यों का व्यवहार और ईश्वर के आत्मा से ईश्वर का व्यवहार अर्थात् चमत्कार दिखलाना।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब—वाह वाह! एक घर में दो तलवार क्योंकर रह सकती हैं? यह कहना पादरी साहब का अत्यन्त मिथ्या है। उसने तो कहीं नहीं कहा कि मैं ईश्वर हूं, तुम हठ से उसको ईश्वर बनाते हो।

पादरी नोबिल साहब—एक आयत अंजील की पढ़ी, और कहा कि यह एक आयत है जिसमें मसीह ने अपने आपको ईश्वर कहा है,

और कई एक चमत्कार भी दिखलाये हैं। इससे उसके ईश्वर होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब—जो वह ईश्वर था, तो अपने आपको फांसी से क्यों न बचा सका ?

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब—कुरान में कई एक आयतों का परस्पर विरोध दिखलाया, और कहा कि हुकुम का खण्डन हो सकता है, समाचार का नहीं हो सकता। सो आपके कुरान में समाचारों का खण्डन है। पहिले वैतूलमुकद्दस की ओर शिर नमाते थे, फिर काबे की ओर नमाने लगे। और कई आयतों का अर्थ भी सुनाया, और कहा कि ईसामसीह पर विश्वास लाये विना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती। और तुम्हारे कुरान में बाइबिल का और ईसा-मसीह का मानना लिखा है। तुम लोग क्यों नहीं मानते हो ?

ऐसी ही बातों के होते होते सन्ध्या हो गई।

दूसरे दिन की सभा

प्रातःकाल के साढ़े सात बजे सब लोग आये, और वे पांच प्रश्न कि जो स्वीकार हो चुके थे पढ़े गये। **वे पाँच प्रश्न ये हैं—**

१—सृष्टि को परमेश्वर ने किस चीज़ से किस समय और किसलिए बनाया ?

२—ईश्वर सब में व्यापक है वा नहीं ?

३—ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?

४—वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ?

५—मुक्ति क्या है और किस प्रकार मिल सकती है ?

इसके पश्चात् कुछ देर तक यह बात आपस में होती रही कि एक दूसरे को कहता था कि पहिले वह वर्णन करे। तदनन्तर **पादरी स्काट साहब** ने पहिले प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ किया, और यह भी कहा कि यद्यपि यह प्रश्न किसी काम का नहीं। मेरी समझ में ऐसे प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ है, परन्तु जबकि सब की सम्मति है तो मैं इसका उत्तर देता हूं—

पादरी स्काट साहब—यद्यपि हम नहीं जानते कि ईश्वर ने यह संसार किस चीज़ से बनाया है, परन्तु इतना हम जान सकते हैं कि अभाव से भाव में लाया है, क्योंकि पहिले सिवाय ईश्वर के दूसरा पदार्थ कुछ न था। उसने अपने हुकुम से सृष्टि को रचा है। यद्यपि यह भी हम जान नहीं सकते कि उसने कब संसार को रचा, परन्तु उसका आदि तो है। वर्षों की गणना हमको नहीं जान पड़ती, और न सिवाय ईश्वर के कोई जान सकता है। इसलिए इस बात पर अधिक कहना ठीक नहीं। ईश्वर ने किसलिए इस जगत् को रचा? यद्यपि इसका भी उत्तर हम लोग ठीक ठीक नहीं जान सकते, परन्तु इतना हम जानते हैं कि संसार के सुख के लिए ईश्वर ने यह सृष्टि की है, कि जिसमें हम लोग सुख पावें और सब प्रकार के आनन्द करें।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब—उसने अपने शरीर से प्रकट अर्थात् उत्पन्न किया। उससे हम अलग नहीं, जो अलग होते तो उसकी प्रभुता में न होते। कब से यह संसार बना, यह कहना व्यर्थ है, क्योंकि हमको रोटी खाने से काम है; न यह कि रोटी कब बनी है। यह जगत् सृष्टि के लिए रचा गया है, क्योंकि सब पदार्थ मनुष्य के लिए ईश्वर ने रचे हैं। और हमको अपनी भक्ति के लिए ईश्वर ने रचा है। देखो! पृथिवी हमारे लिये है, हम पृथिवी के लिए नहीं, क्योंकि जो हम न हों तो पृथिवी की कुछ हानि नहीं, परन्तु पृथिवी के न होने से हमारी बड़ी हानि होती है। ऐसे ही जल, वायु, अग्नि आदि सब पदार्थ मनुष्य के लिए रचे गये हैं। मनुष्य सब सृष्टि में श्रेष्ठ है, उसको बुद्धि भी इसी श्रेष्ठता की परीक्षा के लिए दी है, अर्थात् मनुष्य को अपनी भक्ति के लिए और इस जगत् को मनुष्य के लिए ईश्वर ने रचा है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—पहिले मेरी सब मुसलमानों और ईसाइयों और सुनने वालों से यह प्रार्थना है कि यह मेला केवल सत्य के निर्णय के लिए किया गया है। और यह ही मेला करने वालों का प्रयोजन है कि देखें सब मतों में कौनसा मत सत्य है। जिसको सत्य समझें उसको अंगीकार करें। इसलिए यहां हार और जीत की अभिलाषा किसी को न करनी चाहिये, क्योंकि सज्जनों का यह ही मत होना चाहिये कि सत्य की सर्वदा जीत और

असत्य की सर्वदा हार होती रहे। परन्तु जैसे मौलवी लोग कहते हैं कि पादरी साहब ने यह बात झूठ कही ऐसे ही ईसाई कहते हैं कि मौलवी साहब ने यह बात झूठी कही, ऐसी वार्ता करना उचित नहीं। विद्वानों के बीच यह नियम होना चाहिये कि अपने अपने ज्ञान और विद्या के अनुसार सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन कोमल वाणी के साथ करें, कि जिससे सब लोग प्रीति से मिलकर सत्य का प्रकाश करें। एक दूसरे की निन्दा करना, बुरे बुरे वचनों से बोलना, द्वेष से कहना कि वह हारा और मैं जीता, ऐसा नियम कदाचित् न होना चाहिये। सब प्रकार पक्षपात छोड़कर सत्य-भाषण करना उचित है, और एक दूसरे से विरोधवाद करना यह अविद्वानों का स्वभाव है, विद्वानों का नहीं। मेरे इस कहने का यह प्रयोजन है कि कोई इस मेले में अथवा और कहीं कठोर वचन का भाषण न करें।

अब मैं इस पहले प्रश्न का उत्तर कि "ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से और किस समय और किसलिये रचा है?" अपनी छोटी सी बुद्धि और विद्या के अनुसार देता हूं—

परमात्मा ने सब संसार को प्रकृति से अर्थात् जिसको अव्यक्त अव्याकृत और परमाणु नामों से कहते हैं, रचा है। सो यह ही जगत् का उपादान कारण है, जिसका वेदादि शास्त्रों में नित्य करके निर्णय किया है, और यह सनातन है। जैसे ईश्वर अनादि है वैसे ही सब जगत् का कारण भी अनादि है। जैसे ईश्वर का आदि और अन्त नहीं, वैसे ही इस जगत् के कारण का भी आदि और अन्त नहीं है। जितने इस जगत् में पदार्थ दीखते हैं, उनके कारण से एक परमाणु भी अधिक वा न्यून कभी नहीं होता। जब ईश्वर इस जगत् को रचता है, तब कारण से कार्य रचता है। सो जैसा कि यह कार्यजगत् दीखता है, वैसा ही इसका कारण है। सूक्ष्म द्रव्यों को मिला कर स्थूल द्रव्यों को रचता है, तब स्थूल द्रव्य होकर देखने और व्यवहार के योग्य होते हैं। और यह जो अनेक प्रकार का जगत् दीखता है, उसको इसी कारण से ईश्वर नें रचा है। जब प्रलय करता है, तब इस स्थूल जगत् के पदार्थों के परमाणुओं को पृथक् पृथक् कर देता है। क्योंकि जो जो स्थूल से सूक्ष्म होता है, वह आंखों से दीखने में नहीं आता; तब बालबुद्धि लोग ऐसा समझते हैं कि वह

द्रव्य नहीं रहा। परन्तु वह सूक्ष्म होकर आकाश में ही रहता है, क्योंकि कारण का नाश कभी नहीं होता। और नाश अदर्शन को कहते हैं, अर्थात् वह देखने में न आवे। जब एक एक परमाणु पृथक् पृथक् हो जाते हैं, तब उनका दर्शन[1] नहीं होता। फिर जब वे ही परमाणु मिलकर स्थूल द्रव्य होते हैं, तब दृष्टि में आते हैं। यह नाश और उत्पत्ति की व्यवस्था ईश्वर सदा से करता आया है, और ऐसे ही सदा करता जायगा। इसकी संख्या नहीं कि कितनी बार ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की, और कितनी बार कर सकेगा। इस बात को कोई नहीं कह सकता।

अब इस विषय को जानना चाहिये कि जो लोग 'नास्ति' अर्थात् अभाव से 'अस्ति' अर्थात् भाव मानते हैं, और शब्द[2] से जगत् की उत्पत्ति जानते हैं, उनका कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि अभाव से भाव का होना सर्वथा असम्भव है। जैसे कोई कहे कि वन्ध्या के पुत्र का विवाह मैंने आंखों से देखा, तो जो उसके पुत्र होता तो वन्ध्या क्यों कहलाती? फिर उसके पुत्र का अभाव होने से उसके पुत्र का विवाह कब हो सकता है? और जैसे कोई कहे कि मैं किसी स्थान में नहीं था और यहां आया हूं, अथवा सर्प बिल में न था और निकल भी आया, तो ऐसी वार्ता विद्वानों की नहीं होती। इसमें कोई प्रमाण नहीं, क्योंकि जो वस्तु है ही नहीं

१. जब कोई वस्तु अत्यन्त छोटी हो जाती है, तो फिर उसे और छोटा करना असम्भव है। जो किसी वस्तु के टुकड़े करते-करते उसको इतना छोटा कर दें कि फिर उसके टुकड़े होना असम्भव हो जावे तो उसको 'परमाणु' कहते हैं। जितनी वस्तुएं संसार में हैं, वे सब परमाणु से बनती हैं। जब किसी पत्थर को तोड़ डालते हैं, और उसके अत्यन्त छोटे-छोटे टुकड़ों को पृथक्-पृथक् कर देते हैं, तो वे परमाणु कि जिनके इकट्ठे होने से फिर पत्थर बनता है, सदा किसी न किसी स्वरूप से बने रहते हैं। एक परमाणु का भी इस संसार में से अभाव नहीं होता, केवल स्वरूप और गुणों में भेद हुआ करता है। जब मोम की बत्ती को जलाते हैं, तो देखने में यह जान पड़ता है कि थोड़ी देर में सब बत्ती नहीं रहती, न जाने कि क्या हो गई। परन्तु वे परमाणु जितने बत्ती में थे और ही रूप के वायु के सदृश हो जाते हैं। उनमें के एक परमाणु का भी अभाव कदाचित् नहीं होता।

२. 'कुन' या 'हो जा' कहने से।

फिर वह क्यों कर हो सकती है ? जैसे कि हम लोग अपने-अपने स्थानों में न होते तो यहां चांदापुर में कभी न आ सकते। देखो शास्त्र में भी लिखा है कि—"**नासत आत्मलाभः, न सत आत्महानम्**"[1] अर्थात् जो है सो आगे को होता है, और जो नहीं है वह कभी नहीं हो सकता। क्योंकि इस जगत् में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसका कारण कोई न हो।

इससे यह सिद्ध हुआ कि भाव से भाव अर्थात् अस्ति से अस्ति होती है। नास्ति से अस्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती। यह "**बदतो व्याघात**" अर्थात् अपनी बात को आप ही काटने के सदृश बात है। पहिले किसी वस्तु का अन्यथा अभाव कहकर फिर यह कहना कि उसका भाव हो गया, पूर्वापर विरोध है। इसको कोई विद्वान् नहीं मान सकता, और न किसी प्रमाण से ही सिद्ध कर सकता है कि विना कारण के कोई कार्य हो सके। इसलिये अभाव से भाव अर्थात् नास्ति से वा हुकुम से जगत् की उत्पत्ति का होना सर्वथा असम्भव है। इससे यह जानना चाहिये कि ईश्वर ने जगत् के अनादि उपादान कारण से ही सब संसार को रचा है, अन्यथा नहीं।

यहां दो प्रकार का विचार [उप]स्थित होता है—**एक** यह कि जो जगत् का कारण ईश्वर हो तो ईश्वर ही सारे जगत् का रूप हुआ; तो ज्ञान, सुख, दुःख, जन्म, मरण, हानि, लाभ, नरक, स्वर्ग, क्षुधा, तृषा, ज्वर आदि रोग, बन्ध और मोक्ष सब ईश्वर में ही घटते हैं। फिर कुत्ता, बिल्ली, चोर, दुष्ट आदि सब ईश्वर ही बन गया। **दूसरा**—यह कि जो सामग्री मानें तो ईश्वर कारीगर के समान होता है। तो **उत्तर** यह है कि कारण तीन प्रकार का होता है। एक उपादान—कि जिसको ग्रहण करके किसी पदार्थ को बनावें। जैसे मिट्टी लेकर घड़ा और सोना लेकर गहना और रूई लेकर कपड़ा बनाया जाय। दूसरा निमित्त—जैसे कुम्हार अपनी विद्या और सामर्थ्य के साथ घड़े को बनाता है। तीसरा साधारण—जैसे चाक आदि साधन और दिशा, काल इत्यादि।

१. नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ गीता २।१६॥

अब जो ईश्वर को जगत् का उपादान कारण मानें तो ईश्वर ही जगत्रूप बनता है, क्योंकि मिट्टी से घड़ा अलग नहीं हो सकता। और जो निमित्त मानें तो जैसे कुम्हार मिट्टी के विना घड़ा नहीं बना सकता और जो साधारण मानें जैसे मिट्टी से अपने आप विना कुम्हार के घड़ा नहीं बना सकता। इन दोनों व्यवस्थाओं में वह पराधीन वा जड़ ठहरता है। इसलिये जो यह कहते हैं कि ईश्वर जगत् रूप बन गया है, तो उनके कहने से चोर आदि होने का दोष ईश्वर में आता है। इससे ऐसी व्यवस्था माननी चाहिए कि जगत् का कारण अनादि है, और नाना प्रकार के जगत् को बनाने वाला परमात्मा है। और इसी प्रकार जीव भी अपने स्वरूप से अनादि हैं, और स्थूल कार्य जगत् तथा जीवों के कर्म नित्यप्रवाह से अनादि हैं। ऐसे माने विना किसी प्रकार से निर्वाह नहीं हो सकता।

अब यह कि ईश्वर ने किस समय जगत् को बनाया है अर्थात् संसार को बने हुये कितने वर्ष हो गये? इसका **उत्तर** दिया जाता है—

सुनो भाइयो! इस प्रश्न का हम लोग तो उत्तर दे सकते हैं, आप लोग नहीं दे सकते। क्योंकि जब आप लोगों के मतों में से कोई अठारहसौ वर्ष से, कोई तेरहसौ वर्ष से और कोई पांचसौ वर्ष से उत्पत्ति कहता है, तो फिर आप लोगों के मत में जगत् के इतिहास के वर्षों का लेख किसी प्रकार नहीं हो सकता। और हम आर्य लोग सदा से कि जब से यह सृष्टि हुई बराबर विद्वान् होते चले आये हैं। देखो! इस देश से और सब देशों में विद्या गई है। इस बात में सब देश वालों के इतिहासों का प्रमाण है कि आर्यावर्त्त देश से मिस्र देश में और वहां से यूनान और यूनान से योरोप आदि में विद्या फैली है। इसलिये इसका इतिहास किसी दूसरे मत में नहीं हो सकता।

देखो! हम आर्य लोग संसार की उत्पत्ति और प्रलय के विषय में वेद आदि शास्त्रों की रीति से सदा से जानते हैं, कि हज़ार चतुर्युगियों का एक ब्राह्म दिन और इतने ही युगों की एक ब्राह्म-रात्रि होती है। अर्थात् जगत् की उत्पत्ति होके जब तक कि वर्तमान होता है, उसका नाम ब्राह्म-दिन है। और प्रलय होके जब तक हजार चतुर्युगी पर्य्यन्त उत्पत्ति नहीं होती, उसका नाम ब्राह्म-रात्रि है। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं, और एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों का

होता है[1]। सो इस समय सातवां वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान हो रहा है। और इससे पहिले ये छः मन्वन्तर बीत चुके हैं—स्वायम्भव, स्वारोचिष, औत्तामि, तामस, रैवत और चाक्षुष। अर्थात् १९६०८५२९७६ वर्षों[2] का भोग हो चुका है, और अब २३३३२२७०२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं। सो हमारे देश के इतिहासों में यथार्थ क्रम से बातें लिखी हैं। और ज्योतिष शास्त्र में भी मितीवार प्रति संवत् घटाते बढ़ाते रहे हैं। और ज्योतिष की रीति से जो वर्षपत्र बनता है उसमें भी यथावत् सबको क्रम से लिखते चले आते हैं। अर्थात् एक एक वर्ष घटाते और एक एक वर्ष भोगने में आज तक बढ़ाते आये हैं। इस बात में सब आर्य्यावर्त्त देश के इतिहास एक हैं। किसी में कुछ विरोध नहीं।

फिर जब कि जैन मतवाले और मुसलमान इस देश के इतिहासों को नष्ट करने लगे, तब आर्य लोगों ने सृष्टि के इतिहास को कण्ठ कर लिया। सो बालक से लेके वृद्ध तक नित्यप्रति उच्चारण करते हैं कि जिसको संकल्प कहते हैं, और वह यह है:—

---

१. एक ब्राह्म दिन में १४ मन्वन्तर, १ मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी=१४×७१=९९४ चतुर्युगियां इस गणना से होती हैं। ऊपर १००० चतुर्युगियों का ब्राह्मदिन और ब्राह्मरात्रि स्पष्ट निर्दिष्ट है। यह ६ चतुर्युगियों के बराबर का काल प्रत्येक मन्वन्तर में होने वाली अवान्तर प्रलयों के सन्धिकाल का है। एक सन्धिकाल एक कृतयुग के बराबर=१७२८००० वर्ष का होता है। एक ब्राह्मदिन के १४ मन्वन्तरों के आद्यन्त की १५सन्धियां होती हैं।—यु. मी.

२. इसी प्रकार की वर्ष-गणना 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' और 'सत्यार्थ-प्रकाश' में भी उपलब्ध होती है। परन्तु ऋषि दयानन्द ने जिन 'सूर्य-सिद्धान्त' और 'मनुस्मृति' के आधार पर यह गणना लिखी है, उन में प्रतिमन्वन्तर के पश्चात् सन्धिकाल का निर्देश है। तदनुसार उपरि लिखित काल-संख्या में गत ७ सन्धियों का १२०१६००० वर्ष और जोड़ने से वास्तविक गत काल १९७२९४८९७६ होता है। इसी प्रकार अवशिष्ट उत्तर काल गणना में ८ सन्धियों का १३८२४००० काल सम्मिलित करने पर २३४७०५१०२४ वर्ष सृष्टि के शेष रहते हैं। इस विषय के लिये रा. ला. क. ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' पृष्ठ २६-२७ देखें।—यु. मी.

ओं तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे आर्य्यावर्त्तान्तरैक-देशेऽमुकनगरेऽमुकसंवत्सरायनर्तु मासपक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्त्ते-ऽत्रेदं कार्यं कृतं क्रियते वा ।

जो इसको ही विचार लें, तो इससे सृष्टि के वर्षों की गणना बराबर जान पडती है ।

जो कोई यह कहे कि हम इस बात को नहीं मान सकते, तो उसका उत्तर यह है कि जो परम्परा से मिती वार दिन चढ़ाते चले आते हैं, और जबकि इतिहासों और ज्योतिषशास्त्रों में भी इसी प्रकार लिखा है, तो फिर इसको मिथ्या कोई नहीं कह सकता। जैसे कि बहीखाते में प्रतिदिन मितीवार लिखते हैं और उसको कोई झूठ नहीं कह सकता। और जो यह कहता है उससे भी पूछना चाहिये कि तुम्हारे मत में सृष्टि की उत्पत्ति को कितने वर्ष हुए हैं ? तब वह या तो छः हजार या सात हजार या आठ हजार वर्ष बतलावेगा। तो वह भी अपने पुस्तकों के अनुसार कहता है, तो इसी प्रकार उसको भी कोई नहीं मानेगा, क्योंकि यह पुस्तक की बात है।

और देखो ! भूगर्भविद्या से जो देखा जाता है उससे भी यह ही गणना ठीक आती है। इसलिये हम लोगों के मत में तो जगत् के वर्षों की गिनती बन सकती है, और किसी के मत में कदाचित् नहीं। इसलिये यह व्यवस्था सृष्टि की उत्पत्ति के वर्षों की सबको ठीक माननी उचित है।

अब यह कि ईश्वर ने किसलिये सृष्टि को उत्पन्न किया ? इसका उत्तर दिया जाता है —

जीव और जगत् का कारण स्वरूप से अनादि, और जीव के कर्म तथा कार्य जगत् नित्यप्रवाह से अनादि हैं। जब प्रलय होता है तब जीवों के कुछ कर्म शेष रह जाते हैं, तो उनकेभोग कराने केलिए और फल देने के लिए ईश्वर सृष्टि को रचता है, और अपने पक्षपात-रहित न्याय को प्रकाशित करता है। ईश्वर में जो ज्ञान, बल, दया आदि और रचने की अत्यन्त शक्ति है, उनके सफल करने के लिये उसने सृष्टि रची है। जैसे आंख देखने के लिए और कान सुनने के

लिये हैं, वैसे ही रचनाशक्ति रचने के लिये है। सो अपनी सामर्थ्य की सफलता करने के लिये ईश्वर ने इस जगत् को रचा है कि सब लोग सब पदार्थों से सुख पावें। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए जीवों के नेत्र आदि साधन भी रचे हैं। इसी प्रकार सृष्टि के रचने में और भी अनेक प्रयोजन हैं, कि जो समय कम रहने से अब नहीं कहे जा सकते। विद्वान् लोग आप जान लेंगे।

पादरी स्काट साहब—जिसकी सीमा होती है वह अनादि नहीं हो सकता। जगत् की सीमा का निरूपण है, इसलिये वह अनादि नहीं हो सकता। कोई पदार्थ अपने आप को नहीं रच सकता, परन्तु ईश्वर ने जगत् को अपनी सामर्थ्य से रचा है। कोई नहीं जानता कि ईश्वर ने किस पदार्थ से रचा है, और पंडित जी ने भी नहीं बताया कि किस पदार्थ से जगत् को रचा ?

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब—जब कि सब पदार्थ सदा से हैं तो ईश्वर को मानना व्यर्थ है। कोई उत्पत्ति का समय नहीं कह सकता।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी—(पादरी साहब के उत्तर में)—पादरी साहब मेरे कहने को नहीं समझे। मैं तो केवल जगत् के कारण को ही अनादि कहता हूं, और जो कार्य है सो अनादि नहीं होता। जैसे मेरा शरीर साढ़े तीन हाथ का है, सो उत्पन्न होने से पहिले ऐसा न था और न नाश होने के पश्चात् ही ऐसा रहेगा। पर इसमें जितने परमाणु हैं वे नष्ट नहीं होते। इस शरीर के परमाणु पृथक् पृथक् होकर आकाश में बने रहते हैं, और उन परमाणुओं में जो संयोग और वियोग[1] की शक्ति है, तो वह सदा

१. सब लोग देखते हैं कि अग्नि में बहुत से पदार्थ जल जाते हैं। अब विचार करना चाहिये कि जब कोई पदार्थ जल जाता है, तो क्या हो जाता है ? देखने में आता है कि लकड़ी जल कर थोड़ी सी राख रह जाती है। तो अब यह विचारना चाहिये कि जलने से वह पदार्थ ही नष्ट हो जाता हैं, वा उसका स्वरूप ही बदल जाता है ? जब मोमबत्ती जलाते हैं, तो देखने में वह मोम नहीं रहता। यह नहीं जान पड़ता कि कहां गया ? परन्तु उस मोम का स्वरूप बदल कर वायु के सदृश हो जाता है, और इसी कारण वायु में मिल जाने से दृष्टि में नहीं आता।

इसकी परीक्षा के लिये एक बोतल के भीतर मोमबत्ती जलाओ और

उनमें रहती है। जैसा मिट्टी से घड़ा बनाया जो कि बनाने से पहिले नहीं था और नाश होने के पश्चात् भी नहीं रहेगा, परन्तु उसमें जो मिट्टी है वह नष्ट नहीं होती। और जो गुण अर्थात् चिकनापन उसमें है कि जिससे वह पिण्डाकार होता है, वह भी मिट्टी में सदा से है। इससे यह समझना चाहिये कि जिन परमाणु द्रव्यों से यह जगत् बना है वे द्रव्य अनादि हैं, कार्य द्रव्य नहीं। और मैंने यह कब कहा था कि जगत् के पदार्थ स्वयं अपने को बना सकते हैं। मेरा कहना तो यह था कि ईश्वर ने उस कारण से जगत् को रचा है।

और जो पादरी साहब ने कहा कि शक्ति से जगत् को रचा है, तो मैं पूछता हूं कि शक्ति कोई वस्तु है वा नहीं ? जो कहो कि है, तो वह अनादि हुई, और जो कहो कि नहीं, तो उससे आगे को दूसरी कोई वस्तु भी नहीं बन सकती। और जो पादरी साहब ने यह कहा कि पण्डितजी ने यह नहीं बताया कि किससे यह जगत् बना है ? कदाचित् पादरी साहब ने नहीं सुना होगा। मैंने तो जिससे यह कार्य जगत् बना है उसको प्रकृति आदि नामों से कि जिसको परमाणु भी कहते हैं; कहा था।

(मौलवी साहब के उत्तर में)—सब पदार्थों का कारण अनादि है, तो भी ईश्वर को मानना अवश्य है, क्योंकि मिट्टी में यह सामर्थ्य

उसका मुख बन्द कर दो, तो उस बत्ती का जितना भाग वायु के सदृश हो जावेगा, वह बोतल से बाहर नहीं जा सकेगा। पर थोड़ी देर के पीछे यह दिखलाई देगा कि वह बत्ती बुझ गई। अब यह सोचना चाहिये कि बत्ती क्यों बुझ गई? और बोतल के वायु में अब कुछ भेद हुआ वा नहीं ? इस बात की परीक्षा इस प्रकार होगी कि थोड़ा सा चूने का पानी उस बोतल में, और एक और बोतल में कि जिसमें केवल वायु भरा हुआ हो और उसमें कोई बत्ती न जली हो, डालो; तो यह दिखलाई देगा कि जिस बोतल में बत्ती जली है उसमें चूने का रंग दूध सा हो जावेगा, और दूसरी बोतल का जैसे का तैसा रहेगा। इससे सिद्ध हुआ कि बत्ती के जलाने से कोई नई वस्तु बोतल के वायु में मिल गई है। वह एक वस्तु वायु के सदृश है कि दृष्टि में नही आता। अब देखना चाहिये कि मोमबत्ती का कोई परमाणु नष्ट नहीं होता, पर जिन पदार्थों से वह बत्ती बनी है उनका स्वरूप भिन्न हो जाता है।

नहीं कि आप से आप घड़ा बन जाये। जो कारण होता है वह आप कार्यरूप नहीं बन सकता, क्योंकि उसमें बनने का ज्ञान नहीं होता। और कोई जीव भी उसको नहीं बना सकता, आज तक किसी ने कोई वस्तु ऐसी नहीं बनाई। जैसा कि यह मेरा रोम है, ऐसी वस्तु कोई नहीं बना सकता। और आज तक ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ और न है कि जो परमाणुओं को पकड़ के किसी युक्ति से उनसे ऐसी वस्तु बना सके। कोई दो त्रसरेणुओं का भी संयोग नहीं कर सकता। इससे यह सिद्ध हुआ कि केवल उस परमेश्वर की ही यह सामर्थ्य है कि सब जगत् को रचे।

देखो ! एक आंख की रचना में ही कितनी विद्या का दृष्टान्त है। आज तक बड़े बड़े वैद्य अपनी बुद्धि लगाते चले आते हैं, तो भी आंख की विद्या अधूरी ही है। कोई नहीं जानता कि किस किस प्रकार और क्या क्या गुण ईश्वर ने उसमें रक्खे हैं। इसलिये सूर्य, चांद आदि जगत् का रचना और धारण करना ईश्वर ही का काम है। तथा जीवों के कर्म्मों के फल का पहुंचाना, यह भी परमात्मा ही का काम है, किसी दूसरे का नहीं। इससे ईश्वर को मानना अवश्य है।

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब—जब दो वस्तु हैं—एक कार्य दूसरा कारण, तो दोनों अनादि नहीं होस कते। इससे ईश्वर ने नास्ति से अस्ति अपनी सामर्थ्य से की है।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब—गुण दो प्रकार के होते हैं—एक अन्तस्थ, दूसरे बाह्य। अन्तस्थ तो अपने में होते हैं, और बाह्य दूसरे से अपने में आते हैं। और अन्तस्थ गुण दूसरे में जाकर वैसे ही बन जाते हैं, परन्तु जिसके गुण होते हैं वह उससे पृथक् होता है। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जिस वर्तन में पड़ता है वैसा ही बन जाता है, परन्तु सूर्य नहीं हो जाता। वैसे ही ईश्वर ने हमको अपनी इच्छा से बनाया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी—(ईसाई साहब के उत्तर में)—आप दोनों के अनादि होने में क्यों शंका करते हैं ? क्योंकि जितने पदार्थ इस जगत् में बने हैं, उन सबका कारण अर्थात् परमाणु आदि सब अनादि हैं। और जीव भी अनादि हैं, कि जिनकी संख्या कोई

नहीं बता सकता। और नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती, सो मैं पहिले कह चुका हूं। परन्तु आप जो कहते हैं कि शक्ति से बनाया, तो बतलाओ कि शक्ति क्या वस्तु है? जो कहो कि कोई वस्तु है, तो फिर वही कारण ठहरने से अनादि हुई। और ईश्वर के नाम, गुण, कर्म सब अनादि हैं, कोई अब नहीं बने।

(मौलवी साहब के उत्तर में)—आप जो यह कहो कि भीतर के गुणों से जगत् बना है, तो भी नहीं हो सकता, क्योंकि गुण द्रव्य के विना अलग नहीं रह सकते, और गुण द्रव्य से बन भी नहीं सकता। जब भीतर के गुणों से जगत् बना है, तो जगत् भी ईश्वर हुआ। जो यह कहो कि बाहर के गुणों से जगत् बना, तो ईश्वर के सिवाय आपको भी वे गुण और द्रव्य अनादि मानने पड़ेंगे। और जो यह कहो कि इच्छा से हम लोग बन गये, तो मेरा यह प्रश्न है कि इच्छा कोई वस्तु है वा गुण हैं? जो वस्तु कहोगे तो वह अनादि ठहर जायेगी, और जो गुण मानोगे तो जैसे केवल इच्छा से घड़ा नहीं बन सकता, परन्तु मिट्टी से बनता है, तो वैसे ही इच्छा से हम लोग नहीं बन सकते।

पादरी स्काट साहब—हम लोग इतना जानते हैं कि नास्ति से अस्ति को ईश्वर ने बनाया। यह हम नहीं जानते कि किस पदार्थ से और किस प्रकार यह जगत् बनाया। इसको ईश्वर ही जानता है। मनुष्य कोई नहीं जान सकता।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब—ईश्वर ने अपने प्रकाश से जगत् बनाया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी—(पादरी साहब के उत्तर में) कार्य को देखकर कारण को जानना चाहिये कि जो वस्तु कार्य है वैसा ही उसका कारण होता है। जैसे घड़े को देखकर उसका कारण मिट्टी जान लिया जाता है कि जो वस्तु घड़ा है वही वस्तु मिट्टी है। आप कहते हैं कि अपनी शक्ति से जगत् को रचा, सो मेरा यह प्रश्न कि वह शक्ति अनादि है वा पीछे से बनी है? जो अनादि है तो द्रव्यरूप उसको मान लो, तो उसी को जगत् का अनादि कारण मानना चाहिए।

(मौलवी साहब के उत्तर में)—नूर कहते हैं प्रकाश को, उस प्रकाश से कोई दूसरा द्रव्य नहीं बन सकता। परन्तु वह नूर मूर्तिमान् द्रव्य को प्रसिद्ध=दिखला सकता है, और वह प्रकाश करने वाले पदार्थ के विना अलग नहीं रह सकता। इससे जगत् का जो कारण प्रकृति आदि अनादि है, उसको माने विना किसी प्रकार से किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। और हम लोग भी कार्य को अनादि नहीं मानते, परन्तु जिससे कार्य बना है उस कारण को अनादि मानते हैं।

एक हिन्दुस्तानी ईसाई साहब—जो ईश्वर ने अपनी प्रकृति से सब संसार को रचा, तो उसकी प्रकृति में सब संसार सनातन था, और वह उसकी प्रकृति में अनादि था, तो ईश्वर की सीमा हो गई।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी—जबकि ईश्वर की प्रकृति में सब जगत् था, तब ही तो वह अनादि हुआ, और वही अनादि वस्तु रचने से सीमा में आई, अर्थात् लम्बा-चौड़ा, बड़ा-छोटा आदि सब प्रकार का ईश्वर ने उसमें से बनाया। इसलिये रचे जाने से केवल जगत् ही की सीमा हुई, ईश्वर की नहीं।

अब देखिये मैंने जो पहिले कहा था कि नास्ति से अस्ति कभी हो सकती किन्तु भाव से ही भाव होता है, सो आप लोगों के कहने से भी वह बात सिद्ध हो गई कि जगत् का कारण अनादि है।

ईसाई साहब—सुनो भाई मौलवी साहबो! कि पण्डितजी इसका उत्तर हजार प्रकार से दे सकते हैं। हम और तुम हजारों मिलकर भी इन से बात करें तो भी पण्डितजी बराबर उत्तर दे सकते हैं। इसलिए इस विषय में अधिक कहना उचित नहीं।

[ग्यारह बजे तक यह वार्ता सिद्ध हुई। फिर सब लोग अपने अपने डेरों को चले गये। और सब जगह मेले में यही बातचीत होती थी कि जैसा पण्डितजी को सुनते थें, उससे सहस्रगुणा पाया।]

दोपहर के पश्चात् की सभा

फिर एक बजे सब लोग आये और इस पर विचार किया कि अब समय बहुत थोड़ा और बातें बहुत बाकी हैं, इसलिये केवल मुक्ति विषय पर विचार करना उचित है। प्रथम थोड़ी देर तक ये बातें होती रहीं कि पहिले कौन वर्णन करे ? एक दूसरे पर टालता था।

तब स्वामीजी ने कहा कि उसी क्रम से भाषण होना चाहिये, अर्थात् पहिले पादरी साहब, फिर मौलवी साहब और फिर मैं। परन्तु जब पादरी साहब और मौलवी साहब दोनों ने कहा कि हम पहिले न बोलेंगे, तब स्वामीजी ने ही पहिले कहना स्वीकार किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी-मुक्ति कहते हैं छूट जाने को, अर्थात् जितने दुःख हैं उनसे सब [प्रकार] छूटकर एक सच्चिदानन्द-स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहना, और फिर जन्म-मरण आदि दुःखसागर में नहीं गिरना[१], इसी का नाम **मुक्ति** है। वह किस प्रकार से होती है? इसका पहला साधन सत्य का आचरण है, और वह सत्य आत्मा और परमात्मा की साक्षी से निश्चय करना चाहिए, अर्थात् जिसमें आत्मा और परमात्मा की साक्षी न हो, वह असत्य है। जैसे किसी ने चोरी की, जब वह पकड़ा गया उससे राजपुरुष ने पूछा कि तू ने चोरी की या नहीं? तब वह कहता है कि मैंने चोरी नहीं की। परन्तु उसका आत्मा भीतर से कह रहा है कि मैंने चोरी की है। तथा जब कोई झूठ की इच्छा करता है तब अन्तर्यामी परमेश्वर उसको जता देता है कि यह बुरी बात है, इसको तू मत कर। और लज्जा शंका और भय आदि उसके आत्मा में उत्पन्न कर देता है। और जब सत्य की इच्छा करता है, तब उसके आत्मा में आनन्द कर देता है, और प्रेरणा करता है कि यह काम तू कर। अपना आत्मा जैसे सत्य काम करने में निर्भय और प्रसन्न होता है, वैसे झूठ में नहीं होता। जब परमात्मा की आज्ञा को तोड़कर बुरा काम कर लेता है, तब उसकी मुक्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती। और उसी को असुर, दुष्ट, दैत्य और नीच कहते हैं। इसमें वेद का प्रमाण है कि—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

यजुर्वेद, अध्याय ४०, मन्त्र ३॥

१. इन शब्दों का तात्पर्य मुक्ति के काल तक सीमित है। **सर्वत्वं वाऽऽधिकारिकम्** (१।२।१६) इस मीमांसा सूत्र के अनुसार सदा नित्य शाश्वत् आदि शब्द सापेक्ष हैं। जैसे प्यासे को पानी पिलाकर पूछो कि और कुछ चाहिए? वह कहेगा कि बस सब कुछ पा लिया। (**सर्वरसा अनुप्राप्ताः पानीयम्**—निरुक्त १।१६)। इसकी विशेष व्याख्या सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास में देखनी चाहिए।

आत्मा का हिंसन करने वाला अर्थात् जो परमेश्वर की आज्ञा को तोड़ता है, और अपने आत्मा के ज्ञान के विरुद्ध बोलता करता और मानता है, उसी का नाम असुर, राक्षस, दुष्ट, पापी, नीच आदि होता है।

मुक्ति के मिलने के साधन ये हैं—१—सत्य का आचरण। २—सत्यविद्या अर्थात् ईश्वरकृत वेदविद्या को यथावत् पढ़कर ज्ञान की उन्नति और सत्य का पालन यथावत् करना। ३—सत्यपुरुष ज्ञानियों का संग करना। ४—योगाभ्यास करके अपने मन, इन्द्रियों और आत्मा को असत्य से हटाकर सत्य में स्थिर करना और ज्ञान को बढ़ाना। ५—परमेश्वर की स्तुति करना अर्थात् उसके गुणों की कथा सुनना और विचारना। ६—प्रार्थना कि जो इस प्रकार होती है कि—हे जगदीश्वर! हे कृपानिधे! हे अस्मत्पितः! असत्य से हम लोगों को छुड़ा के सत्य में स्थिर कर, और हे भगवन्! हम को अन्धकार अज्ञान और अधर्म आदि दुष्ट कामों से अलग करके विद्या और धर्म आदि श्रेष्ठ कामों में सदा के लिये स्थापन कर, और हे ब्रह्म! हम को जन्म मरणरूप संसार के दुःखों से छुड़ाकर अपनी कृपाकटाक्ष से अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर।[1]

जब सत्य मन से अपने आत्मा, प्राण और सब सामर्थ्य से परमेश्वर को जीव भजता है, तब वह करुणामय परमेश्वर उसको अपने आनन्द में स्थिर कर देता है। जैसे जब कोई छोटा बालक घर के ऊपर से अपने माता-पिता के पास नीचे आना चाहता है वा नीचे से ऊपर उनके पास जाना चाहता है, तब हजारों आवश्यकता के कामों को भी माता-पिता छोड़कर और दौड़कर अपने लड़के को उठाकर गोद में लेते हैं, कि हमारा लड़का कहीं गिर पड़ेगा तो उस को चोट लगने से उसको दुःख होगा। और जैसे माता-पिता अपने बच्चों को सदा सुख में रखने की इच्छा और पुरुषार्थ सदा करते रहते हैं, वैसे ही परम कृपानिधि परमेश्वर की ओर जब कोई सच्चे आत्मा के भाव से चलता है, तब वह अनन्तशक्तिरूप हाथों से उस जीव को उठाकर अपनी गोद में सदा के लिए रखता है, फिर उस को किसी प्रकार का दुःख नहीं होने देता है, और वह सदा आनन्द में रहता है।

१. असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय इति।

पक्षपात को छोड़कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर के अर्थ को सिद्ध करना चाहिये। देखो ! सब अन्याय अधर्म और पक्षपात से होता है। जैसे कि मौलवी साहब का वस्त्र बहुत अच्छा है, मुझको मिले तो मैं उसको ओढ़कर सुख पाऊं। इसमें अपने सुख का पक्षपात किया और मौलवी साहब के सुख दुःख का कुछ विचार न किया। इसी प्रकार पक्षपात से ही नित्य अधर्म होता है। अधर्म से काम को सिद्ध करना इसी को **अनर्थ** कहते हैं। और धर्म और अर्थ से कामना अर्थात् अपने सुख की सिद्धि करना इसी को **काम** कहते हैं। और अधर्म अर्थात् अनर्थ से काम को सिद्ध करना इसको **कुकाम** कहते हैं। इसलिये इन तीनों अर्थात् धर्म, अर्थ और काम से मोक्ष को सिद्ध करना उचित है। इसमें यह बात है कि ईश्वर की आज्ञा का पालन करना इसको **धर्म** और उसकी आज्ञा का तोड़ना इसको **अधर्म** कहते हैं। सो धर्म आदि ही मुक्ति के साधन हैं, और कोई नहीं। और मुक्ति सत्य पुरुषार्थ से सिद्ध होती है, अन्यथा नहीं।

पादरी स्काट साहब—पण्डितजी ने कहा कि सब दुःखों से छूटने का नाम मुक्ति है, परन्तु मैं कहता हूं कि सब पापों से बचने और स्वर्ग में पहुंचने का नाम मुक्ति है। कारण यह कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था, परन्तु शैतान ने उसको बहका के उससे पाप करा दिया, इससे उसकी सब सन्तान भी पापी हैं। जैसे घड़ी बनाने वाले ने उसकी चाल स्वतन्त्र रक्खी है और वह आप ही चलती है, ऐसे ही मनुष्य भी अपनी इच्छा से पाप करते हैं, तो फिर अपने ऐश्वर्य से मुक्ति नहीं पा सकते और न पापों से बच सकते हैं। इसलिये प्रभु ईसामसीह पर विश्वास किये विना मुक्ति नहीं हो सकती। जैसे हिन्दू लोग कहते हैं कि कलियुग मनुष्यों को पाप कराके बिगाड़ता है, इससे उनकी मुक्ति नहीं हो सकती। परन्तु ईसामसीह पर विश्वास करने से वे भी बच सकते हैं।

प्रभु ईसामसीह जिस जिस देश में गये, अर्थात् उसकी शिक्षा जहां जहां गई है, वहां वहां मनुष्य पापों से बचते जाते हैं। देखो ! इस समय सिवाय ईसाइयों के और किसी के मत में भलाई और अच्छे गुणों की उन्नति है ? मैं एक दृष्टान्त देता हूं कि जैसे पण्डितजी बलवान् हैं, ऐसे ही इङ्गलिस्तान में एक मनुष्य बलवान् था। परन्तु

वह मद्यपान, चोरी, व्यभिचार आदि बुरे काम करता था। जब वह ईसामसीह पर विश्वास लाया तब सब बुराइयों से छूट गया। और मैंने भी जब मसीह पर विश्वास किया, तब मुक्ति को पाया और बुरे कामों से बच गया। सो ईसामसीह की आज्ञा के विरुद्ध आचरण से मुक्ति नहीं हो सकती। इसलिये सबको ईसामसीह पर विश्वास लाना चाहिये। उसी से मुक्ति हो सकती है, और किसी प्रकार नहीं।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब—हम लोग यह नहीं कह सकते कि पण्डितजी ने जो मुक्ति के साधन कहे, केवल उनसे ही मुक्ति हो सकती है। क्योंकि ईश्वर की इच्छा है, जिसको चाहे उसको मुक्ति दे और जिसको न चाहे न दे। जैसे समय का हाकिम जिस अपराधी से प्रसन्न हो उसको छोड़ दे, और जिससे अप्रसन्न हो उसको कैद में डाल दे। उसकी इच्छा है जो चाहे सो करे, उस पर हमारा ऐश्वर्य नहीं है। न जाने ईश्वर क्या करेगा। पर समय के हाकिम पर विश्वास रखना चाहिये। इस समय का हाकिम हमारा पैग़म्बर है, उस पर विश्वास लाने से मुक्ति होती है। हां! यह बात अवश्य है कि विद्या से अच्छे काम हो सकते हैं, परन्तु मुक्ति तो केवल उसी के हाथ में है।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी—(पादरी साहब के उत्तर में)—आपने जो यह कहा कि दुःखों से छूटना मुक्ति नहीं। पापों से छूटने का नाम मुक्ति है। सो मेरे अभिप्राय को न समझ कर यह बात कही है। क्योंकि मैं तो पहिले साधन में ही सब पापों अर्थात् असत्य कामों से बचना कह चुका हूं। और बुरे कामों का फल भी दुःख कहाता है, अर्थात् जब पाप करेगा तो दुःख से नहीं बच सकता। इसके अनन्तर और साधनों में भी स्पष्ट कहा है कि अधर्म छोड़कर धर्म का आचरण करना मुक्ति का साधन है। जो पादरी साहब इन बातों को समझते तो कदाचित् ऐसी बात न कहते।

दूसरे, जो आप यह कहते हैं कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था, परन्तु शैतान ने बहकाकर पाप करा दिया, तो उसकी संतान भी इसी कारण से पापी हो गई। सो यह ठीक नहीं है, क्योंकि आप

लोग ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते ही हैं। सो जबकि ईश्वर के पवित्र बनाये आदम को शैतान ने बिगाड़ दिया, और ईश्वर के राज्य में विघ्न करके ईश्वर की व्यवस्था को तोड़ डाला, तो इससे ईश्वर सर्वशक्तिमान् नहीं रह सकता। और ईश्वर की बनाई हुई वस्तु को कोई नहीं बिगाड़ सकता है।

और एक आदम ने पाप किया, तो उसकी सारी सन्तान पापी हो गई, यह सर्वथा असम्भव और मिथ्या है। जो पाप करता है वही दुःख पाता है, दूसरा कोई नहीं पा सकता। और ऐसी बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा। और देखो एक आदम और हव्वा मे किसी प्रकार इस जगत् की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि बहन और भाई का विवाह होना बड़े दोष की बात है। इसलिए ऐसी व्यवस्था मानना चाहिये कि सृष्टि के आदि में बहुत से पुरुष और स्त्री परमेश्वर ने रचे।

और जो यह कहा कि शैतान बहकाता है, तो मेरा यह प्रश्न है कि जब शैतान ने सबको बहकाया तो फिर शैतान को किसने बहकाया? जो कहो कि शैतान आप से आप ही बहक गया, तो सब जीव भी आप से आप ही बहक गये होंगे, फिर शैतान को बहकाने वाला मानना व्यर्थ है। जो कहो कि शैतान को भी किसी ने बहकाया है, तो सिवाय ईश्वर के दूसरा कोई बहकाने वाला शैतान को नहीं है। तो फिर जब ईश्वर ने ही सबको बहकाया, तब मुक्ति देने वाला कोई भी आप लोगों के मत में न रहा और न मुक्ति पाने वाला। क्योंकि जब परमात्मा ही बहकानेवाला ठहरा, तो बचाने-वाला कोई नहीं हो सकता। और यह बात परमात्मा के स्वभाव से भी विरुद्ध है, क्योंकि वह न्यायकारी और सत्य कामों का ही कर्त्ता है तथा अच्छे कामों में ही प्रसन्न होता है। वह किसी को दुःख देनेवाला और बहकानेवाला नहीं।

और देखो! कैसे आश्चर्य की बात है कि यदि शैतान ईश्वर के राज्य में इतना गड़बड़ करता है, फिर भी ईश्वर उसको न दण्ड देता है, न मारता है, न कारागृह में डालता है। इससे स्पष्ट परमात्मा की निर्बलता पाई जाती है। और विदित होता है कि परमात्मा ही को बहकाने की इच्छा है। इससे यह बात ठीक नहीं। और न शैतान कोई मनुष्य है। जब तक शैतान के माननेवाले शैतान का

मानना न छोड़ेंगे, तबतक पाप करने से नहीं बच सकते, क्योंकि वे समझते हैं कि हम तो पापी ही नहीं। जैसा शैतान ने आदम को और उसकी सन्तान को बहका के पापी किया, वैसा ही परमात्मा ने आदम की सन्तान के पाप के बदले में अपने एकलोते बेटे को शूली पर चढ़ा दिया, फिर हम को क्या डर है। और जो हम से कुछ पाप भी होता है, तो हमारा विश्वास ईसामसीह पर है, वह आप क्षमा कर देगा, क्योंकि उसने हमारे पापों के बदले में जान दी है। इसलिये ऐसी व्यवस्था माननेवाले पापों से नहीं बच सकते।

और जो घड़ो का दृष्टान्त दिया था सो ठीक है, क्योंकि सब अपने अपने काम करने में स्वतन्त्र हैं। परन्तु ईश्वर की आज्ञा अच्छे कामों के करने के लिये है, बुरे के लिये नहीं। और जो आपने यह कहा कि स्वर्ग में पहुंचना मुक्ति है। शैतान के बहकाने के कारण मनुष्यों में शक्ति नहीं कि पापों से छूट कर मुक्ति पा सकें, यह बात भी ठीक नहीं। क्योंकि जब मनुष्य स्वतन्त्र हैं और शैतान कोई मनुष्य नहीं, तो आप दोषों से बचकर परमात्मा की कृपा से मुक्ति को पा सकते हैं। और स्वर्ग से आदम गेहूं खाने के कारण निकाला गया, और यह ही आदम का पाप हुआ कि गेहूं खाया, तो मैं आप से पूछता हूं कि आदम ने तो गेहूं खाया और पापी हो गया और स्वर्ग से निकाला गया। आप लोग जो स्वर्ग की इच्छा करते हैं, तो क्या आप लोग वहां सब पदार्थ खावेंगे ? तो क्या पाप नहीं होगा ? और वहां से निकाले नहीं जाओगे ? इससे यह बात भी ठीक नहीं हो सकती।

और आप लोगों ने ईश्वर को मनुष्य के सदृश माना होगा, अर्थात् जैसे मनुष्य सर्वज्ञ नहीं वैसे ही आपने परमात्मा को भी माना होगा कि जिससे आप वहां गवाही और वकील की आवश्यकता बतलाते हैं। परन्तु आपके ऐसे कहने से ईश्वर की ईश्वरता सब नष्ट हो जाती है। वह सब कुछ जानता है, उसको गवाही और वकील की कुछ आवश्यकता नहीं है। और उसको किसी की सिफारिश की भी आवश्यकता नहीं, क्योंकि सिफारिश न जानने वाले से की जाती है। और देखिये ! आपके कहने से परमात्मा पराधीन ठहरता है, क्योंकि विना ईसामसीह की गवाही वा सिफारिश के वह किसी को मुक्ति नहीं दे सकता, और कुछ भी नहीं जानता। इससे परमात्मा में

अल्पज्ञता आती है कि जिससे वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ किसी प्रकार नहीं हो सकता। और देखो जबकि वह न्यायकारी है, तो किसी को सिफारिश और मिथ्या प्रशंसा से न्याय के विरुद्ध कदाचित् नहीं कर सकता, जो विरुद्ध करता है तो न्यायकारी नहीं ठहर सकता।

इसी प्रकार जो आप मनुष्य हाकिम के सदृश ईश्वर के दरबार में फरिश्तों का होना मानोगे, तो और बहुत से दोष ईश्वर में आवेंगें। इससे ईश्वर सर्वव्यापक नहीं हो सकता, क्योंकि जो सर्वव्यापक है तो शरीर वाला न होना चाहिए। और जो सर्वव्यापक नहीं है, तो अवश्य है कि शरीरवाला हो, और शरीरवाला होने से उसकी शक्ति सब पर घेरने वाली न हुई। और शरीरवाला जितना दूर का ज्ञान रखता है पर उसको पकड़ और मार नहीं सकता। और जो शरीरवाला होगा उसका जन्म और मरण भी अवश्य होगा। इसलिए ईश्वर को किसी एक जगह पर और फरिश्तों का उसके दरबार में होना, ऐसी बातें मानना किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता। नहीं तो ईश्वर की सीमा हो जायेगी।

देखो! हम आर्य्य लोगों के शास्त्रों को यथावत् पढ़े विना लोगों को उलटा निश्चय हो जाता है, अर्थात् कुछ का कुछ मान लिया जाता है। जो पादरी साहब ने कलियुग के विषय में कहा, सो ठीक नहीं। क्योंकि हम आर्य्य लोग युगों की व्यवस्था इस प्रकार से नहीं मानते। इसमें ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है कि—

कलिश्शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृत सम्पद्यते चरन्॥

ऐत० पञ्जिका ७। कण्डिका १५॥

अर्थात् जो पुरुष सर्वथा अधर्म करता है और नाममात्र धर्म करता है उसको कलि, और जो आधा अधर्म और आधा धर्म करता है उसको द्वापर, और एक हिस्सा अधर्म और तीन हिस्से धर्म करता है उसको त्रेता, और जो सर्वथा धर्म करता है उसको सतयुग कहते हैं।

इसके जाने विना कोई बात कह देना ठीक नहीं हो सकती। इससे जो कोई बुरा काम करता है, वह दुःख पाने से कदाचित् नहीं

बच सकता। और जो कोई अच्छा काम करता है, वह दुःख पाने से बच जाता है, किसी ही देश में चाहे क्यों न हो ?

क्या ईसामसीह के विना ईश्वर अपने सामर्थ्य से भक्तों को नहीं बचा सकता ? वह अपने भक्तों को सब प्रकार से बचा सकता है। उसको किसी पैगम्बर की आवश्यकता नहीं। हां ! यह सच है कि जब जिस जिस देश में शिक्षा करने वाले धर्मात्मा उत्तम पुरुष होते हैं उस उस देश के मनुष्य पापों से बच जाते हैं, और उन्हीं देशों में सुख और गुणों की वृद्धि होती है। यह भी सब लोगों लोगों के लिए सुधार है, इसका कुछ मत से प्रयोजन नहीं। देखो ! आर्य्य लोगों में पूर्व उपदेश की व्यवस्था अच्छी थी। इससे उस समय में वे सुधरे हुए थे। इस समय में अनेक कारणों से सत्य उपदेश कम होने से जो किसी बात का बिगाड़ हो तो इससे आर्य लोगों के सनातन मत में कोई दोष नहीं आ सकता। क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति के समय से ले के आजतक आर्य्यों ही का मत चला आता है। वह कुछ बहुत नहीं बिगड़ा।

देखो ! जितने १८०० वा १३०० वर्षों के भीतर ईसाइयों और मुसलमानों के मतों में आपस के विरोध से फिरके हो गये हैं, उनके सामने जो १९६०८५२९७६ वर्षों के भीतर आर्यों के मत में बिगाड़ हुआ तो वह बहुत ही कम है। और आप लोगों में जितना सुधार है सो मत के कारण नहीं, किन्तु पार्लियामेण्ट आदि के उत्तम प्रबन्ध से है, जो ये न रहें, मत से कुछ भी सुधार न हो। और पादरी साहब ने जो इङ्गलिस्तान के दुष्ट मनुष्य का दृष्टान्त मेरे साथ मिलाकर दिया, सो इस प्रकार कहना उनको योग्य न था। परन्तु न जाने किस प्रकार से यह बात भूल से उनके मुख से निकली।

(मौलवी साहब के उत्तर में)—ईश्वर चाहे सो करे, ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि वह पूर्ण विद्या और ठीक-ठीक न्याय पर सदा रहता है। किसी का पक्षपात नहीं करता। इस कहने से कि जो चाहे सो करे, यह भी आता है कि ईश्वर ही बुराई भी करता होगा और उसी की इच्छा से बुराई होती है, यह कहना ईश्वर में नहीं बनता। ईश्वर जो कोई मुक्ति का काम करता है, उसी को मुक्ति देता है। मुक्ति के काम के विना किसी को मुक्ति नहीं देता,

क्योंकि वह अन्याय कभी नहीं करता। जो विना पाप-पुण्य के देखे जिसको चाहे दुःख देवे और जिसको चाहे सुख, तो ईश्वर में अन्याय आदि प्रमाद लगता है। सो वह ऐसा कभी नहीं करता। जैसे अग्नि का स्वभाव प्रकाश और जलाने का है, इनके विरुद्ध नहीं कर सकता, वैसे ही परमात्मा भी अपने न्याय के स्वभाव से विरुद्ध पक्षपात से कोई व्यवस्था नहीं कर सकता।

सब समय का हाकिम मुक्ति के लिए परमेश्वर ही है, दूसरा कोई नहीं। और जो कोई दूसरे को माने, उसका मानना व्यर्थ है। मुक्ति दूसरे पर विश्वास करने से कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ईश्वर जो मुक्ति देने में दूसरों के अधीन है, या दूसरे के कहने से दे सकता है, तो मुक्ति देने में ईश्वर पराधीन है, तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। वह किसी का सहाय अपने काम में नहीं लेता, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है। मैं जानता हूं कि सब विद्वान् ऐसा ही मानते होंगे। जो पक्षपात से औरों के दिखाने को न मानते हों तो दूसरी बात है।

इसमें मुझको बड़ा आश्चर्य है कि परमात्मा को "लाशरीक" भी मानते हैं, और फिर पैग़म्बरों को भी मुक्ति देने में उसके साथ मिला देते हैं। यह बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि परमेश्वर धर्मात्मा मनुष्यों को मुक्ति के काम करने से मुक्ति स्वतन्त्रता से दे सकता है, किसी की सहायता के अधीन नहीं। मनुष्य को ही आपस में सहायता की आवश्यकता है; ईश्वर को नहीं। न वह मिथ्या प्रसन्न होनेवाला है, जो मिथ्या प्रसन्न होकर अन्याय करे। वह तो अपने सत्य धर्म और न्याय से सदा युक्त है, और अपने सत्य प्रेम से भरे हुए भक्तों को यथावत् मुक्ति देकर और सब दुःखों से बचाकर सदा के लिये आनन्द में रखता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं॥

इतने में चार बज गये। स्वामीजी ने कहा कि हमारा व्याख्यान बाकी है। मौलवी साहब ने कहा कि हमारे नमाज़ का समय आ गया। पादरी स्काट साहब ने स्वामीजी से कहा कि हमको आप से एकान्त में कुछ कहना है। सो वे दोनों तो उधर गये। इधर एक ओर तो एक मौलवी मेज़ पर जूता पहने हुए खड़े होकर और दूसरी ओर पादरी अपने मत का व्याख्यान देने लगे।

और कितने ही लोगों ने यह उड़ा दिया कि मेला हो चुका। तब स्वामीजी ने पादरी और आर्य लोगों से पूछा कि यह क्या गड़-बड़ हो रहा है? मौलवी लोग नमाज पढ़कर आये वा नहीं? उन्होंने उत्तर दिया कि मेला हो चुका। इस पर **स्वामीजी** बोले कि ऐसे झटपट मेला किसने समाप्त कर दिया? न किसी की सम्मति ली गई, न किसी से पूछा गया। अब आगे कुछ बातचीत होगी वा नहीं?

जब वहां बहुत गड़बड़ देखी और संवाद की कोई व्यवस्था न जान पड़ी, तो लोगों ने स्वामीजी से कहा कि आप भी चलिये। मेला पूरा हो ही गया। इस पर **स्वामीजी** ने कहा कि हमारी इच्छा तो यह थी कि कम से कम पांच दिन मेला रहता। इसके उत्तर में **पादरी साहबों** ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं रह सकते। फिर स्वामीजी आकर अपने डेरे पर धर्मसंवाद करने लगे। उस दिन रात को पादरी स्काट साहब और दो पादरियों के साथ स्वामीजी के डेरे पर आये। स्वामीजी ने कुरसियां बिछवा कर आदरपूर्वक उनको बिठलाया और आप भी बैठ गये। फिर आपस में बातचीत होने लगी—

पादरी साहबों ने पूछा कि—आवागमन सत्य है वा असत्य? और इसका क्या प्रमाण है?

स्वामीजी ने कहा कि—आवागमन सत्य है, और जो जैसे कर्म करता है वैसा ही शरीर पाता है। जो अच्छे काम करता है तो मनुष्य का, और जो बुरे करता है तो पक्षी आदि का शरीर पाता है। और जो बहुत उत्तम काम करता है वह देवता अर्थात् विद्वान् और बुद्धिमान् होता है। देखो! जब बालक उत्पन्न होता है, तब उसी समय अपनी माता का दूध पीने लगता है। कारण यही है कि उसको पहिले जन्म का अभ्यास बना रहता है। यह भी एक प्रमाण है। और धनाढ्य, कङ्गाल, सुखी, दुःखी अनेक प्रकार के ऊंच-नीच देखने से विदित होता है कि कर्मों का फल है। कर्म से देह और देह से आवागमन सिद्ध है। जीव अनादि हैं कि जिनका आदि और अन्त नहीं। जिस योनि में जीव जन्म लेता है उसका कुछ स्वभाव भी बना रहता है। इसी कारण मनुष्य आदि विचित्र स्वभाव और प्रकृति आदि के होते हैं। इससे भी आवागमन सिद्ध होता है।

इसी प्रकार और बहुत से प्रमाण आवागमन के हैं। परन्तु जीव का एक बार उत्पन्न होना और फिर कभी न होना, इसका कुछ प्रमाण नहीं हो सकता। क्योंकि जो मैंने कहा उसके विरुद्ध होना चाहिये था, सो ऐसा होना असंभव है। और फिर यह बात कि मरा और हवालात हुई अर्थात् जब कयामत होगी तब उसका हिसाब किताब होगा, तब तक बेचारा हवालात में रहा मानना अच्छा नहीं।

फिर पादरी साहब चले गये। मौलवियों ने शाहजहांपुर जाकर मुन्शी इन्द्रमणिजी को लिखा कि जो आप यहां आवें तो हम आप से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, परन्तु जब स्वामीजी और मुन्शीजी वहां पहुंचे, तो किसी ने शास्त्रार्थ का नाम तक भी न लिया।

ऋषिकालाङ्कब्रह्माब्दे नभश्शुक्ले दले तिथौ।
द्वादश्यां मंगले वारे ग्रन्थोऽयं पूरितो मया।।

४. शास्त्रार्थ-जालन्धर

सम्पादकीय

पं० सुन्दरलाल जी के नाम ऋषि दयानन्द के द्वारा लिखे गये १३ मई १८८२ ई० के पत्र से ज्ञात होता है कि **'जालन्धर की बहस'** शीर्षक कोई पुस्तक प्रकाशित हुई थी। निश्चय ही उसमें उस शास्त्रार्थ का उल्लेख था, जो २४ सितम्बर १८७७ ई० (आश्विन कृष्ण २, सं० १९३४ वि० सोमवार) को प्रातः ७ बजे जालन्धर में मौलवी अहमद हुसैन से हुआ था। शास्त्रार्थ का विषय था **'पुनर्जन्म और चमत्कार'**। यह शास्त्रार्थ सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया की उपस्थिति में हुआ। पं० लेखराम द्वारा संगृहीत ऋषि के उर्दू जीवन चरित्र में इस शास्त्रार्थ के विषय में निम्न उल्लेख पाया जाता है—

"यह शास्त्रार्थ पहली बार दिसम्बर १८७७ में पंजाबी प्रेस, लाहौर में छपा था. दूसरी बार जुलाई १८७८ के 'आर्य दर्पण' में छपा, तीसरी बार मिर्जा महोदय ने अपने वजीर प्रेस, स्यालकोट में छपवाया, चौथी बार लाहौर और पांचवी बार आर्यसमाज अमृतसर ने १८८६ ई० में छपवाया। खुद मुसलमानों का फैसला है कि मौलवी साहब कामयाब नहीं हुये और करामात सिद्ध नहीं कर सके।"

पं० गोपाल शास्त्री शर्मा लिखित 'श्रीमद्दयानन्द दिग्विजयार्क' के प्रथम खण्ड पञ्चम मयूख में फकीर मुहम्मद मीर जामू (मिर्जा?) जालन्धरी द्वारा प्रकाशित उपर्युक्त **शास्त्रार्थ की भूमिका** छपी है। इसे हम पाठकों के लिए उपयोगी समझकर उद्धृत कर रहे हैं। भूमिका की भाषा उर्दू है। कठिन उर्दू फारसी शब्दों का अर्थ पाठकों की सुविधा के लिए टिप्पणी में दिया गया है।

"फकीर मुहम्मद मीर जामू (मिर्जा ?) जालन्धरी सभ्यगणों को इस रिसाले[1] के तैयार होने के कारणों से आगाह[2] करता है कि ता० १३ सितम्बर सन् १८७७ को दयानन्द सरस्वतीजी साहब जालन्धर में भी बतौर दौरे के[3] तशरीफ लाये, और जनाब फैजमाब[4]

१. पुस्तक। २. परिचित करना। ३. भ्रमण करते हुये।
४. परोपकारमूर्ति।

सरदार बावकार विक्रमसिंह साहब आहलूवालिया की कोठी में फरोकश[१] होकर वेद के मुताबिक जिसको वह कलाम इलाही[२] तसव्वुर[३] करते हैं, कथा सुनाने लगे कि फकीर ने सरदार साहब ममदह की खिदमत आलिया[४] में दरख्वास्त[५] की कि स्वामी साहब और मौलवी अहमद हुसैन की गुफ्तगू[६] भी किसी माकूली मसले[७] में सुननी चाहिये। जनाब ममदह ने पसन्द किया और स्वामीजी ने भी कुबूल करके २४ सितम्बर के ७ बजे सुबह का करार दिया। मौलवी साहब वक्त मुअय्यनह[८] पर खास व आम हिन्दू व मुसलमान शहर के आ गये। मुबाहसा अर्थात् शास्त्रार्थ हस्ब ख्वाहिश[९] मौलवी साहब मसले तनासुख[१०] और स्वामीजी की मर्जी के मुताबिक मसले करामात[११] मुकर्रर हुआ। यानी स्वामीजी तनासुख (पुनर्जन्म) को साबित करें, और मौलवी साहब उसकी तरदीद (खण्डन) करें, और मौलवी साहिब अहले अल्लाह[१२] की करामात साबित करें और स्वामी साहिब उसकी तरदीद (खण्डन) करें।

गुफ्तगू शुरु होने से यह बात भी करार पाई कि तुर्फैन (दोनों तर्फ) से कोई शख्स खिलाफ तहजीब (सभ्यता) गुफ्तगू न करेगा और स्वामीजी की तरफ से यह भी प्रकाशित हुआ कि कोई साहब इस गुफ्तगू खत्म होने पर हार जीत तसव्वुर[१३] न करें। अगर करेगा, तो मुतअस्सिब (पक्षपाती) और जाहिल[१४] समझा जायेगा, क्योंकि यह मसाइल[१५] ऐसे नहीं हैं कि दो तीन दिन की गुफ्तगू में तसफिया[१६] हो जाय, या हार जीत तसव्वुर हो। मगर हाँ, जब रिसाला गुफ्तगू बाहमी तबै[१७] होगा (छपेगा) तो खुद हाथ के कंकन को आरसी का मसला होगा और आकिला खुद मेदान्द का जहूर[१८]। जो सवाल जवाब-

१. विराजमान होकर। २. ईश्वरीय ज्ञान।
३. मानते हैं। ४. शुभ सेवा में। ५. निवेदन किया।
६. वार्तालाप। ७. उचित विषय। ८. निश्चित समय।
९. इच्छानुसार। १०. पुनर्जन्म। ११. चमत्कार।
१२. ईश्वर भक्तों के। १३. खयाल न करें। १४. मूर्ख!
१५. विषय। १६. निर्णय। १७. प्रकाशित होगा।
१८. बुद्धिमान् स्वयं इसको पढ़कर निर्णय कर सकेंगे।

होंगे वह बाद दस्तखत लाला अमीचन्द साहब और मुन्शी मुहम्मद हुसैन महमूद तबा होंगे (छापेंगे)। बाद खतम होने गुफ्तगू के मौलवी साहब की तरफ से खिलाफ अम्ल आलमा सरजद[1] हुआ, और वह यह है कि बाद तमाम होने गुफ्तगू के मौलवी साहब इमाम नासिरुद्दीन के दरवाजे पर गये और कुछ फखरिया बाज सुनाकर[2] मुसलमान हाजरीन से अपने नमूद के बेवजूद की शुहरत के तलबगार हुये[3]। अर्थात् मुसलमानों से कहा कि आप लोग अभी कोई ऐसी तजवीज[4] करें कि जिसमें मैं जीता नहीं तो भी मेरी ही जीत प्रसिद्ध हो जाय। अर्गचि अहलै इलम[5] और वजादार[6] मुसलमान इस शुहरत (मिथ्या-प्रसिद्धि) की ख्वाहिश को जाहिलों का खेल समझ कर किनाराकश[7] हो गये, मगर जुलाहे आदि वे लोग जो मुर्ग, लाल और बटेर और अगन वगैर: की लड़ाई के आदी और हारजीत के शुहरत के शायक हैं[8], उन्होंने मौलवी साहिब को बाजीयाफता[9] करार दिया, और घोड़े पर चढ़ा कर शहर के गली कूचों में खूब फिराया और जीत हार का गुल मचाया। मगर खास वजादार और मुअज्जिज[10] आदमियों ने इसे बहुत नापसन्द किया।"

इस [11]मुबाहिसे की 'सवाल जवाब' नाम की एक किताब है, उसकी दीबाचा अर्थात् भूमिका की यह नकल है, जो ऊपर लिखी है। चूंकि इसके देखने ही से असल हाल खुल जाता है, इसलिये अगाड़ी के सवाल जवाब नहीं लिखे गये। उक्त किताब के अन्त में बड़े दो प्रतिष्ठित रईसों ने यह इबारत लिख दस्तखत किए हैं कि हमारे रौबरू जो मरातिब गुफ्तगू मुअय्यन हुए थे वह वाकई यही थे जो दीबाच: में दर्ज हैं।

द० लाला अमीचंद साहब   द० मुहम्मद हुसैन महमूद

दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह (संग्रहीता-कविराज रघुनन्दन सिंह 'निर्मल') के पृ० ११४-१२३ के अनुसार इस शास्त्रार्थ का पाठ, जो पं० लेखराम संग्रहीत उर्दू जीवन चरित पर आवृत है, यहां आगे 'शास्त्रार्थ-जालन्धर' शीर्षक से दिया जा रहा है।

---

१. विद्वानों को परिपाटी के विरुद्ध जो कार्य हुआ। २. प्रशंसात्मक उपदेश देकर। ३. प्रशंसा के इच्छुक हुये। ४. व्यवस्था। ५. विद्वान्। ६. समझदार। ७. पृथक् हो गये। ८. ख्याति के इच्छुक। ९. विजयी। १०. प्रतिष्ठित। ११. यहां से अगली पंक्तियां पं० गोपालदास की हैं।

शास्त्रार्थ-जालन्धर

[चमत्कार के विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और मौलवी अहमद हुसैन साहब के मध्य होने वाले प्रश्नोत्तर]

स्वामी:—चमत्कार आप किसको कहते हैं ?

मौलवी:—मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध जो अद्भुत कार्य मनुष्य से सम्पन्न हो।

स्वामी:—स्वभाव आप किसको मानते हैं ?

मौलवी:—मनुष्य की प्राकृतिक इच्छा को स्वभाव कहते हैं।

स्वामी:—जो मनुष्य की शक्ति से बाहर है, वह किस प्रकार उससे हुआ ?

मौलवी:—मनुष्य से होने वाले कार्य दो प्रकार के हैं—एक तो वह कि मनुष्य को जिनका प्रकट करने वाला कहा जाता है; और दूसरे वह कि मनुष्य स्वयं जिनका कर्त्ता होता है। पहली प्रकार के कार्यों में मनुष्य को वास्तविक कर्त्ता नहीं समझा जाता। उदाहरणार्थ जैसे कठपुतली का नाच। ऐसे कार्य खुदा की ओर से मनुष्य के द्वारा प्रकट होते हैं।

स्वामी:—सब मनुष्यों में यह दोनों प्रकार के कार्य हैं, अथवा किसी एक में ?

मौलवी:—प्रत्येक में नहीं, कुछ में होते हैं।

स्वामी:—ईश्वर उल्टे काम कर और करा सकता है या नहीं?

मौलवी:—मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध करा सकता है, परन्तु वह काम ईश्वर के स्वभाव के विरुद्ध नहीं होता, और स्वयं अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता।

स्वामी:—ईश्वर के काम उल्टे होते हैं वा नहीं ?

मौलवी:—खुदा के कार्य कभी उसके स्वभाव के विरुद्ध नहीं होते, यद्यपि मनुष्यों के स्वभाव की अपेक्षा वह विरुद्ध समझे जा सकते हैं।

स्वामी:—चमत्कार सृष्टि के स्वभाव के अनुसार होता है या नहीं अर्थात् प्रकृति की इच्छा के विरुद्ध ?

मौलवी:– चमत्कार में यह आवश्यक नहीं कि समस्त सृष्टि के स्वभाव के विरुद्ध हो, यद्यपि यह सम्भव है कि किसी नबी (पैगम्बर). या वली (ईश्वर को प्राप्त करने वाला) से कोई ऐसा कार्य हो कि जो समस्त सृष्टि के स्वभाव के अनुकूल न हो।

स्वामी –चमत्कार किसी ने दिखाया अथवा [कोई] दिखावेगा, इसका क्या प्रमाण है ?

मौलवी:—यह प्रश्न ऐसा है जैसे कहा जावे कि किसी के मुख पर जो दाढ़ी आई है, उसके आने का क्या प्रमाण है ? जब चमत्कार के विषय में यह कह दिया गया कि वह कार्य जो मनुष्य से मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध हो। उसका कार्य मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध होता है, यही चमत्कार का प्रमाण है। बहुत से मनुष्यों ने, जो दयालु ईश्वर की दृष्टि में सम्मानित और प्रतिष्ठित हैं और ईश्वर ने जिन को सृष्टि के उपकार के लिए भेजा है, पूर्वकाल में चमत्कार दिखाये और भविष्य में भी दिखायेंगे। जैसा कि अल्लाह के रसूल हजरत मोहम्मद साहब ने भी बहुत से चमत्कार करके दिखाये, और ऐसे ही उनसे पूर्व हजरत ईसा ने भी बहुत से चमत्कार करके दिखाये। सिद्धि इस बात की दो प्रकार से होती है—एक तो सच्चे समाचार-दाताओं के द्वारा और दूसरे स्वयं देखने से। जैसा कि ऊपर दोनों महापुरुषों का वर्णन किया। जो लोग उनके समय में विद्यमान थे, उन्होंने स्वयं अपनी आंखों से देखा, और हम लोग जो इस समय के हैं, उनको इसका ज्ञान सच्चे समाचारदाताओं के वचनों और लेखों से हुआ।

स्वामी:—यह ठीक-ठीक युक्ति से सिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि सुनना कहना और लिखना दो प्रकार का होता है—सच्चा और झूठा। अब यह चमत्कार की बात सच्ची है, इसका क्या प्रमाण है ? जैसे कार्य को देख के कारण की पहचान होती है, अर्थात् नदी के प्रवाह को देखकर विदित होता है कि ऊपर वर्षा हुई है; इसी प्रकार चमत्कार हुआ, इसकी सिद्धि में इस समय क्या युक्ति है ? कदाचित् वह झूठा ही लिखा कहा अथवा सुना हो, क्योंकि जैसे अब कोई स्वार्थी मनुष्य झूठी बातों से बहका सुना कर अपना प्रयोजन सिद्ध करता है (वैसे ही यह भी हो)। जैसे इस समय में भी दो चार चमत्कारिक

अवतार हुये हैं। आगरे में शिवदयाल और रामसिंह क़ूका, जो काले पानी चले गये हैं। एक अकलकोट का स्वामी दक्षिण में विद्यमान है, और एक देव मामलादार ने सात दिन वैकुंठ में रहकर फिर आकर सुनाया कि मैं नारायण से बात करके आया हूं, और जो जो आज्ञा हुई वह तुमको सुनाता हूं। अब लाखों मनुष्य उसके चरणों में इतना नमस्कार करते हैं कि उसका पैर सूज गया है। जैसे यह बात अब झूठ इन्द्रजालवत् है, ऐसी पहले भी होगी। अब इस समय इतने मनुष्यों के बीच में कोई चमत्कार दिखाने वाला विद्यमान हो तो दिखलाइये, और जो अब नहीं तो पहले भी नहीं था, और आगे भी नहीं होवेगा। क्योंकि कार्य को देखे विना कारण की सिद्धि नहीं होती अथवा कारण के देखे विना कार्य की।

मौलवी:—जब यह सिद्ध हो चुका कि चमत्कार पवित्र ईश्वर का एक कर्म है, यद्यपि मनुष्य की अपेक्षा से वह असम्भव होता है, तथापि परमात्मा की अपेक्षा से वह असम्भव नहीं। क्योंकि यदि खुदा की अपेक्षा से वह असम्भव हो जाये तो उड़ना पक्षी का कभी न पाया जाये। इसके अतिरिक्त स्वभाव के विरुद्ध समस्त कर्म यद्यपि मनुष्य की अपेक्षा से असम्भव दिखाई देते हैं, परन्तु परमात्मा की अपेक्षा से असम्भव नहीं हैं। जब खुदा एक के बारे में वह अवसर उत्पन्न करता है, तो दूसरे शरीर के बारे में भी उत्पन्न कर सकता है। इसका अस्वीकार करना मानो परमात्मा की शक्ति का अस्वीकार करना है। यदि समाचार प्रत्येक चीज का झूठ हो, तो हमको चाहिए कि कलकत्ता, लन्दन अथवा और कोई नगर—जिसको हमने अपनी आंखों से नहीं देखा है—उसका विश्वास न करें। इसलिए सिद्धि चमत्कार की इसी प्रकार से है, जिस प्रकार आप वेद को सिद्ध करते हैं, अर्थात् जिससे आप यह कह सकते हैं कि वेद वही पुस्तक हैं जो ईश्वर की ओर से आई थी, अन्यथा उस पर कोई मुहर खुदा की लगी हुई नहीं है, जिससे कहा जावे कि यह वेद वही पुस्तक है। वेद सिद्धि में जो युक्तियां आप देंगे, वही चमत्कार के विषय में भी होगी।

स्वामी:—मैंने यह पूछा था कि ईश्वर ने अमुक अमुक व्यक्ति के द्वारा चमत्कार दिखाये—इसका क्या प्रमाण है ? चमत्कार परमेश्वर अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता, इसका दृष्टान्त सब सृष्टि का

रचना, धारण करना, प्रलय करना आदि है। वह न्याय, दया तथा अनन्त विद्या वाला है—कभी अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता। इसका उदाहरण समस्त सृष्टि है। जैसे इस समय मनुष्य का पुत्र मनुष्य ही होता है, पशु नहीं होता। इसी प्रकार परमेश्वर के काम में कभी भूल नहीं रहती। इसलिए परमेश्वर की शक्ति मानना चमत्कार पर अवलम्बित नहीं। और जो कोई चमत्कार मानता है, वह वर्तमान समय में किसी चमत्कार दिखाने वाले का उदाहरण दे। और परमेश्वर की शक्ति की भी कुछ न कुछ सीमा है, जैसे ईश्वर मर नहीं सकता, अज्ञानी नहीं हो सकता, बुरा काम नहीं कर सकता, क्योंकि वह न्यायकारी और अविनाशी है। यह उदाहरण चमत्कार पर लागू नहीं हो सकता क्योंकि कोई कहे कि बम्बई नहीं, तो वह बराबर बम्बई को दिखा सकता है। ऐसे ही जो यह उदाहरण सच्चा हो तो बम्बई के समान चमत्कार को भी दिखा दे।

वेद का ईश्वरकृत होना असम्भव नहीं, क्योंकि वह अन्तर्यामी और पूर्ण विद्वान् दयालु तथा न्यायकारी है। वह बराबर जीवात्मा में अन्तर्यामी रूप से अपना प्रकाश कर सकता है, जैसे इस समय भी बराबर अन्यायकारी की आत्मा में भय और लज्जा और न्यायकारी की आत्मा में हर्ष तथा उत्साह का प्रकाश करता है। इसलिए वेद का उदाहरण चमत्कार से सम्बन्धित नहीं। और मेरा अभिप्राय इस विषय के बारे में कि यह पुस्तक ईश्वरकृत है—यह है कि जैसा ईश्वर का स्वभाव, जैसा सृष्टि का क्रम प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है, और अनन्त विद्या का प्रकाश निर्दोषता आदि है—ईश्वर की रचना सिद्ध करने में सब मुहरें हैं। और जो आप कहें कि और प्रकार की मुहर चाहिए तो पृथिवी, सूर्य, चन्द्र और मनुष्य पर ईश्वरकृत होने की मुहर क्या है? जब मुहर से ईश्वर की रचना सिद्ध करनी है, तो कहीं मुहर दिखाई नहीं देती। ईश्वर का स्वभाव क्या है? जो ईश्वर मनुष्य के स्वभाव से उल्टा करा सकता है, तो किसी मनुष्य को पांव से खिलाया और पिलाया है, और मुख से पांव का काम लिया है या लिवाया है? मुझको ऐसा विदित होता है कि सब सम्प्रदाय वालों ने यह चमत्कार तथा भविष्यवाणी जैसे कि रसायन आदि का लोभ दिखा के बहुत लोगों को फंसाया है।

परमेश्वर कृपा करे, सबके आत्मा में विद्या का प्रकाश हो कि मनुष्य ऐसे जाल-फन्दों से छूट कर सत्य को मानें और झूठ से अलग रहें।

मौलवी:—हम पहले कह चुके हैं कि चमत्कार का कार्य मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध कराना असम्भव बात नहीं है, जिससे कहा जावे कि परमात्मा की शक्ति के बाहर है। यदि किसी को सन्देह हो तो मक्का नगर अथवा शाम देश में जाकर उन चालीस मनुष्यों को देख ले कि जो चमत्कार के दिखाने वाले हैं। वेद के अतिरिक्त ऐसी बहुत सी पुस्तकें हैं, जिनको कह सकते हैं कि मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध हैं। जैसे शिक्षा के विषय में "गुलिस्तां"[1] और बोस्तां इत्यादि। किन्तु यह कहना कि इसमें सब विद्यायें हैं—यह दावा युक्तिशून्य है, क्योंकि इसमें इल्मे इज़तराब (उद्भिजन-विद्या) कहां है ? अनोखी बातों का ज्ञान और निर्मित पदार्थों के ईश्वरकृत होने का प्रमाण यह है कि वह निर्माण किये हुए हैं, और यह निर्माण ही मानो खुदा की मुहर है। यह पुस्तक तौरेत के काल से निस्सन्देह पहले की है। इसमें वह समाचार है जो आज के दिन प्राप्त होता है। पुस्तक दानियाल अध्याय ११ पाठ १० से १९ तक भी प्रमाण है कि वह भविष्यवाणी जो सैंकड़ों वर्ष पूर्व लिखी गई थी अब पूरी हुई। दूसरे कुरान शरीफ के बारे में मुसलमानों का तेरह सौ वर्ष से सारे सम्प्रदायों के विरुद्ध यह दावा है कि इस कुरान शरीफ के समान एक पंक्ति भी बना कर कोई मनुष्य दिखावे। जैसा कि—

'फातू बिसूरतिम् मिम्मिस्लिहि"

तो इसकी सी एक सूरत ले आओ। अब तक किसी से बना नहीं, न बनेगा। यदि पंडित साहब को यह चमत्कार स्वीकार नहीं तो इसके समान एक पंक्ति बनाकर दिखायें। चमत्कार का प्रदर्शन मानो हमने इस सभा में कर दिया। अब हम पवित्र परमात्मा से यह प्रार्थना करते हैं कि वह समस्त सृष्टि को दृढ़ मार्ग पर लावे, और उनकी दृष्टि से पक्षपात को दूर करे।

---

१. गुस्लितां और बोस्तां शेखसादी द्वारा रचित फार्सी भाषा की दो प्रख्यात पुस्तकें हैं।

पुनर्जन्म के विषय में प्रश्नोत्तर

मौलवीः—वर्तमान आकार के विना सत्ता का होना सम्भव नहीं। जब आकार की सत्ता विनाशी है, तो अवश्य प्रकृति भी नाशवान् होनी चाहिये, क्योंकि प्रकृति को सत्ता आकार के द्वारा प्राप्त हुई। द्रव्य की अपेक्षा द्रव्य का कारण प्रधान होता तो पुनर्जन्म मानने वालों लिये जगत् का विनाशी मानना आवश्यक हो जाता है, परन्तु उन्होंने ऐसा माना था कि वह सनातन है।

स्वामीः—आकृति दो प्रकार की होती है—एक ज्ञान से ग्रहण होती है, और एक चक्षु आदि इन्द्रियों से। कारण में ही आकृति की स्थिति है, परन्तु वह इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होती। क्योंकि जो सूक्ष्म वस्तु होती है, जब वह स्वयं ही नहीं दिखाई देती, तो उसका आकार क्या दिखाई देगा? और जो कारण में आकृति न हो तो कार्य में नहीं आ सकती, क्योंकि जो कारण के गुण हैं, वही कार्य में आते हैं। जैसे एक तिल के दाने में तेल होता है, वह करोड़ों दानों में भी बराबर होता है। लोहे के एक अणु में तेल नहीं होता, तो वह मन भर में भी नहीं होता। जो वस्तु नित्य है उसके गुण भी नित्य हैं। कारण का होना न होना नहीं कहा जाता—वह तो सनातन है, और जो वस्तु सनातन है उसकी आकृति भी कारणावस्था में सनातन है। आकृति विना द्रव्य के पृथक् नहीं रह सकती। वह आकृति उसी द्रव्य की है, इससे सिद्ध है कि कारण सनातन है।

मौलवीः—यह नहीं कि जो चीज सिवाय किसी चीज के न पाई जाये, तो वह उसका रूप ही हो। उदाहरणार्थ जैसे चेष्टा हाथ और चाबी की। चेष्टा चाबी की विना हाथ की चेष्टा के नहीं पाई जाती, प्रत्युत जब चेष्टा चाबी की होगी तो चेष्टा हाथ की होगी, और जब चेष्टा हाथ की होगी तो चेष्टा चाबी की होगी, अर्थात् इन दोनों चेष्टाओं में कोई काल किसी का किसी से पहले या पीछे नहीं निकलता। और निसन्देह उत्कृष्ट बुद्धि जानती है कि कुंजी की चेष्टा विना हाथ के नहीं, अर्थात् चेष्टा कंजी की हाथ की चेष्टा पर निर्भर है, यद्यपि वर्तमान समय में इकट्ठी है। ऐसे ही प्रकृति और उसका रूप है। यद्यपि काल में एकता है, परन्तु बुद्धि इस बात को जानती है कि प्रकृति के आकार की अपेक्षा प्रकृति सनातन है। क्योंकि

गुणी और मानने वाला गुण और माने हुये की अपेक्षा सनातन होता है। प्रकृति की सत्ता अर्थात् उसका अनुभव होना और दिखाई देना किसी चीज के लगने से होता है। या तो आकृति के लगने से होता है या किसी और चीज के लगने से। प्रत्येक अवस्था में वह पदार्थ जिसके लगने से वह प्रकृति संसार में इस प्रकार स्थित हुई कि अनुभव हो और दिखाई दे, वह किसी ऐसे कारण से हुई जो पीछे से आकर प्रकृति को लगा।

और जो उत्तर में यह लिखा गया कि कारण का होना अथवा न होना नहीं कहा जाता, तो वह चीज अद्भुत है जिसका उपादान कारण में होना या न होना नहीं कह सकते। वह वस्तु जिसका उपादान कारण ऐसा हो, उसका होना किस प्रकार हो सकता है? अर्थात् वर्तमान वस्तु अभाव से नहीं बन सकती। और यदि उसके सनातन होने से कोई मनुष्य यह कहे कि वह विद्यमान भी होगा, तो यह गलत है, इसलिए कि अभाव से भाव का होना। उदाहरणार्थ जैसे कोई कहे कि "जैद" के तत्वों को एक विशेष आकार प्राप्त हुआ है, जिसके कारण उसका 'जैद" नाम रखा गया, तो वह विशेष आकार इस आकार से पहले कभी विद्यमान न था, इसलिये उसको अर्थात् उसके अभाव को सनातन कहा जावेगा। रूप के जो दो प्रकार कहे—एक वह कि जिसको आकृति कहते हैं, और एक उसके अतिरिक्त, इससे विदित हुआ कि आकार प्रकृति रहित है।

स्वामी:—स्वाभाविक गुण रूप आदि वस्तु के पीछे कभी नहीं होते, और जो पीछे हो उसको स्वाभाविक नहीं कहते। जैसे अग्नि के परमाणुओं का स्वाभाविक अतीन्द्रिय रूप अर्थात् आंख से अनुभव न होना स्वाभाविक सब काल उसके साथ है। निमित्त कारण के संयोग पर परमाणुओं का संयोग करने से स्थूल कार्य होने से उसका इन्द्रिय-ग्राह्य रूप प्रकट होता है। जैसे जल के परमाणु आकाश में उड़कर ठहरते हैं, और जब तक बादल नहीं बनते तब तक नहीं दीख पड़ते।

हमारा यह अभिप्राय नहीं कि वह प्रकृति नहीं है या प्रकृति का स्वाभाविक गुण नहीं है। उदाहरणार्थ जैसे लड़के का होना और लड़के

का न होना। जैसा कार्य में यह होना या न होना गुण है, वैसा कारण में नहीं है। जो कारण और कारण के स्वाभाविक गुण हैं वह अनादि हैं। कार्य वह है कि जो संयोग से हो, और वियोग के पीछे न रहे। वह जो एक संयोगजन्य आकृति है, वह कार्य की आकृति कहलाती है। उसका प्रवाह से अनादिपन है, स्वरूप से नहीं। और ईश्वर जो कि सर्वज्ञ है उसका निमित्त कारण अर्थात् बनाने वाला है। उसके ज्ञान में सदा है और रहेगा। (अन्तिम वाक्य का उत्तर ऊपर आ गया)।

मौलवी:—पदोत्कर्ष अर्थात् पहले होना दो प्रकार का होता है—एक निजी और एक सामयिक। निजी जैसा कि हम पहले वर्णन कर चुके हैं कि चेष्टा हाथ की और चाबी की, और ऐसा ही उत्कर्ष गुणी का अपने समवायी गुणों पर। उदाहरणार्थ उत्कर्ष पानी का अपने बहने पर। उत्कृष्ट बुद्धि जानती है कि बहने की स्थिति पानी के साथ है। इस उत्कर्ष को निजी उत्कर्ष कहा जावेगा। कहने का अभिप्राय यह कि उत्कर्ष गुणी का उन गुणों पर जो उसके अपने गुण हैं, निजी उत्कर्ष कहलाता है। क्योंकि गुणी अपने गुणों से अवश्य उत्कृष्ट होता है। और सन्देह तब उत्पन्न होते हैं, जब उत्कर्ष सामयिक हो। दूसरा सामयिक उत्कर्ष वह है—जैसा कि बाप का अपने बेटे पर होता है। गुणी का गुणों से रिक्त होना तब आवश्यक होता है जब उत्कर्ष सामयिक हो। तात्पर्य यह है कि अपने आकार पर जो उत्कर्ष प्रकृति का है वह निजी उत्कर्ष है, क्योंकि गुणी गुणों से उत्कृष्ट होना चाहिये।

स्वामी :—द्रव्य उसको कहते हैं कि जिसमें गुण, क्रिया, संयोग वियोग होने का स्वभाव पाया जावे, परन्तु जो द्रव्य परिच्छिन्न अर्थात् पृथक् पृथक् हैं, उनका यह लक्षण है। जो विभु व्यापक द्रव्य है वह संयोग वियोग के स्वभाव से पृथक् होता है। किसी व्यापक में गुण ही प्रधान होते हैं, क्रिया नहीं। जैसे कि परमेश्वर—उसमें संयोग वियोग नहीं होता परन्तु क्रिया और गुण हैं, और आकाश, दिशा, काल यह व्यापक हैं परन्तु इनमें क्रिया नहीं केवल गुण हैं।

मौलवी :—यह उत्तर पहले प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, क्योंकि इस उत्तर में निजी और सामयिक भेद नहीं किया गया। ज्ञानस्थ आकृति की अपेक्षा से "ज़ैद" का विशेष प्रकार का अभाव

अर्थात् उसके नियत शरीर का एक नियत काल से जो सम्बन्ध था, उस शरीर की उत्पत्ति के पूर्व उसका पूर्ण अभाव था। और यह विचार जो प्रकट किया गया कि पूर्ण अभाव उस शरीर विशेष का नहीं है—उसकी आकृति ईश्वर के ज्ञान में विद्यमान है, यह बिल्कुल गलत है, क्योंकि ईश्वर के ज्ञान में यह शरीर विशेष तो विद्यमान नहीं, जो तीन हाथ का है। किसी वस्तु के अनादि होने से किसी वस्तु की उत्पत्ति तो सिद्ध नहीं होती। ज्ञानस्थ आकृति के बारे में बात यह है कि ईश्वर का ज्ञान ज्ञानस्थ आकृति के साथ नहीं है, क्योंकि ज्ञानस्थ आकृति वह होती है जो बाहरी वस्तु के देखने से प्राप्त होती है। जब आकार विशेष को अनादि नहीं माना जाता, तो ईश्वर के ज्ञान में वह ज्ञानस्थ आकृति कहां से प्राप्त हुई? यदि कोई वस्तु अनादि थी, तो आपके मन्तव्य के अनुसार प्रकृति अनादि थी, और जिस वस्तु का साधनों द्वारा अनुभव न किया जा सके जैसे कि आप प्रकृति और आकार को मानते हैं कि प्रथम अवस्था में अनुभव के योग्य न था, तो उसका ज्ञान किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

क्योंकि किसी पदार्थ को जानने की विधि यही है कि किसी की चेष्टा के द्वारा ज्ञानेन्द्रिय में उसका आकार प्राप्त हो, उसी को ज्ञानस्थ आकृति कहा जाता है। और जहां तक जल के परमाणुओं का सूक्ष्म होकर वाष्प बन जाने का प्रश्न है, तो यद्यपि वह दृष्टिगोचर नहीं होता, फिर भी किसी न किसी चेष्टा के द्वारा वह जानने के योग्य है। प्रत्येक अवस्था में जो आकार इस प्रकार का माना गया है कि जिसका ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता, तो उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। जब अनादित्व ही गलत सिद्ध हुआ तो पुनर्जन्म कहां रह गया? यदि यूं कहा जाता है कि एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने का कारण उसके वे कर्म हैं जो प्रथम शरीर में किये थे, तो यह प्रकट है कि कर्म चेष्टा द्वारा होते हैं और चेष्टा काल पर निर्भर है, और काल का आदि अन्त और मध्य इकट्ठा नहीं रह सकता। इसके अतिरिक्त कर्म जो किसी समय के द्वारा किये गये वह भी नष्ट हो गये। अथवा दूसरे शरीर से सम्बन्ध किसी उत्कर्षक की ओर से न होगा। जब आत्मा का शरीरों से समान सम्बन्ध है, तो विशेष सम्बन्ध होने से उत्कर्षता

बिना उत्कर्षक के बाधक होगी। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध से बहुत सी हानियां उत्पन्न होंगी, क्योंकि विशेषतायें जो प्रथम शरीर में प्राप्त की थीं वह दूर हो गईं। और उदाहरणतया यदि दूसरा सम्बन्ध कुत्ते अथवा गधे से हो तो उस कुत्ते और गधे के शरीर में वह विशेषतायें प्राप्त नहीं कर सकता जो मनुष्य के शरीर में प्राप्त कर सकता था। अब आपको उचित है कि प्रथम विद्याओं के प्राप्त करने की विधि निश्चित कीजिये, फिर उसके पश्चात् सम्बन्ध का कारण निश्चित किया जावे, तब उस पर आक्षेप किया जा सकता है।

स्वामी :—दश इन्द्रियों के विषय में मौलवी साहब का कहना ठीक नहीं, जैसा कि जोवात्मा किसी इन्द्रिय से नहीं देखा जाता? परन्तु अस्तित्व उसका है। जो मौलवी साहब ने कहा कि अनादि वस्तु झूठी है—यह किसने कहा है? क्या यह बात आपने अपने दिल से जोड़ ली है? क्योंकि जब मैं लिखवा चुका कि परमेश्वर, जीव और जगत् का कारण यह तीनों सनातन हैं, इससे अनादित्व सिद्ध है। और अभाव से भाव कभी नहीं होता, यदि कोई कहता है तो उसका प्रमाण नहीं है। गधे और कुत्ते के शरीर में मनुष्य का जीव जाने से मौलवी साहब कहते हैं कि बड़ी हानि होती है, क्योंकि सब कमाई की हुई चली जाती है। यदि मौलवी साहब ऐसा मानते हैं, तो मौलवी साहब को कभी सोना न चाहिये, क्योंकि निद्रा में जाग्रत की कमाई सब भूल जाती है। यदि मौलवी साहब कहें कि फिर जागने से वह ज्ञान आ जाता है, तो कुत्ते गधे के शरीर में भी आ जायेगा। और ज्ञान फिर प्राप्त कर सकता है जैसे कि मनुष्य निद्रा से जाग कर करता है। इसलिये मैं जानता हूं कि मौलवी साहिब के भाषण और मेरे भाषण को बुद्धिमान् लोग स्वयं ही देख लेंगे। और एक जन्म इन बातों से सिद्ध नहीं होता, परन्तु पुनर्जन्म सिद्ध है।

हस्ताक्षर अंग्रेजी
ला० अमी चन्द

हमारे समक्ष जो बातचीत के विषय निश्चित हुये, वह वास्तव में यही थे, जो इस भूमिका में लिखे हैं।

हस्ताक्षर—मौहम्मद हुसैन महमूद

५. शास्त्रार्थ-अजमेर

सम्पादकीय

अजमेर में ऋषि दयानन्द का पादरी ग्रे के साथ शास्त्रार्थ हुआ। इसका विवरण पं० लेखराम द्वारा संग्रहीत स्वामीजी के उर्दू जीवन चरित्र में पृ० ७१४ से ७१६ तक दिया गया है। 'दयानन्द-दिग्विजयार्क' भाग १ मयूख ६ में भी **'किरानी-मत-खण्डनं'** शीर्षक के अन्तर्गत इस शास्त्रार्थ का विवरण प्रकाशित हुआ है। मुन्शी बख्तावर सिंह द्वारा सम्पादित 'आर्य-दर्पण' मासिक के जून १८८० के अंक में पृ० १३६ से १४६ पर्यन्त यही विवरण हिन्दी तथा उर्दू में समानान्तर कालमों में प्रकाशित हुआ। इस विवरण के लेखक ऋषि दयानन्द के अनन्यभक्त एवं ऋषि के अन्तिम वर्षों में 'वैदिक यन्त्रालय' के प्रबन्धक मुन्शी समर्थदान थे। जैसा कि नीचे उद्धृत सम्पादक 'आर्यदर्पण' के नाम लिखित मुंशी समर्थ-दान के पत्र से ज्ञात होता है। यहां इस शास्त्रार्थ का 'आर्य-दर्पण' में प्रकाशित विवरण दिया जा रहा है। पं० लेखराम द्वारा संकलित विवरण 'दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह' के पृ० १५५-१६२ तक प्रकाशित हुआ, अतः उसे यहां देना हमने अनावश्यक समझा।

'मुन्शी समर्थदान' का पत्र सम्पादक 'आर्य-दर्पण' के नाम

नमस्ते—मैं आपके पास यह शास्त्रार्थ भेजता हूं। कृपा करके अपने बहुमूल्य पत्र में इसको स्थान दीजिये। इस में जितने प्रश्नोतर हैं, वे सब उसी समय के लिखे हुये हैं, क्योंकि उस समय तीन लेखक इसी कार्यार्थ बिठलाये थे, उन्होंने बराबर अक्षर-अक्षर करके लिखा। उसकी एक प्रति पादरी साहब ने ली और दो स्वामीजी महाराज ने। इन दोनों प्रति पर सरदार बहादुर मुन्शी अमीचंद साहब और पण्डित भागराम जी के हस्ताक्षर भी हैं। मैं वहां शास्त्रार्थ में उपस्थित था, इसलिये स्वामीजी महाराज ने दोनों प्रति मुझे दे दी थीं और आज्ञा की थी कि इनके अनुसार छपवा देना और सब वृत्तान्त भी लिख देना। महाराज की आज्ञानुसार मैंने सब वृत्तान्त लिखा, सो भेजता हूं। मैंने कितने ही स्थानों में पादरी साहब का पूर्वापर विरुद्ध भाषण प्रकट होने के लिये नोट भी कर दिये हैं।

—समर्थदान

शास्त्रार्थ-अजमेर

[जो स्वामीजी और पादरी ग्रे साहब के बीच १८७८ ई० में हुआ।]

[पूर्व-पीठिका]

विदित हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी कार्तिक सुदी १३ के दिन अजमेर में आये थे। थोड़े दिनों के पीछे वेदादि सत्य शास्त्रोक्त धर्म-विषय में व्याख्यान देने लगे। 'ईश्वर-विषय' के पीछे दूसरा 'वेद विषय' का व्याख्यान था। उस दिन अजमेर के बड़े पादरी ग्रे साहब और डाक्टर हसबैण्ड साहब भी आये थे। उसमें स्वामीजी ने शास्त्र और युक्ति से यह सिद्ध किया कि ईश्वरकृत पुस्तक केवल चार वेद ही हैं, अन्य कोई नहीं। इसके पीछे एक बड़ा सूचीपत्र तौरेत, इंजील और कुरान की अशुद्धता का पढ़ कर सुनाया, और कहा कि—

"मैंने यह सूचीपत्र किसी को चिढ़ाने के लिए नहीं सुनाया है, किन्तु इसलिये कि सब लोग पक्षपात-रहित होकर विचारें कि जिन पुस्तकों में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हों, वे ईश्वरकृत हो सकते हैं वा नहीं" ?

इस बात पर पादरी ग्रे साहब ने कहा कि—आपने जो तौरेत और इंजील की बातें सुनाईं, इनमें प्रश्न लिख कर आप मेरे पास भेजें, मैं इनका उत्तर दूंगा। स्वामीजी ने कहा कि—मैं तो यही चाहता हूं, और सदैव मेरी यही इच्छा रहा करती है कि आप जैसे बुद्धिमान् पुरुष मिल के सत्यासत्य का निर्णय करें।

पादरी साहब ने कहा कि – सत्य का निर्णय जब होगा कि आप मेरे पास प्रश्न भेजेंगे और मैं उत्तर दूंगा। फिर स्वामीजी ने कहा कि—लिखकर दोनों ओर से प्रश्नोत्तर भेजने में काल बहुत लगता है, और मनुष्यों को भी इससे लाभ नहीं पहुंचता। इसलिये यही बात अच्छी है, कि आप यहां भी आवें और मैं प्रश्न करू और आप उत्तर दें। तब पादरी साहब ने कहा कि—आप प्रश्न मेरे पास भेज देवें, जब मैं दो चार दिन में उनको विचार लूंगा, तब पीछे आपको उत्तर यहां आकर दूंगा। स्वामीजी ने कहा कि—प्रश्न तो मैं नहीं भेजूंगा,

परन्तु मुझको जहां-जहां इंजील और तौरेत में शंका है, उनमें से थोड़े से वाक्य लिख कर भेज दूंगा। उनको जब आप विचार लेंगे, तो उन्हीं में मैं प्रश्न करूंगा, आप उत्तर देना। फिर इतनी बात होने के पीछे पादरी साहब चले गये।

उसके दूसरे दिन स्वामीजी ने तौरेत और इंजील के साठ वाक्य लिख कर पण्डित भागराम साहब एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर के द्वारा पादरी साहब के पास भेज दिये[1]। फिर नौ दस दिन पीछे जब पादरी साहब ने उनको विचार लिया और व्याख्यान हो चुके, तब एक दिन प्रश्नोत्तर के लिये नियत हुआ। उस दिन नोटिस दे दिया था, इस कारण से बहुत लोग आये। सरदार बहादुर मुन्शी अमीचन्द साहब जज, पण्डित भागराम साहब एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर, सरदार भगतसिंह साहब ऐंजिनियर इत्यादि प्रतिष्ठित पुरुष आये थे। जब समय हुआ तब स्वामीजी चारों वेदों के पुस्तक लेकर आये और पादरी साहब भी बहुत सी पुस्तकें लेकर आये। पादरी साहब के साथ डाक्टर हसबैण्ड साहब भी आये। प्रथम **स्वामीजी** ने कहा कि—मैंने कितनी ही जगह पादरी लोगों से बातचीत की है, कभी किसी प्रकार का कुछ गड़बड़ नहीं हुआ। आज भी मैं जानता हूं कि पादरी साहब से वार्तालाप निर्विघ्नता से पूरा होगा। फिर पादरी साहब ने भी निर्विघ्नता से बातचीत होने की आशा प्रकट की, और कहा कि—स्वामीजी ने जो वाक्य लिख कर हमारे पास भेजे हैं वे बहुत हैं, और समय केवल दो अढ़ाई घण्टे का है। इसलिये प्रत्येक वाक्य पर दो बार ही प्रश्नोत्तर होना ठीक है। इसके पश्चात् प्रश्नोत्तर होने लगे। और तीन लेखक[2] भी बिठला लिये। इन तीनों को स्वामीजी और पादरी साहब बोलते समय अक्षर-अक्षर लिखवाते जाते थे।

---

१. इन वाक्यों के साथ वेद-भाष्य भी भेजा था, क्योंकि पादरी साहब ने कहा था कि आप बाईबिल में प्रश्न करें, मैं उत्तर दूंगा, और मैं वेदों में कितनी ही बातों पर प्रश्न करूंगा, आप उत्तर देना। पादरी साहब ने वेद-भाष्य देखा होगा, परन्तु प्रश्न नहीं किये।—स० दा०

२. बाबू रामनाथ, हैडमास्टर राजपूत स्कूल जयपुर; बाबू चन्दूलाल, वकील गुड़गावां; हाफिज मोहम्मद हुसैन, दरोगा चुंगी, अजमेर।

[स्वामीजी और पादरी ग्रे के मध्य प्रश्नोत्तर]

स्वामीजी:—तौरेत उत्पत्ति की पुस्तक पर्व १ आयत २ में लिखा है कि—'पृथ्वी बेडोल थी'। अब देखना चाहिये कि परमेश्वर सर्वज्ञ है, सब विद्या उसमें पूरी हैं। उसकी विद्या के काम में बेडोलता कभी नहीं हो सकती, क्योंकि उसके सब काम बेभूल हैं। बेडोलता मनुष्यों के काम में हो सकती है, क्योंकि उनको पूरी विद्या और सर्वज्ञता नहीं है। इससे जीव के काम में बेडोलता रह सकती है, ईश्वर के काम में नहीं।

पादरी:—यहां अभिप्राय 'बेडोल' से नहीं है किन्तु उजाड़ से है। आयूब की किताब बाब २ आयत २४ में है कि—"विना मार्ग जंगल में उन्हें भ्रमना है", यहां जिस शब्द का अर्थ जंगल है, उसी का अर्थ वहां बेडोल है।

स्वामी:—इससे पहली आयत में यह बात आती है कि—"आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा और पृथिवी बेडौल सूनी थी। गहराव पर अंधियारा था", इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उजाड़ का अर्थ यहां नहीं ले सकते, क्योंकि लिखा है कि 'सूनी थी'। बेडोल के अर्थ उजाड़ के होते तो 'सूनी थी' इस शब्द की कुछ आवश्यकता नहीं थी। और जब कि ईश्वर ने ही पृथिवी को रचा है, सो प्रथम ही अपने ज्ञान से डोलवाली क्या नहीं रच सकता था ?

पादरी:—दो शब्द एक ही अर्थ के सब भाषाओं में एक दूसरे के पीछे बहुधा आते हैं, जैसे इबरानी में 'तोहू बोहू', फारसी में 'बूदो-बाश' ये सब एक अर्थ के वाची हैं। इसी प्रकार उर्दू में यह अर्थ ठीक है कि 'जमीन बेरान और सुनसान थी।'

स्वामीजी इस बात पर और प्रश्न करना चाहते थे। इतने में पादरी साहब ने कहा कि—एक एक वाक्य पर दो दो प्रश्न और दो दो उत्तर होने चाहियें। क्योंकि वाक्य बहुत हैं, नहीं तो सब प्रश्न आज न हो सकेंगे। स्वामी जी ने कहा कि—यह अवश्य नहीं है कि आज ही सब वाक्यों पर प्रश्नोत्तर हो जांय, कुछ आज होंगे। फिर इसी प्रकार दो चार दिन अथवा जब तक ये वाक्य पूरे न हों, तब तक प्रश्नोत्तर होते रहेंगे। जब पादरी साहब ने इस बात को

स्वीकार नहीं किया, तब स्वामीजी ने कहा कि--यदि अधिक न हों तो एक वाक्य पर दश बार प्रश्न होने चाहियें। पादरी साहब ने यह भी स्वीकार न किया। स्वामीजी ने फिर कहा कि—प्रत्येक वाक्य पर कम से कम तीन वार प्रश्नोत्तर तो होने ही चाहियें। इस पर भी पादरी साहब ने कहा कि हमको दो बार से अधिक प्रश्नोत्तर करना कदाचित् स्वीकार नहीं है। तब स्वामीजी ने कहा कि हमको इसमें कुछ हठ नहीं है, सभा की जैसी सम्मति हो वैसा किया जाय। स्वामीजी की इस बात पर कोई कुछ न बोला। परन्तु डा० हसबैण्ड साहब ने कहा कि यदि सभा से प्रत्येक विषय में पूछेंगे, तो चार सौ मनुष्य हैं उनमें से किस किस से पूछा जायेगा ? स्वामीजी ने कहा कि यदि पादरी साहब को तीन प्रश्न करना स्वीकार नहीं हैं, तो जाने दो, हम दो करेंगे, क्योंकि इतने मनुष्य विज्ञापन देख कर इकट्ठे हुये हैं, जो यहां कुछ बात न हुई तो अच्छा नहीं। फिर स्वामीजी ने दूसरे वाक्य पर प्रश्न किया।[1]

स्वामी:—वही पर्व और वही आयत—'**और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था**'। पहली आयत से विदित होता है कि ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को रचा, यहां जल की उत्पत्ति नहीं कही, तो जल कहां से हो गया ? ईश्वर आत्म-स्वरूप है वा जैसे कि हम शरीरवाले हैं वैसा ? जो शरीरवाला है तो उसका सामर्थ्य आकाश और पृथिवी बनाने का नहीं हो सकता। क्योंकि शरीरवाले के शरीर के अवयवों से परमाणु आदि को ग्रहण करके रचना में लाना असम्भव है, और वह व्यापक भी नहीं हो सकता। जब उसका आत्मा जल पर डोलता था, तब उसका शरीर कहां था ?

पादरी:—जब पृथिवी को सृजा तो पृथिवी में जल भी आ गया। और दूसरी बात का उत्तर यह है कि परमेश्वर आत्मरूप है। तौरेत के आरम्भ से इंजील के अन्त तक परमेश्वर आत्मस्वरूप कहलाया।

स्वामी:—ईश्वर का वर्णन तौरेत से लेकर इंजील पर्यन्त में

१. देखो यह सभा सत्य के निर्णय के लिये की गई थी, और सत्य का निर्णय तब ही होता है कि जब एक वाक्य पर अच्छी प्रकार प्रश्नोत्तर हो जांय, किन्तु पादरी साहब ने ऐसा न करके दो प्रश्न और दो उत्तर करने की ही हठ की, परन्तु फिर भी अपना बचाव न कर सके, कलई खुल गई।—स.दा.

बहुत ठिकानों में ऐसा है कि—वह किसी प्रकार का शरीर भी रखता है, क्योंकि आदम की बाडी को बनाना, वहां आना, फिर ऊपर चढ़ जाना, सनाई पर्वत पर जाना, मूसा इबराहीम और उनकी स्त्री सरी से बातचीत करना, डेरे में जाना, याकूब से मल्लयुद्ध करना, इत्यादि बातों में पाया जाता है कि अवश्य किसी प्रकार का शरीर वह रखता है, वा उसी दम अपना शरीर बना लेता है।

पादरी:—ये सब बातें इस आयत से कुछ सम्बन्ध नहीं रखती हैं, केवल अंजानपने से कही जाती हैं। इसका यह ही उत्तर है कि यहूदी, ईसाई और मुसलमान जो तौरेत को मानते हैं, इस पर एक सम्मत हैं कि खुदा रुह है[1]।

स्वामी:—पर्व वही आयत २६—"**तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें**"। इससे स्पष्ट पाया जाता है कि ईश्वर भी आदम के स्वरूप जैसा था। जैसा कि आदम आत्मा और शरीर युक्त था, ईश्वर को भी इस आयत से वैसा ही समझना चाहिये। जब वह शरीर जैसा स्वरूप नहीं रखता, तो अपने स्वरूप में आदम को कैसे बना सका ?

पादरी:—इस आयत में शरीर का कुछ कथन नहीं, परमेश्वर ने आदम को पवित्र ज्ञानवान् और आनन्दित रचा। वह सच्चिदानन्द ईश्वर है, और आदम को अपने स्वरूप में बनाया। जब आदम ने पाप किया तो परमेश्वर के स्वरूप से पतित हो गया। जैसे पहले प्रश्नोत्तर के २४ और ३० प्रश्न से विदित होता है। कोलसोसियों की पत्री, तीसरा पर्व, ९ और १० आयत—"एक दूसरे से झूठ मत बोलो, क्योंकि तुमने पुराने मनुष्यता को उसके कार्यों समेत उतार

१. पाठको ! पहले उत्तर में तो पादरी साहब कहते हैं कि "तौरेत के आरम्भ से इंजील के अन्त तक परमेश्वर आत्मस्वरूप कहलाया"। जब स्वामी जी ने उसी पुस्तक में दिखला दिया कि ईश्वर का शरीर वाला होना सिद्ध है, तब पादरी साहब कहते हैं कि ये सब बातें इस आयत से कुछ सम्बन्ध नहीं रखती। और फिर पुस्तक के वर्णन को छोड़ यहूदी, ईसाई और मुसलमानों के मत पर दौड़ जाते हैं। यहां यह प्रश्न होता है कि उक्त लिखे तीनों मत वाले खुदा को रूह मानते हैं, तो क्या बाइबिल के विरुद्ध नहीं हैं, कि जिससे ईश्वर का शरीर वाला होना सिद्ध होता है ?—स० दा०

फैंका है और नये मनुष्यता को जो ज्ञान में अपने सृजन हारे के स्वरूप के समान नये बन रहे हैं, पहना है"। इससे विदित होता है कि ज्ञान और पवित्रता में परमेश्वर के समान बनाया गया, और नये सिरे से हम लोगों को बनाया। कोरंटियों का तीसरा पर्व, १७ और १९ आयत—"और प्रभु ही आत्मा है, और जहां कहीं प्रभु का आत्मा है वहीं निर्विघ्नता है, और हम सब बिना परदा प्रभु के तेज को दर्पण में देख देख प्रभु के आत्मा के द्वारा तेज से तेजलों उसके स्वरूप में बदलते जाते हैं।" इससे ज्ञात होता है कि विश्वासी लोग बदल के फिर परमेश्वर के स्वरूप में बन जाते हैं, अर्थात् ज्ञान पवित्रता और आनन्द में, क्योंकि धर्मी होने से मनुष्य के शरीर का रूप नहीं बदलता है।

स्वामी:—परमात्मा के सदृश आदम के बनने से सिद्ध होता है कि ईश्वर भी शरीर वाला होना चाहिये। जो परमेश्वर ने आदम को पवित्र और आनन्दित रचा था, तो उसने ईश्वर की आज्ञा क्यों तोड़ी? और जो आज्ञा तोड़ी तो विदित होता है कि वह ज्ञानवान् नहीं था। और—"जब उसने ज्ञान के पेड़ का फल खाया तब उसकी आंख खुल गई"—इससे जाना जाता है वह ज्ञानवान् पीछे से हुआ। जो पहले ही से ज्ञानवान् था, तो फल के खाने के पीछे ज्ञान हुआ, यह बात नहीं बन सकती। और प्रथम परमेश्वर ने उसको आशीर्वाद दिया था कि तुम फलो फूलो आनन्दित रहो, और फिर जब उसने ईश्वर की आज्ञा के बिना उस पेड़ का फल खाया, तब उसकी आंखें खुलने से उसको ज्ञान हुआ कि हम नंगे हैं, गूलर के पत्ते अपने शरीर पर पहने।

अब देखना चाहिये—जो वह ईश्वर के समान ज्ञान में और पवित्रता में होता, तो उसको नंगा और ढका रहना क्यों नहीं जान पड़ता? क्या उसको इतनी भी शुध नहीं थी? जब परमेश्वर के समान वह ज्ञानी, पवित्र और आनन्दित था, तो उसको सर्वज्ञ और नित्य शुद्ध और आनन्दित रहना चाहिये, और उसके पास दुःख कुछ भी कभी न आना चाहिये। क्योंकि वह परमेश्वर के समान इन ऊपर लिखी तीनों बातों में है, तो वह पतित किसी प्रकार से नहीं हो सकता, और जो पतित हुआ तो परमेश्वर के समान नहीं हुआ, क्योंकि परमेश्वर ज्ञानादि गुणों से पतित कभी नहीं होता।

फिर बतलाइये कि जैसे आदम प्रथम ज्ञान आदि तीनों गुणों में परमेश्वर के समान होके फिर उनसे पतित हो गया, वैसे ही विश्वासी लोग ज्ञानी, पवित्र और आनन्दित होंगे वा अधिक कम ? जो वैसे ही होंगे, तो फिर जैसे आदम पतित हो गया, वैसे ही विश्वासी भी हो जावेंगे, क्योंकि वह तीनों बातों में परमात्मा के समान होकर पतित हो गया।

पादरी:—बहुधा बातों में पहिला उत्तर बहुत है। अब रहा यह कि—यदि आदम पवित्र था तो आज्ञा क्यों तोड़ी ? उत्तर यह है कि वह पहले पवित्र था और आज्ञा तोड़ के पापी हुआ[1]। फिर यह कहा कि—ज्ञानवान् पीछे से हुआ, यह बात नहीं है। जब भले बुरे के ज्ञान के पेड़ का फल खाया[2] तब बुराई जान पड़ी, पहले न जानता था। 'आंखें खुल गईं और उसको जान पड़ा कि मैं नंगा हूं'—इसका उत्तर यह है कि पापी होके उसको लज्जा आने लगी। फिर यह कि—यदि परमात्मा के समान होता तो पतित न होता, इसका उत्तर यह है कि वह परमात्मा के समान बनाया गया, न कि उसके तुल्य। यदि परमात्मा के तुल्य होता तो पाप में न गिरता। अन्त में जो पूछा कि—विश्वासी लोग आदम से अधिक पवित्र हो जायेंगे, इसका उत्तर यह है कि—अधिक और कम पवित्र होने में प्रश्न नहीं है, किन्तु स्वरूप के विषय में है कि परमेश्वर का रूप शारीरिक था वा नहीं ? यदि वह स्वरूप जिसका कथन होता है, शारीरिक होता तो धर्मी लोग जब परमेश्वर के स्वरूप में नये शिरे से बन जाते हैं, अपने शरीर को बदल डालते हैं।

स्वामी:—तौरेत का पर्व २, आयत ३—"उसने सातवें दिन अपने सब कार्य करके विश्राम किया, और ईश्वर ने सातवें दिन को आशीर्वाद दिया, और उसे पवित्र ठहराया"। ईश्वर को सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द स्वरूप होने से परिश्रम जगत् के रचने में कुछ भी नहीं हो सकता, फिर सातवें दिन विश्राम करने की क्या

१. देखिये, क्या विचित्र उत्तर है।

२. यहां यह प्रश्न होता है कि वह परमेश्वर के समान ज्ञानी था, तो भले बुरे के ज्ञान के पेड़ को क्यों नहीं जानता था ? जो यह कहो कि पहले नहीं जानता था, तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि ज्ञानी नहीं था।—स० दा०

आवश्यकता थी ? और विश्राम किया तो छः दिन तक बड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा ? और सातवें दिन को आशीर्वाद दिया तो छः दिनों को क्या दिया ? हम नहीं कह सकते कि परमेश्वर को एक क्षण भी जगत् के रचने में लगे वा कुछ भी परिश्रम हो।

जब स्वामीजी ने यह प्रश्न किया, तब पादरी साहब ने कहा कि—अब समय हो चुका, इससे अधिक हम नहीं ठहर सकते, और बोलते समय लिखाना पड़ता है, इससे देर बहुत लगती है, इसलिये हम कल भी नहीं करना चाहते। जो बोलते समय लिखा न जाय, तो हम कर सकते हैं। यदि स्वामीजी को लिख कर प्रश्नोत्तर करना है, तो हमारे पास प्रश्न लिखकर भेज दें, हम लिख कर उत्तर देंगे। इस पर डाक्टर हसबैंड साहब के कहने से सरदार बहादुर अमीचन्द साहब ने कहा कि—मेरी भी यही सम्मति है कि प्रश्नोत्तर लिख कर पत्र द्वारा किया करें। आज की नाईं किये जायेंगे, तो छः महीने तक भी पूरे न होंगे।

स्वामीजी ने कहा कि—प्रश्नोत्तर के लिखे बिना बहुत हानि है, जैसे अभी थोड़ी देर के पश्चात् अपने में से कोई अपनी कही हुई बात के लिये कह सकता है कि मैंने यह बात नहीं कही। दूसरे बातचीत हुये पीछे और लोगों के हितार्थ छपा कर भी प्रकट नहीं कर सकते। जो यदि कोई छपावे भी तो उसके जी में जो आवे सो छपवा सकता है। और जो मकान पर प्रश्नोत्तर लिख लिख कर किया करें, तो इसमें काल बहुत लगेगा। और जो कहा जाय कि इस प्रकार छः महीने में पूरा न होगा, सो मैं कहता हूं कि इसमें छः मास का कुछ काम नहीं है। हां, जो मकान पर पत्र द्वारा करेंगे, तो तीन वर्ष में भी पूरा न होगा, और जो मनुष्य सभी सामने सुन रहे हैं, ये नहीं सुन सकेंगे। इसलिये यही अच्छा है कि सब के सामने प्रश्नोत्तर किये जायँ और लिखाया भी जाय।

पादरी साहब ने कहा कि—यहां प्रश्नोत्तर करने में लोगों के सुनने का लाभ बतलाया, परन्तु मैं जानता हूं कि आज की वार्ता में यहां इतने लोग बैठे हैं, इनमें से थोड़े ही समझे होंगे। पादरी साहब की इस बात को सुनकर एक साहब मुसलमान कि जो प्रश्नोत्तर लिखने को बैठे थे और दो मुसलमान लोग कहने लगे

कि हम कुछ भी नहीं समझे।[१] इस बात पर पादरी साहब ने कहा कि—देखिये लिखने वाला ही नहीं समझा, तो और कौन समझ सकता था ? फिर स्वामीजी ने जो दो दूसरे लिखने वाले थे, उनसे पूछा कि तुम समझे वा नहीं ? उन्होंने कहा कि हां हम बराबर समझे। हमने जो कुछ लिखा है उसको अच्छी प्रकार कह सकते हैं। तब स्वामीजी ने कहा कि दो लिखने वाले तो समझे और एक नहीं समझा। अन्त में पादरी साहब ने दूसरे दिन प्रश्नोत्तर का लिखा जाना स्वीकार नहीं किया।

स्वामीजी ने पादरी साहब से कहा कि आज के प्रश्नोत्तर की तीन प्रति लिखी गई हैं। इन पर आप हस्ताक्षर कर दीजिये और मैं भी करे देता हूं, और प्रधान सभा से भी कराकर एक प्रति आपके पास, एक मेरे पास, और एक प्रधान के पास रहेगी। पादरी साहब ने कहा कि हम ऐसी बातों पर हस्ताक्षर करना नहीं चाहते।[२] इतनी वार्ता के पश्चात् सभा उठ खड़ी हुई और सब लोग अपने-अपने मकानों को चले गये। परन्तु स्वामीजी महाराज, सरदार बहादुर अमीचन्द साहब और पण्डित भागराम साहब, सरदार भगतसिंह जी के मकान पर कि जो सभा के मकान के पास था, ठहरे। उस समय प्रश्नोत्तर की दो प्रतियों पर, कि जो स्वामी जी के पास रहीं थी, उक्त दोनों साहबों के हस्ताक्षर भी करा लिये, और कुछ वार्तालाप करके सब साहब अपने-अपने मकानों को पधारे।

दूसरे दिन पादरी साहब ने स्वामीजी के पास पत्र लिख कर भेजा कि आज आप प्रश्नोत्तर करेंगे वा नहीं ? यदि करना हो

१. मुसलमान लोग भी लिखने के प्रबन्ध को नहीं चाहते थे, क्योंकि उनका भी यह अभिप्राय था कि यदि यह प्रतिज्ञा न रहे तो किसी मौलवी को लाकर हम भी वादानुवाद करावें, और पीछे जो जी चाहे वैसा उलटा सुलटा छपवा देवें। इस समय पोप लोग भी गड़बड़ करते थे कि हम भी शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु मौलवी साहब और पोप जी कोई भी न आया। जियाफत वा ब्रह्मभोज का काम होता तो सभी आते। यहां तो शास्त्रार्थ का काम था, कि लिखवाये पीछे पलट भी न सकते।—स० दा०

२. क्या इसीलिये लिखवाने से भय करते थे ? —स० दा०

तो किया जाय, परन्तु लिखा न जाय, और लिखना हो तो पत्र द्वारा किये जावें। स्वामीजी ने उसके उत्तर में लिख भेजा कि—प्रश्नोत्तर सबके सामने सामने किये जावें, और लिखे भी जावें। इस प्रकार हमको स्वीकार है अन्यथा नहीं। क्योंकि दूसरी प्रकार करने में बहुत हानि है, जो कि हम पहले कह चुके हैं। अब यदि आपको लिखा कर प्रश्नोत्तर करने हों, तो मुझको लिखिये, मैं जब तक आप कहें यहां रहूं और प्रश्नोत्तर करूं। और यदि आपको इस प्रकार न करना हो, तो सरदार भगतसिंह जी को लिख भेजो कि अब प्रश्नोत्तर न होंगे, क्योंकि सभा के लिये जो उन्होंने प्रबन्ध कर रक्खा है, उठवा दें। पादरी साहब ने सरदार भगतसिंह जी को इसी प्रकार कहला भेजा, तब उहोंने सब प्रबंध उठवा दिया। इसके पश्चात् स्वामीजी तीन चार दिन अजमेर में और रहे। मसूदा और नसीराबाद थोड़े दिन रह कर जयपुर पधारे।

जब स्वामीजी अजमेर से चले गये, उस के दूसरे दिन पादरी साहब ने मिशन स्कूल में कितने शहर के लोगों और मिशन स्कूल के विद्यार्थियों का इकट्ठा करके, स्वार्मीजी ने जो वाक्य लिखकर तौरेत और इंजील के भेजे थे, उनके उत्तर सुनाये कि जिससे ईसाई मत का कच्चापन किसी पर प्रकट न हो। इसके पीछे पादरी साहब को बाजार में वाज़ करते समय कितने ही आदमियों ने कहा कि साहब! आप यहां हम मूर्ख लोगों के साथ प्रतिदिन घंटों तक सिर दुखाया करते हैं, परन्तु जब आप स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से प्रश्नोत्तर करते थे, तब तो आपने यह कहा था कि हमको इतना समय नहीं कि प्रश्नोत्तर करते समय लिखाते जाएं। यदि आप स्वामीजी को अपने मत की कोई बात भी स्वीकार करा देते, तो उनके पीछे हजारों आपकी बात को स्वीकार करते। अब आपके व्यर्थ कहने से क्या होता है?

६. सत्यासत्य-विवेक-शास्त्रार्थ-बरेली

सम्पादकीय

स्वामी दयानन्द जी का एक महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ बरेली के पादरी टी० जी० स्काट के साथ भाद्रपद शुक्ला ७, ८, ९, सं० १९३६ तदनुसार २५, २६, २७, अगस्त सन् १८७९ ई० को हुआ। शास्त्रार्थ में विचारणीय विषय निम्न थे—

प्रथम दिन—आवागमन विषय।

द्वितीय दिन—क्या ईश्वर देह धारण करता है, या नहीं ?

तृतीय दिन—ईश्वर अपराध क्षमा करता है, या नहीं ?

बरेली के लाला लक्ष्मीनारायण खजान्ची शास्त्रार्थ-सभा के मध्यस्थ थे। शास्त्रार्थ लिखित हुआ, तथा तीन लेखकों ने क्रमशः स्वामीजी, पादरी साहब, तथा सभापति की ओर बैठकर सम्पूर्ण शास्त्रार्थ को अक्षरशः लेख बद्ध किया। इस प्रकार तीन प्रतियां तैयार हुईं, एक एक प्रति स्वामीजी, पादरी महाशय तथा सभापति के पास रहीं।

पं० लेखराम कृत स्वामीजी के जीवन चरित के अनुसार—"स्वामीजी तथा पादरी महाशय की दस्तखती असली तहरीर की अक्षरशः प्रतिलिपि छपाई जाती है। पाठक अपनी बुद्धि से विचार कर अन्तिम निर्णय निकाल लें।"

'सत्यासत्य-विवेक' के विभिन्न संस्करण—यह शास्त्रार्थ असली लिखित प्रति के अनुसार **'सत्यासत्य-विवेक'** के नाम से उर्दू में 'आर्य-भूषण प्रेस' शाहजहांपुर से प्रकाशित हुआ। इस प्रथम संस्करण का प्रकाशन-काल सितम्बर १८७९ ई० था। द्वितीय बार यह पुस्तक 'आर्यदर्पण प्रेस' शाहजहांपुर से छपी। चतुर्थ और पंचम वार उर्द तथा हिन्दी में लाहौर से प्रकाशित हुई।

पं० लेखराम ने इस पुस्तक को स्वलिखित महर्षि के उर्दू जीवन चरित में संगृहीत किया था। वहां से लेकर पं० जगत्कुमार शास्त्री ने स्वसम्पादित 'श्रीमद्यानन्द ग्रन्थ संग्रह' में स्थान दिया। गोविन्द-राम हासानन्द के द्वारा यह पृथक् पुस्तकाकार भी छपा था। 'सत्या-

सत्य-विवेक' का विज्ञापन ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के आश्विन सं० १९३६ के ११ वें अंक में छपा था। विज्ञापन इस प्रकार था—

सत्यासत्य-विवेक (विज्ञापन)

'इस पुस्तक में सविस्तर वृत्तान्त तीनों दिन के शास्त्रार्थ का, कि जो स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और पादरी टी० जी० स्काट साहब का राजकीय पुस्तकालय बरेली में, इस प्रकार कि प्रथम दिन अनेक जन्म के विषय में, दूसरे दिन अवतार अर्थात् ईश्वर देह धारण कर सकता है इस विषय में, और तीसरे दिन इस विषय में कि ईश्वर पाप क्षमा कर सकता है, हुआ था। बहुत उत्तम फारसी लिपि और उर्दू भाषा में मुद्रित हुआ था। इस शास्त्रार्थ में प्रत्येक विषय पर उत्तम प्रकार से खण्डन मण्डन हुआ है, कि जिसके देखने से सत्यप्रेमी जनों को सत्य और असत्य प्रगट होता है। जो विद्यार्थी मिशन स्कूलों में पढ़ते हैं और बहुत करके गुमराह होते हैं, उनको यह पुस्तक गुमराही से बचाती है। डाक महसूल सहित ।)॥ मूल्य भेज कर मगवावें।'

'दयानन्द-दिग्विजयार्क' खण्ड १ मयूख ६ में भी इस शास्त्रार्थ का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। श्री पं० लेखराम कृत उर्दू जीवन-चरित में **शास्त्रार्थ-बरेली** के विषय में निम्न उपयोगी विवरण दिया गया है—

[आरम्भिक निवेदन]

"विदित हो कि यह लिखित शास्त्रार्थ बड़े आनन्द के साथ, जैसा कि प्रायः सुसभ्य, सुयोग्य और विद्वान् पुरुषों में हुआ करता है, और जैसा कि वास्तव में होना भी चाहिये, स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और पादरी टी० जी० स्काट साहेब के मध्य राजकीय पुस्तकालय बरेली[1] में तीन दिन तक ता० २५-२६ और २७ अगस्त सन् १८७९ ई० को लाला लक्ष्मीनारायण साहेब खजांची रईस बरेली की अध्यक्षता में हुआ।"

अन्य नियमों के साथ ही इस शास्त्रार्थ के मुख्य नियम इस प्रकार थे—

१. जहां आजकल म्युनिसिपलबोर्ड बरेली का दफ्तर है, पहिले यहां पर ही यह पुस्तकालय था, जिसमें यह शास्त्रार्थ हुआ था।

"शास्त्रार्थ लिखित होगा। तीन लेखक—एक स्वामीजी की तरफ, दूसरा पादरी साहेब की तरफ, और तीसरा अध्यक्ष महोदय की तरफ बैठकर शास्त्रार्थ के प्रत्येक शब्द को सावधानी के साथ ज्यों का त्यों लिखते जायेंगे। जिस समय एक विद्वान् निश्चित समय के अन्दर अपना कथन समाप्त कर चुके, तो उसका लिखा हुआ वक्तव्य सभा में उपस्थित पुरुषों को सुना दिया जावे, और तीनों प्रतियों पर उसके हस्ताक्षर कराये जावें। और जब शास्त्रार्थ समाप्त हो, तो उस पर अध्यक्ष महोदय के हस्ताक्षर भी कराये जावें। इन तीन प्रतियों में से एक स्वामीजी के पास, दूसरी पादरी साहेब के पास, और तीसरी अध्यक्ष महोदय के पास प्रमाण स्वरूप रहे, जिससे कि बाद में भी उन में किसी प्रकार की घटा-बढ़ी न हो सके।"

इसके बाद फिर प्रार्थना के रूप में लेख है:—

"हम इस शास्त्रार्थ को अक्षरशः मूल के, कि जिस पर स्वामीजी और पादरी साहेब के हस्ताक्षर हैं, अनुसार करके और स्वामी जी के आदेशानुसार तैयार करके, इसको छापेखाने में छपवाते हैं। इसमें किसी अक्षर का भी परिवर्तन नहीं किया है। इसको शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने के लिये यहां तक सावधानता रखी गई है कि जहां जिस विद्वान् के हस्ताक्षर थे, वहां हस्ताक्षर का शब्द लिख कर उसी का नाम लिख दिया है। पाठक दोनों विद्वानों के लेखों अथवा वक्तव्यों को सत्यासत्य-विवेचक दृष्टि से देखें, और किसी प्रकार के पक्षपात को पास न आने दें, जिससे कि सत्य और असत्य का प्रकाश भली प्रकार हो जावे। कुछ सज्जनों का कथन है कि इन शास्त्रार्थों के अन्त में निर्णय भी निकाल देना चाहिए। परन्तु हमने अपनी सम्मति प्रकाशित करना उचित नहीं समझा। निर्णय करने का काम पाठकों की सत्यता-प्रेमी बुद्धि पर ही छोड़ा जाता है।"

इस भूमिका और प्रार्थना आदि की शब्द रचना से ज्ञात होता है कि यह लेख श्री लाला लक्ष्मीनारायण जी, जो कि अध्यक्ष थे, की ओर से ही है, और उन्होंने ही इस विवरण को सर्वप्रथम प्रकाशित किया था। इस पुस्तक के विषय में धर्मवीर श्री पं० लेखरामजी आर्य मुसाफिर कृत महर्षि के बृहद् उर्दू जीवन-चरित्र में पृष्ठ ७९८ पर लिखा है—

"बड़ी सावधानी के साथ प्रथमवार मास सितम्बर सन् १८७९ ई० में 'आर्य भूषण यन्त्रालय' शाहजहांपुर में मुद्रित हुआ। और दोबारा 'आर्य दर्पण प्रेस' शाहजहां पुर में, और चौथी और पांचवीं वार उर्दू व हिन्दी में लाहौर में मुद्रित हुआ।"

इस शास्त्रार्थ का मूल पाठ 'श्रीमद्दयानन्द-ग्रन्थ-संग्रह' (सम्पादक—पं० जगत्कुमार शास्त्री) के अनुसार **'सत्यासत्य विवेक—शास्त्रार्थ-बरेली'** शीर्षक से आगे दिया जाता है।

सत्यासत्य-विवेक–शास्त्रार्थ-बरेली

[ता० २५ अगस्त, सन् १८७६ ई० । विषयः—पुनर्जन्म]

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीः—

जीव और जीव के स्वाभाविक गुण, कर्म और स्वभाव अनादि हैं, और परमेश्वर के न्याय करना आदि गुण भी अनादि हैं। जो कोई मानता है कि जीव की और उसके गुण आदि की उत्पत्ति होती है, उसको उसका नाश मानना भी अवश्य होगा; और तिस के कारण आदि का भी निश्चय करना और कराना होगा। क्योंकि कारण के विना कार्य की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। जो-जो जीव के पाप और पुण्य आदि कर्म प्रवाह से अनादि चले आते हैं, उनका ठीक-ठीक फल पहुंचाना ईश्वर का काम है; और जीवों का विना स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर के सुख दुःख का भोग करना असम्भव है। जब यह बात हुई, तब बारम्बार शरीर का धारण करना भी जीव को अवश्य है। क्योंकि क्रियमाण कर्म नये-नये करता जाता है, उन का संचित और प्रारब्ध भी नया नया होता चला जाता है। जब इस सृष्टि में विद्या की आंख से मनुष्य देखे, तो सृष्टिक्रम और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से ठीक-ठीक सिद्ध होता है कि—देखो जो आज सोमवार है, वही फिर भी आता है। महीना, रात, दिन आदि भी पुनः पुनः आते है। और गेहूं का बीज बोने से फिर वही गेहूं आता है।

ह०—दयानन्द सरस्वती जी

पादरी टी० जी० स्काट साहबः—

इस आवागमन के विषय में केवल सत्य के लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। हार-जीत की इसमें कोई बात नहीं है। यह सिद्धान्त पुराना तो है, परन्तु संसार में से मिटा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि जितने जीवात्मा हैं, वे सदैव जन्म लेते रहते हैं। कभी मनुष्य की योनि में, कभी बैल की योनि में, कभी बन्दर की और कभी कीड़े मकौड़े की योनि में उत्पन्न होते हैं। परन्तु यह ऐसा सिद्धान्त है कि सुशिक्षित और उन्नत जातियां इसको छोड़ती जाती हैं। प्राचीन मिस्री लोगों ने पहिले इसे माना हुआ था, फिर छोड़

दिया। इसी प्रकार यूनानियों ने और रूमियों ने और अंग्रेजों ने भी छोड़ दिया। हमारे पुराने द्रविड़ लोग भी, जो कि हमारे गुरु थे, यही सिखलाते थे, और हम लोग सब के सब मानते थे। परन्तु रोशनी के फैलने से और विद्या प्राप्त करने से, इस पुराने और निराधार सिद्धान्त को छोड़ दिया। सो हमारा सवाल पण्डितजी से यह है कि इस सिद्धान्त को मानने के लिये कौन सी युक्तियाँ हैं? जब कोई विशेष प्रमाण दिया जायेगा, तो हम उसका खण्डन करने के लिये आक्षेप करेंगे। फिर भी दो चार प्रश्न यहां पर हैं—

ईश्वर की आत्मा के अतिरिक्त और आत्मायें भी अनादि काल से अर्थात् अजल से हैं कि नहीं?

इस जन्म लेने से कभी छुटकारा मिलेगा, या नहीं?

आपका यह कथन है कि सब दुःख जो संसार में होते हैं, दण्ड देने के लिये ही हैं। सो पुनर्जन्म केवल दण्ड के लिये है, या इसका कोई और कारण है?

यह भी एक प्रश्न है कि परमेश्वर हर समय सगुण है, या कभी निर्गुण भी होता है?

यह जन्म लेना उसी की खास कुद्रत से हर समय होता रहता है, या किसी कुद्रती कानून से होता है, जैसे कि बीज का उगना, फल का पकना, पानी का बरसना, इत्यादि।

ह०—टी० जी० स्काट साहेब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी:—

तीन पदार्थ अनादि हैं—एक ईश्वर, एक कारण और सब जीव। जीव जन्म से कभी छुटकारा न पायेंगे। पुनर्जन्म दण्ड और पुरस्कार दोनों के लिये है। परमेश्वर सगुण भी है और निर्गुण भी, और वह सदैव रहता है। कुद्रती नियम उसका यही है कि—जैसा जिसने पाप या पुण्य किया है, उसको वैसा ही अपने सत्य न्याय से फल देता है।

अब पादरी साहेब ने जो कहा था कि पुनर्जन्म का प्राचीन सिद्धान्त हमारे बीच में भी था। इससे सिद्ध हुआ कि सब देशों में पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रचलित था। और जो यह कहा कि

जो जातियां सुधरती जाती हैं, वे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को छोड़ती जाती हैं। अब इस पर एक सवाल है कि—प्राचीन सभी बातें झूठी हैं, या उनमें से कुछ सत्य भी हैं? और नये सिद्धान्त सभी सत्य हैं, अथवा उनमें कुछ मिथ्या भी हैं? यदि पादरी साहेब कहें कि प्राचीन बातें और सिद्धान्त अब मानने के योग्य नहीं हैं? तब तो तौरेत और जबूर इत्यादि ग्रन्थ और बाईबिल व इंजील की शिक्षायें आज-की अपेक्षा से बहुत पुरानी हैं, वे भी अब न माननी चाहियें। यह कोई मानने योग्य प्रमाण की बात नहीं है, कि पहिले मानते थे और अब नहीं मानते, इसलिये सच्ची या झूठी है। या पहिले नहीं मानते थे अब मानते हैं, इसीलिये झूठी या सच्ची हैं।

अब पादरी साहेब ने कहा कि कुछ प्रमाण दें, तो हम उस पर आक्षेप करें। प्रमाण के लिए मैंने पहिले ही लिख दिया है कि—इस जीव के कर्म इत्यादि अनादि हैं, और ईश्वर का न्याय करना इत्यादि भी अनादि हैं। जो कर्म का सिद्धान्त न माना जाये, तो सृष्टि में बुद्धिमान् निर्बुद्धि और दरिद्र, राजा और कंगाल की अवस्था ईश्वर किस प्रकार कर सके? क्योंकि इसमें तरफदारी आती है, और पक्षपात से उसका न्याय ही नष्ट हो जाता है। जब कर्म के फल हैं, तो परमेश्वर पूर्ण न्यायकारी बनता है, अन्यथा नहीं। और ईश्वर अन्याय कभी नहीं करता। **ह०—दयानन्द सरस्वती जी**

पादरी स्काट साहब:—

पण्डित जी के कहने से तमाम जीव अनादि हैं, अर्थात् अजल से हैं। तो इस हिसाब से हमारी और ईश्वर की अनादिता में कोई भेद नहीं, अर्थात् दो वस्तुएं अनादि काल से हैं। एक प्रकार से दो ईश्वर हुए। मेरा प्रश्न यह है कि ऐसा मानना तौरेत, जबूर और इंजील के सर्वथा विरुद्ध है। मैं पूछता हूं कि कौनसा सिद्धान्त अधिक सन्तोषजनक है? अर्थात् एक यह है कि हमारे जीवात्मा सदैव आवागमन के चक्कर में भ्रमते फिरते रहेंगे, और कभी बैल के शरीर में जायेंगे, और कभी बन्दर के, कभी अत्यन्त कीड़े मकोड़े के, और कभी किसी अच्छे शरीर में। इस अनादि काल से चल रहे चक्कर में अधिक सन्तोष है, कि तौरेत, जबूर और इंजील के सिद्धांत में—कि अन्ततोगत्वा जो लोग नेकी करते और नेक बनते हैं, वे एक

ऐसे सुखपूर्ण स्थान में पहुंचेंगे कि उन्हें फिर कभी जन्म न लेना होगा, न ही उन्हें किसी प्रकार का कष्ट होगा। विचार कीजिये कि किस ग्रन्थ की शिक्षा अधिक सन्तोषजनक है ? इसके अतिरिक्त ईश्वर निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार का कैसे हो सकता है ? अर्थात् वह विशेषणों वाला भी है और विशेषणों से रहित भी है। वह कौन सी वस्तु है कि जो विशेषणों से रहित है ? बताइये—यदि उसमें न्याय करने का गुण न हो, तो न्याय क्योंकर करे, और पुनर्जन्म के रूप में लोगों को दण्ड किस प्रकार देवे ? ऐसे ही निराधार विचारों पर आधारित होने के कारण सुशिक्षित जातियां इस सिद्धान्त को छोड़ती जाती हैं।

इसके अतिरिक्त यदि यह पुनर्जन्म दण्डस्वरूप है, तो इस में दण्ड क्या हुआ ? उदाहरण के लिए जब बन्दर यह जानता हो नहीं कि मैंने क्या अपराध किया है, या कोई पादरी साहेब, या पण्डित साहेब अत्यन्त तुच्छ कीड़े के शरीर में उत्पन्न हुआ; तो उनको दण्ड कैसा हुआ ? वे तो जानते ही नहीं कि हमने क्या-क्या अपराध किये हैं ? क्या कभी किसी को याद आया है या आता है, कि मैं अमुक काल में बन्दर था, अथवा मैं किसी समय में गीदड़ था? और जब कुल दुनियां में किसी को भी याद नहीं है, तो फिर ऐसे पुनर्जन्म में किसी के लिए क्या दण्ड की बात रह जाती है ? हम तो यह मानते हैं कि दुःख कभी-कभी दण्डस्वरूप होता है, और कभी नहीं भी।

ह०—टी. जी. स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीः—

दोनों अनादि होने से बराबर नहीं होते, जब तक कि उनके सब गुण बराबर न हों। परमेश्वर अनन्त है और जीव सान्त, परमेश्वर सर्वज्ञ है, जीव अल्पज्ञ। परमेश्वर सदा पवित्र और मुक्त तथा जीव कभी पवित्र, कभी बद्ध और कभी मुक्त। इसलिए दोनों बराबर नहीं हो सकते।

तौरेत जबूर और इंजील के विरुद्ध होने से ही कोई बात सच्ची और झूठी नहीं हो सकती। क्योंकि तौरेत आदि में भ्रम से सच को झूठ और झूठ को सच बहुत जगह लिखा है। सच्ची तो उस किताब की बात हो सकती है, कि जिस में आरम्भ से अन्त तक एक भी बात

झूठ न हो। ऐसी किताब वेदों के अतिरिक्त भूगोल में ईश्वरकृत और कोई नहीं। क्योंकि ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव से अनुकूल वेद ही पुस्तक है, दूसरी नहीं। सिवाय वेद के उपदेश के किसी भी किताब में ठीक-ठाक सब बातों का निश्चय नहीं नजर आता है। इसलिए सबसे उत्तम वेद की ही शिक्षा है, दूसरे की नहीं।

परमेश्वर अपने गुणों से सगुण है, अर्थात् सर्वज्ञ आदि गुणों से; और निर्गुण—कारण के जड़ आदि गुणों तथा जीव के अज्ञान, जन्म-मरण, भ्रम आदि गुणों से रहित होने से परमात्मा निर्गुण है। इसलिए यह निश्चय जानना चाहिये कि कोई पदार्थ भी इस रीति से सगुणता और निर्गुणता से रहित नहीं है।

जब जीव का पाप अधिक और पुण्य कम होता है, तब उसे बन्दर आदि का शरीर धारण करना पड़ता है; और जब पाप पुण्य बराबर होते हैं, तब मनुष्य का; और जब पाप कम और पुण्य अधिक होता है, तब विद्वान् इत्यादि का।

ह०—दयानन्द सरस्वतीजी

पादरी टी. जी. स्काट साहब :—

सब पुराने सिद्धान्त मिथ्या नहीं हैं, और न ही सब नये सिद्धान्त सत्य हैं। परन्तु जब सुशिक्षित जातियां भली प्रकार विचार विमर्श करके किसी सिद्धान्त को मिथ्या उद्घोषित करती है, तो यह दृढ़ प्रमाण है कि वह सिद्धान्त मिथ्या है। और एक ही वार के जन्म लेने के विषय में सोच लीजिए।

तोरेत नई नहीं है, यह भी बहुत पुरानी है। तोरेत किसी प्रकार भी वेद से नई नहीं है। उसमें पुनर्जन्म का कुछ भी उल्लेख नहीं है। तोरेत और इंजील सत्य हैं वा मिथ्या, यह आज का विषय नहीं है। इस विषय को व्यर्थ ही खण्डित करना कि ये मिथ्या नहीं, अथवा वेद के विषय में कुछ नहीं कहना है। क्योंकि यह भी आज का विषय नहीं। परन्तु इस बात पर ध्यान दीजिये कि सुशिक्षित और उन्नत जातियां तोरेत और इंजील की शिक्षाओं पर दृढ़ रहती है। इसके प्रतिकूल हिन्दू लोग ज्यों-ज्यों उन्नत और सुशिक्षित होते जाते हैं, वेद को छोडते जाते हैं। आवश्यकता हो, तो मैं सैकड़ों प्रमाण दे सकता हूं।

और यह कहना कि कर्म अनादि काल से है, इसलिए पुनर्जन्म होता है, तब तो परमेश्वर को भी जन्म लेना चाहिए। और यदि कोई कहे कि उसके सब कर्म अच्छे हैं, तो क्या कठिन है कि उसकी दया और कृपा से हम लोग भी ऐसे दृढ़ और उत्तम हो जावें कि हमें बन्दर या गीदड़ बनना न पड़े। जैसा कि हमारे पवित्र धर्म-ग्रन्थ में लिखा है—"एक बार मनुष्य के लिए मरना है, बाद इसके न्याय।"

निर्गुण और सगुण के विषय में स्वामीजी के अर्थ को मैं नहीं मानता। निर्गुण का यह अर्थ नहीं है कि कोई गुण न हो। जब उसमें गुण नहीं है, तब तो वह सगुण भी नहीं हो सकता। फिर इस समय जन्म-मरण का प्रबन्ध कौन करता है? अब फिर मैं पूछता हूं कि यदि दण्ड-भोग के लिये जन्म लेता है, तो यह चाहिये कि दण्ड भोगने वाला यह जाने कि मुझे दण्ड क्यों भोगना पड़ा है, अन्यथा दण्ड भोग की सब बात ही व्यर्थ हो जाती है। मैं फिर पूछता हूं कि किसी को याद क्यों नहीं रहता—कि तुम बन्दर या गीदड़ पिछले जन्म में थे। **ह०—टी. जी. स्काट साहब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जीः—

(पहले प्रश्न के विषय में उत्तरः)—जीव अल्पज्ञ है, इसलिये पूर्व जन्म की बात को याद नहीं रख सकता। पादरी साहब को विचार करना चाहिये कि ऐसी बात क्यों पूछते हैं? क्योंकि इसी जन्म में जन्म के पांच वर्ष तक की बातें भी क्यों नहीं याद रहतीं? और सुषुप्ति अर्थात् गहरी नींद में जब सो जाता है, तब जागृत अवस्था की बात एक भी याद नहीं रहती। और कार्य-कारण के अनुमान से अर्थात् कार्य का निश्चय कर लिया। सब विद्वान् लोग मानते हैं कि जब पाप-पुण्य का फल सुख-दुःख, नीच-ऊंच जगत् में दीखता है, तो कारण जो पूर्वजन्म का कर्म है, सो क्यों नहीं? पुरानी और नई शिक्षा वा सिद्धान्त की बात दृष्टान्त के लिए पर्याप्त नहीं है, क्योंकि वह सर्वथा सत्य नहीं। और जिनको आप सुशिक्षित कहते हैं, उन जातियों में से कोई मनुष्य अर्थात् दार्शनिक वा विचारक बन्दर से मनुष्य का होना मानता है, यह सर्वथा मिथ्या है।

ये वेद की ही बातें हैं कि—'वेदी का बनाना'। इब्राहीम को ईश्वर ने कहा कि इससे मैं प्रसन्न होता हूं, तुम यज्ञ किया करो। इत्यादि वेदों की बातें बाईबिल में मौजूद हैं। और ईसा ने साक्षी दी है कि—इसका एक बिन्दु भी झूठ नहीं है।

इसलिए और भी एक प्रमाण देता हूं कि—आज कल मोक्षमूलर (व्याख्याता) अपने ग्रन्थों में लिखते हैं कि ऋग्वेद से पहिले की कोई भी पुस्तक संसार में नहीं है। अब मैं सैंकड़ों साक्षियां दे सकता हूं कि 'बाईबिल इन-इण्डिया' के बनाने वाले इत्यादि और आजकल के सैंकड़ों विचारकों की बाणी से मैंने सुना है कि बाईबिल वा इंजील को नहीं मानते। और कर्नल अल्काट इत्यादि ने भी बाइबिल की शिक्षा को सर्वथा त्याग दिया है। और हमारे आर्य लोग—एफ० ए०, बी० ए०, एम० ए०, एल० डी० लाखों लोग बाईबिल को सर्वथा नहीं मानते और वे सभी सुशिक्षित हैं। अस्तु; पादरी साहब का यह कथन पर्याप्त नहीं है। परमेश्वर का पुनर्जन्म नहीं होता, क्योंकि वह अनन्त और सर्वव्यापक हैं। वह शरीर में नहीं आ सकता। वह तो नित्यमुक्त है, बन्धन का काम कभी नहीं करता।

ह०—स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

पादरी टी० जी० स्काट साहब:—

पण्डित जी का पक्ष, बालक के उदाहरण से कि वह किसी बात को याद नहीं रखता, जो कि बचपन में हुई हो, मिथ्या सिद्ध होता है; इसलिये कि बच्चे कुछ न कुछ तो याद रख ही लेते हैं। और फिर यह भी प्रश्न होता है कि जब हमारे आत्मा अनादि काल से हैं, तब तो हम भी बच्चे की अपेक्षा से कुछ बढ़ गये हैं। हमें कुछ न कुछ तो वृत्तान्त ज्ञात होने ही चाहियें, परन्तु ऐसा नहीं होता। इस युक्ति पर विचार कीजिए।

यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि हम अनादिकाल से चले आ रहे हैं। और जन्म ग्रहण करके यदि सब बातें भूल गए हैं, तब तो जन्म धारण करने का दण्डग्रहण करने का भी कुछ अर्थ न निकला। और नींद का जो वर्णन किया गया, सो इस उत्तर से सिद्ध होता है कि नींद की बात भी याद रहती है। कतिपय तो नींद के समय बड़े उत्तमोत्तम विचार प्रकट करते हैं। यहां पर मैं एक पुष्ट प्रश्न और

करना चाहता हूं। वह यह कि—इस शिक्षा से संसार में पाप को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। क्योंकि लोग कहते हैं कि जो चाहें सो करें, भोगेंगे तो फिर कभी किसी अन्य योनि में ही, अच्छा जन्म भी कभी होगा। यह भी कहते हैं कि यह परम्परा सदैव चलती रहेगी। क्या करें, हम मानते हैं कि संसार में जो दुःख हैं, उनका कोई न कोई कारण अवश्य है। कभी बुरों को दण्ड के लिए, और कभी अच्छों को कि उनको अनेक प्रकार की शिक्षा मिलती है।

कहानी है कि बादशाह का लड़का था। पण्डित के पास पढ़ने के लिये भेजा गया। पण्डित ने उसको सब प्रकार से सुशिक्षित करके योग्य बनाया। फिर बादशाह के पास लाया। और उससे कहा कि केवल एक ही काम बाकी है। उसने पूछा कि इसने कोई अपराध किया? कहा कि नहीं। तब कहा कि मुझे चाबुक देना। और खुद सवार होकर लड़के से कहा कि दौड़ो। और उसको खूब मारता गया, फिर बादशाह के पास ले आया। बादशाह ने कहा कि ऐसा क्यों किया? पण्डित ने कहा कि इसलिये कि दूसरों पर दया करना सीखे और दयालु व कृपालु बन जाये। सो यह सम्भावना है कि अच्छे मनुष्यों को भी कष्ट भोगना पड़े, किसी अच्छे उद्देश्य के लिए। यह कुछ आवश्यक नहीं है कि पुराने जन्म के कारण से। डारविन साहेब पुनर्जन्म को नहीं मानते। वे केवल यही कहते हैं कि संसार में विकास-क्रम से नीची योनियों के प्राणी ऊंची योनियों को प्राप्त हो गये हैं। उनका यह अभिप्राय नहीं है कि कोई प्राणी जो अब है, वह पहिले भी था। कर्नल अलकाट साहेब की जो चर्चा चली है, सो उसका जो पक्ष है, वह सुन लीजिये। तब मालूम होगा कि वे कैसे आदमी हैं?

ह०—टी० जी० स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जीः—

लड़के के उदाहरण से मेरा यह अभिप्राय है कि वह जो कुछ सुख-दुःख भोगता है, उसकी स्मृति उसे स्वयंमेव नहीं होती, कहीं किसी के कहने से होती है। और जीव का स्वाभाविक गुण एक-सा रहता है, परन्तु नैमित्तिक गुण घटते-बढ़ते रहते हैं। इसलिए जीव एक से हैं, परन्तु उसके ज्ञान की सामग्री पांच वर्ष के पश्चात् बढ़ जाती है। अब यदि पादरी साहेब को या मुझको कोई पूछे कि

दस वर्ष के पहिले किसी से एक दिन भर बातचीत क्या की? क्या वह सम्पूर्ण पदों और अक्षरों सहित याद है ? तो यही कहना पड़ेगा कि ठीक-ठीक याद नहीं है। जब सदा से जीव नहीं आते, तो फिर कहां से हुए ? जेलखाने के कैदियों को यद्यपि सब लोग ठीक-ठीक नहीं जानते, तथापि अनुमान करते हैं कि किसी अपराध के करने से जेलखाने में पड़े हैं। इससे हम कभी भी अपराध न करें। अन्यथा हमारा भी यही हाल होगा।

पादरी साहब मेरे अभिप्राय को नहीं समझे। वह स्वप्न की बात नहीं, सुषुप्ति की बात है कि जिस नींद में कुछ भी स्मरण नहीं रहता। बस नींद में कोई एक भी विचार कोई भी स्मरण नहीं रख सकता। जो पुनर्जन्म को नहीं मानते, उनकी शिक्षा से संसार में पापों की वृद्धि होती है, क्योंकि फिर आगे जन्म लेने की बात तो वे मानते ही नहीं हैं। जो मन में आवे, वही करते हैं, और मरने पर व्यर्थ ही हवालाती के समान पड़े रहते हैं। आज मरे, कियामत तक हवालात में रहे। कचहरी के द्वार बन्द हैं, और खुदा बेकार बैठा है। जो दोजख में गया, वह वहां का हो गया, जो जन्नत में गया, वह वहां का हो गया। और कर्म तो ससीम किये जाते हैं, परन्तु उसका फल असीम प्राप्त होता है, इस प्रकार ईश्वर बड़ा अन्यायी ठहरता है। और आशावादिता के विना मनुष्य सुधर नहीं सकते। केवल रंज में दुःख का कारण क्या है ? और यदि शिक्षण के लिये उसको कष्ट दिया जाता है, वह सुधार के लिये है, परन्तु उसका फल तो विद्या आदि हैं। और पादरी साहब ने कहा था कि—एक स्थान में सदैव सुख दुःख भोगेंगे, वह स्थान कौन-सा है ? **ह०—स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी**

पादरी टी० जी० स्काट साहबः—

कर्नल अल्काट साहब का एक कागज मेरे पास है कि जिसमें ईसाइयों की और पादरियों की, ईसाई दीन की व्यर्थ ही कठोर भाषा में बहुत बुराई लिखी है। वह इतनी अधिक कठोर है कि मैं किसी बाजारी व बदमाश के लिए भी न बकता। कहते हैं कि—ये कठोर और निर्दयी हैं। यह ईसाई दीन संसार में सारी बुराई और खराबी की जड़ हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार से कठोर भाषा का

प्रयोग किया गया है । जरा विचार कीजिये कि इस व्यक्ति का हृदय और उसकी बुद्धि किस प्रकार की होगी ?

यह बात सिद्ध नहीं होती कि वेद तौरेत की अपेक्षा अधिक पुराना है। इस वास्ते कि तौरेत में यज्ञ का वर्णन है, और हम दावे से कह सकते हैं कि सर्वप्रथम तौरेत में ही यज्ञ का वर्णन हुआ, और वेद वालों ने वहां से ले लिया। दोनों बातों का दोनों में ही वर्णन है। निश्चय से कोई नहीं कह सकता कि किसने किससे ले लिया। और यह कहना कि कुछ गुण स्थायी हैं और कुछ अस्थायी, इसलिए इस जन्म की बातें हमें याद नहीं रहतीं। कुछ गुण तो स्थायी हैं ही, अतः यह अवश्य ही होना चाहिए कि पिछले जन्म की कोई बात तो याद हो। यदि हमारी और पण्डितजी की बात-चीत इस वर्ष कहीं हुई हों, तो कुछ बातें तो अवश्य ही याद रहती हैं।

निद्रा का उदाहरण ठीक नहीं है। क्योंकि कभी कभी नींद में बात याद नहीं रहती, और कभी कभी याद रहती भी है। जेलखाने का उदाहरण भी पूरा ठीक नहीं है, क्योंकि इसमें दण्ड का केवल एक ही अभिप्राय प्रकट होता है। दण्ड के दो अभिप्राय हैं—एक तो दण्डित व्यक्ति का सुधार और दूसरे देखने वालों को शिक्षा। परन्तु इस पुनर्जन्म में तो केवल देखने वालों की शिक्षा की ही कुछ व्यवस्था मानी जा सकती है। यह नहीं कि उसे यह दण्ड क्यों मिला है ?

रहा यह प्रश्न कि—आत्मायें [रूहें] कहां से आईं ? शिक्षित जातियों में आजकल यह सिद्धान्त है कि जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज उत्पन्न होते हैं, और कोई भी यह नहीं कहता कि पहिले वृक्ष हुआ, अथवा पहिले बीज हुआ है; इसी प्रकार रूह से शरीर और शरीर से रूह उत्पन्न होते हैं। तथापि यह बात हमारे लिए बुद्धिगम्य नहीं है कि ऐसा किस प्रकार होता है ? परन्तु ऐसा नहीं है कि जो रूह अब मौजूद है, वह पहिले किसी अन्य शरीर में थी। वह अभी पैदा हुई है, और जब यहां से जावेगी तो उसका यथोचित न्याय होगा, कर्मानुसार। इससे परमेश्वर अन्यायी नहीं है, अपितु इससे भी परमेश्वर का न्याय सिद्ध होता है। यह कहना कि रूह सदा कहां रहती है ? हम यह नहीं कहते कि हम परोक्ष की बातें जानने वाले हैं कि सुख वा दुःख के स्थान बतावें। ईश्वर सर्वशक्तिमान् है,

वह रूह को सभी स्थानों पर सुख अथवा दुःख दे सकता है। हमारा जानना या न जानना क्या हुआ ? ह०—टी० जी० स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जीः--

जो कर्नल अल्काट साहेब के विषय में पादरी साहेब ने कहा कि वह अच्छा मनुष्य नहीं है, सो मैं ठीक नहीं मान सकता। क्योंकि जिनका जिनसे विरोध होता है, वे उनके विषय में उलटा सूधा कहा ही करते हैं। वेद तौरेत की अपेक्षा बहुत पुराना है, और जिसकी बात पूरी से अधूरी दूसरी में लिखी हो, तो दूसरी ही पुस्तक बाद की होती है। बालकपन में नैमित्तिक गुण कर्म थे, और स्वाभाविक गुण एक से हर समय रहते हैं; इस बात को पादरी साहब ठीक ठीक नहीं समझे। जो कि आग के संयोग से जल में उष्णता आती है, वह नैमित्तिक, और जो आग में उष्णता आती वा दाहकता है, वह स्वाभाविक है। जो जो जीव के स्वाभाधिक गुण हैं, वे न्यूनाधिक कभी नहीं होते।

और पादरी साहेब ने कहा कि—जेलखाने के कैदियों को देख कर देखने वालों को भय होता है कि मैं ऐसा कर्म न करूं। परन्तु जिसको दण्ड पूर्वजन्म के कर्मों का मिलता है, उसको याद ही नहीं। जैसे और लोग कार्य-कारण को जानते हैं, क्या वे न जानेंगे कि दण्ड अवश्य ही कर्मों का होता है ?

एक वैद्य को ज्वर आया और एक मूढ़ गंवार को भी। वैद्य ने अपनी विद्या के प्रभाव से ज्वर के कारण को जान लिया कि अमुक कारण है, परन्तु उस गंवार ने न जाना, फिर भी ज्वर का कष्ट तो दोनों ही अनुभव करते हैं। फिर भी गंवार इतना अवश्य ही जानता है कि कोई न कोई बदपरहेजी हुई है, और इसीलिए यह ज्वर आया है। इससे उसे दण्ड द्वारा सुधारने का फल प्राप्त होता है कि जो मैं बुरा काम करूंगा, तो बुरा फल जैसा कि उसको है, मुझे भी प्राप्त होगा।

जब जीव से शरीर और शरीर से जीव पैदा होते हैं, तो आप का बनाने वाला परमेश्वर नहीं। इससे आपका कथन ठीक नहीं रहा। और आपके कथनानुसार जो जीव प्रथम-प्रथम उत्पन्न हुए, वे किन शरीरों से हुए ? जो कहें परमेश्वर, [तो परमेश्वर] भी आदमी,

घोड़े और वृक्ष तथा पत्थर के समान हुआ, क्योंकि जिसका कार्य जैसा होता है, उसका कारण भी वैसा ही होता है। और जीवों को मध्य में हवालातियों के समान दौरासपुर्द करना बहुत दिन तक—कि जो दण्ड से भी भारी है, फिर उसको स्वर्ग मान के किन कर्मों से मिल सकता है ? कोई भी नहीं। जब आप सर्वज्ञ नहीं हैं, तो फिर ऐसा क्यों कहते हैं कि पुनर्जन्म नहीं होता। इससे आपका एक जन्म सिद्ध नहीं हुआ और पुनर्जन्म सिद्ध हो गया। ह०—दयानन्द सरस्वतीजी

[ता० २६ अगस्त १८७६। विषय:—क्या ईश्वर देह धारण करता है?]

पादरी टी० जी० स्काट साहब:—

आज का सवाल यह है कि परमेश्वर देह धारण करता है अर्थात् साकार हो सकता है या नहीं ? उचित यह है कि इस विषय में अत्यन्त सावधानी से और गम्भीरतापूर्वक विचार-विमर्श और प्रश्नोत्तर किया जावे। जब उस सर्वेश्वर के विषय में वार्तालाप हो, तो मनुष्य को चाहिये कि बहुत सोच समझ कर गम्भीरता के साथ बोले। इस विषय में अहंकार और अभिमान की कुछ भी गुञ्जाईश नहीं है। किसी को भी ऐसा घमण्ड नहीं करना चाहिये कि हम ईश्वर के विषय में सब कुछ जानते हैं। कवि का कथन है :—

अर्श से ले फर्श तक, जिसका कि यह सामान है।
हिम्द उसकी गर लिखा, चाहूं तो क्या अमकान है ॥[1]
जब पेगम्बर ने कहा हां, मैंने पहिचाना नहीं।
फिर कोई दावा करे, उसका बड़ा नादान है ॥

विचार कीजिये कि ईश्वर की अनादिता के विषय में हम क्या जानते हैं ? सो, इसी प्रकार हम सर्वशक्तिमान् के विषय में क्या जानते हैं ? वह सर्वव्यापक अर्थात् प्रत्येक स्थान पर मौजूद है, उसके विषय में हम क्या जानते हैं ? हां, इन शब्दों के कुछ-कुछ अर्थ हम जानते हैं। परन्तु यह कथन तो मूर्खों का ही है कि ईश्वर

१. आकाश से लेकर पृथ्वी-पर्यन्त यह नाना प्रकार का जड़-जंगम-स्वरूप संसार जिसका है, मैं यदि उसकी महिमा का गान करना भी चाहूं तो कैसे करूं ? उसके गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ तो अनन्त हैं। और मेरी सामर्थ्य बहुत ही अल्प है।

के विषय में हम सब कुछ जानते हैं। आज के वार्तालाप में दो प्रश्न ये हैं—कि क्या ईश्वर देह धारण कर सकता है? दूसरे यह कि—ऐसा कभी हुआ है कि नहीं? विशेष रूप से पहली बात का ही विचार इस समय है।

पहले प्रश्न का भाव यह है कि क्या यह सम्भव है कि ईश्वर अपने आपको कभी सदेह रूप में प्रकट करे? ध्यान दीजिये, यह भाव कदापि नहीं है कि ईश्वर सदेह बन जाये। प्रथम पक्ष यह है कि देह धारण करने की सम्भावना है। आत्मा और परमात्मा (इन्सानी रूप और इलाही रूप) बहुत-सी बातों में समान हैं। अपितु यह कहना चाहिये कि दोनों की एक ही जाति है। क्योंकि ईश्वर की वाणी में लिखा है कि—'खुदा ने इन्सान को अपनी सूरत पर बनाया'। यह नहीं कि शारीरिक रूप में अपने जैसा बनाया, अपितु भाव यह है कि आध्यात्मिक रूप में। अर्थात् बहुत से गुण कर्म और स्वभाव जो ईश्वर में हैं, वे ही मनुष्य में भी हैं, अर्थात् दया, न्याय तथा और भी अनेक प्रकार की धार्मिक विशेषतायें। इस कारण ईश्वर के साथ मनुष्य मेल कर सकता है। ऐसी अवस्था में हम लोग जो कि स्वयं सशरीर हैं, क्यों अहंकार करें कि ईश्वर साकार न हो। यदि उसकी इच्छा हो कि वह सदेह रूप में प्रकट हो, तो क्या बाधा है?

ह०—टी० जी० स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी :—

जो पादरी साहब ने कहा कि उसकी परीक्षा हम नहीं कर सकते। इस पर सवाल यह है कि—सर्वथा नहीं कर सकते, या कुछ-कुछ कर सकते हैं? वैसे सर्वव्यापक के विषय में कुछ जानते हैं, या नहीं? और जो कुछ जानते हैं तो कितना? जो किसी का कहना हो कि मैं ईश्वर को जानता हूं तो वह मूर्ख है, और जो यह पादरी साहब का कहना है, तो कुछ उसके जानने में वश नहीं रहा। और पादरी साहब अपने पहले कथन के विरुद्ध बोले हैं, वह यह है कि—ईश्वर देह धारण करता है। कर सकता है या नहीं, ऐसा नहीं, लेकिन देह धारण करता है।

यहां प्रश्न होता है कि—उसको क्या आवश्यकता देह धारण करने की है? दूसरे—उसकी इच्छा में कोई बन्धन है या नहीं?

तीसरे—यह निराकार है या साकार ? चौथे—वह सर्वव्यापक है या एक-देशी? जीव और ईश्वर के गुण दया आदि क्या ठीक-ठीक मिलते हैं, या नहीं ? बहुत से जीवों में भी दया देखने में आती है।

प्रश्न—वे दोनों एक हैं, तो दोनों ही खुदा हैं। इसका क्या उत्तर है? आध्यात्मिक पक्ष में जो परमेश्वर देहधारी होता है, तब वह सम्पूर्ण ही देह में आ जाता है, या टुकड़े-टुकड़े होकर आता है? यदि टुकड़े-टुकड़े होकर आता है, तो नाश वाला हुआ। और जो वह सम्पूर्ण आ जाता है. तो शरीर से छोटा हुआ। फिर तो ईश्वर ही नहीं हो सकता। जीव तथा ईश्वर में कुछ भी भेद नहीं आ सकता है। और यदि वह एकदेशी है, तो एक स्थान पर रहता है या घूमता फिरता है ? यदि कहो कि एक स्थान पर रहता है, तो उसको सब स्थानों की खबर रहना असम्भव है। और जो घूमता फिरता है, तो कहीं अटक भी जाता होगा, और धक्का और शस्त्र भी लगता होगा? जब परमेश्वर सृष्टिं करता है, तब निराकार स्वरूप से या साकार से ? जो कहो निराकार स्वरूप से तो ठीक है, और जो कहो कि देहधारी होकर, तो उसका सृष्टि रचना सर्वथा असम्भव है। क्योंकि त्रणरेणु आदि पदार्थ सृष्टि का कारण रूप, उसके वश में कभी नहीं आ सकते हैं।

ह०—स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

पादरी टी० जी० स्कॉट साहबः—

हम नहीं कहते हैं कि ईश्वर को सर्वथा जान ही नहीं सकते। लेकिन तो भी बहुत बातें हैं, जो हम सर्वथा नहीं जान सकते। सर्व-व्यापक के विषय में यह सिद्धान्त है कि वह ऐसा है, परन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि इसका पूर्ण अभिप्राय हमको मालूम है। यह तो कह सकते हैं कि ईश्वर ने देह धारण किया। परन्तु उसका अपने आप का देह में धारण करना एक रहस्य है; अपितु हमारे आत्मा का विषय भी शरीर के साथ रहस्यमय है। रहा यह प्रश्न कि—ईश्वर की इच्छा में बन्धन है, या नहीं। पण्डित जी इस बात को कुछ और स्पष्ट करने की कृपा करें। मैं कहता हूं कि परमात्मा अर्थात् खुदा की रूह और इन्सान की रूह सर्वथा एक जैसी ही नहीं हैं। एक ससीम है और दूसरी असीम। इसलिए दो खुदा नहीं हैं। इनमें एक रचने वाला है, और दूसरा रचा गया है। परन्तु ईश्वर की इच्छा हुई और उसने इन्सान को अपने जैसा ही बनाया है।

रहा यह प्रश्न कि ईश्वर सम्पूर्ण देह में आ जाता है ? हां आ जाता है, मगर तो भी बाहिर भी रहा। वह सर्वव्यापक है, तो उस देह के अन्दर क्यों नहीं है ? हम यह नहीं कहते कि केवल शरीर में ही है, और कहीं नहीं है। विचार कीजिये कि इस कमरे के अन्दर वह सर्वशक्तिमान् इस समय मौजूद है। वह अनादि परमेश्वर इस समय मौजूद है। अर्थात् ईश्वर अपने सब गुणों सहित इस कमरे में मौजूद है, इस बात से कोई भी इनकार नहीं कर सकता। तो इसमें क्या कठिनाई है ? यदि उसकी इच्छा यूं ही हुई कि अपने आप को एक शरीर में प्रकट करे। यह असम्भव नहीं है, उसकी इच्छा है, जब भी आवश्यकता हो। अपनी लाचारी से नहीं करता; अपितु हम लोगों के लिये। क्योंकि हमारी बुद्धि यदि बहकाना जानती है, तो आगे चलकर हम देख लेंगे कि कोई उचित कारण हैं अथवा नहीं कि परमेश्वर देह धारण करे। यदि कोई कहे कि देह धारण करना उसकी महिमा के विरुद्ध है, तो यह भ्रांतिपूर्ण है। यह किस बात में उसकी महिमा के प्रतिकूल है ? देह में कूछ त्रुटि है या कुछ अपवित्र है ? अथवा कोई अशुद्ध वस्तु है कि ईश्वर उससे घृणा करे ? देह को किसने बनाया है ? क्या वह अब सर्वव्यापक नहीं है ? अर्थात् क्या वह अब भी प्रत्येक देह में वर्तमान नहीं है ?

ह०—टी. जी. स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी:—

पादरी साहब ने मेरे प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिये। जब वह सर्वव्यापक है, तो एक देह में आना या एक देह से निकलना सर्वथा असम्भव है। ईश्वर ने देह धारण किया, इसकी क्या आवश्यकता है, यह मैंने पूछा था। इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। और इसका भी कुछ जवाब नहीं दिया कि ईश्वर और जीव आध्यात्मिक रूप में सर्वथा समान हैं अथवा उनमें भिन्नता है। पादरी साहब पहिले कह चुके हैं कि इन्सान की देह अपने शरीर में बनाई। इसके विरुद्ध पीछे कहा कि वे पृथक्-पृथक् हैं, एक नहीं। मुझसे पूछा कि पण्डित जी इसका स्पष्टीकरण करें। मैं पादरी साहेब के अभिप्राय का स्पष्टीकरण क्यों करूं ? यह तो वे ही स्वयं बतावें। यह मैं भी जानता हूं कि ईश्वर सर्वव्यापक है। इस कारण से वह अवतार धारण नहीं कर सकता। क्योंकि क्या पहले वह उसमें न था ? या

उसमें एक था ? अब दूसरा, तीसरा इससे उसमें हजारों घुस गये ? जब वह असीम है, तो ससीम शरीर में देह धारण करना सर्वथा झूठ। और जो पादरी साहेब ने कहा कि उसने मनुष्य की रूह अपने स्वरूप में बनाई, तो मैं पूछता हूं कि बन्दर किसके स्वरूप में बनाये ? क्या बन्दरों का खुदा कोई दूसरा है ? इस प्रकार से तो हाथी घोड़े, आदि सब के ही खुदा जुदा-जुदा हो जायेंगे।

जब सर्वव्यापक है, तो उसने देह धारण नहीं किया, अपितु उसने तो संसार का अणु-अणु धारण कर रखा है। पादरी साहब का यह कहना कि वह देह धारण करता है, सर्वथा मिथ्या प्रमाणित हो जाता है। क्या वह पहिले देह धारण नहीं करता था ? क्या सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपनी इच्छा से देह धारण करता है ? यदि हां, तो मैं पूछता हूं कि वह अपनो इच्छा से देह छोड़ भी देता होगा ? क्योंकि जो कोई पकड़ेगा, वह कभी न कभी अवश्य ही छोड़ेगा। और वह कभी अपने आपको मारने की भी शक्ति रखता है, वा नहीं ? तब तो वह आपके कथनानुसार सर्वशक्तिमान् भी न रहेगा। जैसे अविद्या आदि और अन्याय करने आदि का उसका स्वभाव ही नहीं है, सो यह ही उसके जन्म और मरण में भी प्रतिबन्धक है। क्योंकि वह अपने स्वभाव के विरुद्ध कोई कार्य चरितार्थ नहीं कर सकता। **ह०—स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी**

पादरी टी० जी० स्काट साहब:—

मेरा प्रश्न यह ही है कि—क्या पण्डित जी का यह अभिप्राय है कि अब परमेश्वर देहधारी है ? क्योंकि उनकी युक्ति से प्रतीत होता है। वह यह दावा करते हैं कि परमेश्वर अब देह में है। और अब जो ये सूरतें सब दृष्टिगोचर होती हैं, सब उसका देह ही हैं। यदि ऐसा है, तब तो मेरा दावा सिद्ध ही हो गया। अब उसमें बाकी ही क्या रहा ? देह धारण करने का क्या अर्थ है ? इस वार्तालाप में मैंने, जो देह पशु, पत्थर इत्यादि हैं, अनादि काल से हैं। परमेश्वर सर्वव्यापक तो है; परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इस प्रकार से देहधारी है। जैसे जब कोई कहे कि अमुक व्यक्ति परमेश्वर का अवतार है, तो पण्डित जी इसमें झगड़ा क्यों करते हैं ? देह धारण करने का अर्थ कौन नहीं जानता ? और यह कहना

कि इस विशेष अर्थ में ईश्वर के देहधारी होकर आने जाने का कुछ कथन नहीं है। अपितु केवल यही अर्थ है कि वह हमारे लिये शरीर में प्रकट हुआ। जब वह शरीर लुप्त हो जाता है, तब भी ईश्वर वहां वर्त्तमान रहता है। परन्तु वह ईश्वर की आत्मा उस समय भी उस शरीर में हैवानी आत्मा नहीं है। अभी रूह इस शरीर में प्रकट हुई। यह कोई आने या जाने का मामला ही नहीं है। मैंने साफ-साफ कहा है कि जो मनुष्य का आत्मा ईश्वर के आत्मा के समान है, परन्तु है सर्वथा भिन्न। बन्दर की स्थिति और है। उसकी चर्चा करने की यहां क्या आवश्यकता है? रहा यह प्रश्न कि ईश्वर ने बन्दर को किसके स्वरूप पर बनाया? सो जैसी उसकी इच्छा हुई, वैसा उसने बनाया। अर्थात् बन्दर की सूरत, और गीदड़ की सूरत और बैल की सूरत और इन्सान को अपनी सूरत में। तब इस में आक्षेप की क्या बात है?

अब रहा यह प्रश्न कि ईश्वर ने क्यों देह धारणा की? इसका उत्तर देता हूं—उसकी सम्भावना का होना तो कुछ असम्भव नहीं है। मकान के उदाहरण को स्मरण कीजिए। और यह भी कि देह धारण करने का अर्थ यह है कि अपने आप को एक देह में प्रकट करना। यदि इस घटना अथवा गति को आप समझ सकें, तो समझिये। हम डरते नहीं कि यह कहने लगें कि ईश्वर के गुण तो गति करते ही नहीं हैं। तो क्या वह जड़ पत्थर है? अथवा निर्गुण है? उसका आना जाना कुछ न हुआ, जीना मरना कुछ न हुआ। केवल मनुष्य की अल्प सामर्थ्य के कारण अवतार होना अर्थात् देह धारण करना। देह धारण करने में लाभ यह है कि मनुष्य के लिए किसी पूर्ण गुरु, पथ-प्रदर्शक और आदर्श की जरूरत है। जब गुरु पूर्ण और आदर्श भी सर्वथा दोष-रहित हो, तभी मनुष्य उन्नति करता है। अन्यथा जैसी चाहिए, वैसी उन्नति नहीं करता। क्योंकि उन्नति का साधन वा माध्यम अच्छा नहीं होता।

ह०— टी० जी० स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी:—

जो पादरी साहब ने कहा कि पण्डित जी के दावे ने मेरे दावे को साबित किया, यह बात गलत है। क्योंकि देह धारण करता है,

इसका अर्थ यह है कि पहले वह देह में नहीं था। इस कथन ने तो पादरी साहब के दावे को ही खारिज किया है, न कि साबित।

जो कि सर्वव्यापक है, वह देह धारण करता है या करे या छोड़े, यह कहना सर्वथा असम्भव है। और जब वह सर्वव्यापक है, तब देह धारण करने को कहां से आया ? क्या ऊपर या नीचे से, अथवा बाहिर या बगल से। जो कहें कि किसी तरफ से आया, तो फिर तो वह सर्वव्यापक न हुआ। और जो कहें कि सर्वव्यापक है, तो कहीं से आना साबित नहीं हो सकता। जाहिर होने में मैं पादरी साहब से पूछता हूं कि क्या पहले गुम था कि आंख से नहीं दीखा? जाहिर होने में दीख पड़ा। क्या रूह आंख से देखने का विषय है ? जो कहें नहीं, तो फिर जाहिर होने का क्या अर्थ है ? जैसे सांप बिल में से निकल कर, जाहिर होकर फिर गुम हो जावे ?

वैसे ही मैंने पूछा था कि बन्दर को किस की सूरत में बनाया? उसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। क्या बन्दर और आदमी आदि का बनाने वाला एक ही खुदा है अथवा दो जुदा-जुदा हैं ?

जब उसके देह धारण करने में पादरी साहब कुछ विशेष मामला नहीं दिखला सकते, तो बस पादरी साहब का तो मामला ही खारिज हो गया। जो पादरी साहब ने कहा कि परमेश्वर के गुण गति करते हैं, यह सर्वथा झूठी बात है। क्योंकि वह गुण है, द्रव्य नहीं। गतिशील द्रव्य होता है, गुण नहीं।

जो पादरी साहब कहें कि देह धारण करना जरूर है, तब तो उसकी जरूरत की बात भी ठीक-ठीक अवश्य ही बतलावें। और जो यह कहा कि मनुष्य की उन्नति के लिये देह धारण करता है, तब तो पहले कहे हुए सभी दोष पादरी साहब के कथन में आते हैं। और मैं पूछता हूं कि वह सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक क्या अपनी सामर्थ्य से जीवों की उन्नति नहीं करा सकता ? जो कहें कि करा सकता है, तो देह धारण करना व्यर्थ हुआ। जो कहें कि नहीं करा सकता, तो सर्वशक्तिमान् नहीं रहा। और जो मैंने दोष दिये थे कि पादरी साहब के कथनानुसार देह धारण करने पर तो परमाणु आदि को अपनी पकड़ में लाने का सामर्थ्य ही उसमें नहीं हो सकता। इतने दोष मौजूद रहे। ह०—स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

पादरी टी० जी० स्काट साहबः—

प्रत्येक बात में यह कहना कि यह झूठ है। सो शिष्टाचार के कुछ प्रतिकूल प्रतीत होता है, क्योंकि झूठ बेईमानी और फरेब है। और भी बहुत सी मिथ्या बातें हैं, जिनको कि झूठ कहना जरा शिष्टाचार के विरुद्ध प्रतीत होता है। ईश्वर तो बन्दर की देह में सर्वव्यापक के रूप में है। परन्तु कोई उसको गीदड़ बतादे, वैसे ही कोई उसको बन्दर बता दे। परन्तु हां, अद्वैतवादी ही कहेंगे, परन्तु पण्डित जी तो द्वैतवादी हैं। यह मैं पूछता हूं पण्डित जी से कि—परमेश्वर के अतिरिक्त और भी कोई पदार्थ है वा नहीं ? संसार में नहीं।

परन्तु जब ईश्वर का कोई खास अवतार हो, तो उस देह में वह सर्वव्यापक है। और परमेश्वर के सिवा और कोई जीव उस में नहीं, उसको अवतार कहते हैं। कुछ आने जाने का यह मामला नहीं है। कोई स्याही ऐसी होती है कि जब उससे लिखते हैं, तो कुछ नजर नहीं आता, परन्तु वह लिखाई मौजूद होती है या नहीं ? स्याही मौजूद है, अक्षर मौजूद हैं, उनको जरा आग के सामने दिखाओ, तो कुल लिखाई नजर आती है। पहले भी मौजूद तो थी, परन्तु नजर नहीं आती थी। इसी प्रकार परमेश्वर का नजर न आना, कुछ आने जाने का मामला नहीं है। उसने अपने आप को केवल हमारी कमजोरी के वास्ते इस शरीर में प्रकट किया है। वह कहीं गुम नहीं था, कहीं से आया नहीं। फिर इस विषय में मैं यह कथन करूंगा कि गुण का गति करना यह है कि वह कार्य का रूप धारण करे, उपयोग में आवे। जैसे कि प्रेम और दया का रखना और न्याय करना।

और यह कहना कि देह धारण करने से परमेश्वर की लाचारी मालूम होती है, भ्रान्तिपूर्ण है। पण्डित जी का सिद्धान्त यह है कि जन्म लेने से मनुष्य सुधर जाता है। तो इसमें भी परमेश्वर लाचार है, या उसकी इच्छा है ? यदि वह सर्वशक्तिमान् है, तब तो ऐसा नहीं कहना चाहिये कि लाचार है, पण्डित जी के कथनानुसार। और यदि उसकी इच्छा है, तो अपनी इच्छा से वह जानता है कि मनुष्य के विषय में कौनसा उपाय उत्तम है। परन्तु कुछ कुछ बातों के विषय में हम मानते हैं कि परमेश्वर लाचार है।

ध्यान दीजिये—यदि वह सर्वशक्तिमान् है,तो वह एक दम ही रूह को पवित्र क्यों नहीं कर देता ? क्यों मनुष्यों को अनेक प्रकार के दुःख देता है। विचार करना चाहिये कि मनुष्य कर्म करने में पूर्ण स्वतन्त्र है, और ख़ुदा उसके विषय में बलात्कार नहीं करता है। ख़ुदा चाहता तो है कि वह सुधर जावे, परन्तु उसका सुधारना केवल ख़ुदा के वश में नहीं है। ख़ुदा ने इन्सान को ऐसा ही बनाया है। और कर्म करने में स्वतन्त्र होना यह मनुष्य के महत्व का सूचक है, तो इससे वह अपनी बहुत बड़ी हानि भी कर सकता है। ईश्वर ने उचित यही समझा कि मनुष्य को सुधारने के लिये पूर्ण आदर्श नमूने के तौर पर उसको दिखावे। ख़ुदा के गुम होने से नहीं, अपितु इन्सान के गुम होने से। और बातों को छोड़कर आगे चल कर अधिक निवेदन करूंगा। ह०—टी० जी० स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी:—

जो पादरी साहब ने शिष्टाचार के विषय में कहा, सो ठीक है। परन्तु सत्य के कहने में अशिष्टता कभी नहीं हो सकती। अशिष्टता तो झूठ के कहने में होती है। और जो पादरी साहब ने मुझे द्वैतवादी बताया, सो ठीक नहीं है। मैं अद्वैतवादी हूं, क्योंकि मैं ईश्वर को एक मानता हूं। जो पादरी साहब ने कहा कि बन्दर और गीदड़ आदि के शरीर में ईश्वर के सर्वव्यापक होने से बन्दर और गीदड़ नहीं कहा जा सकता, तो आदमी के शरीर में व्यापक होने से आदमी भी उसे नहीं कहना चाहिये। और कहा कि—शरीर में ईश्वर ने अवतार लिया, उसमें दूसरा जीव नहीं था। तो मैं पूछता हूं कि—उसमें पहले ईश्वर था कि नहीं ? जो कहें कि था, तो उसका आना जाना असम्भव है। और जो कहें कि नहीं था, तो उसका सर्वव्यापक होना नहीं हो सकता।

जो मैंने जाहिर होने के विषय में पूछा था, उसका ठीक-ठीक उत्तर पादरी साहब ने नहीं दिया, गोलाकार कर गये। जो ईश्वर दृश्य नहीं, तो उसको जाहिर होना कहना व्यर्थ है। और जो कहें कि दृश्य है, तो सर्वव्यापक नहीं। और जो पादरी साहेब ने कहा कि—हमारी कमजोरी के कारण वह अवतार लेता है। तो हमारी कमजोरी के कारण ही क्या वह सर्वव्यापक हमारा काम नहीं कर

सकता ? जो कहें कि नहीं कर सकता, तो इसमें क्या युक्ति है ? और फिर वह सर्वशक्तिमान् भी नहीं रहता। और जो कहें कि कर सकता है, तो जन्म धारण करना ही व्यर्थ हो जाता है।

और जो कहा कि—प्रीति का रखना। सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि यहां प्रीति गुण और प्रीति करनेवाला चेतन द्रव्य है। इसलिए पादरी साहब का कहना ठीक नहीं है। परमेश्वर अपने स्वाभाविक गुण के अनुकूल काम करने में लाचार कभी नहीं है, परन्तु अवतार के धारण करने में तो लाचार ही मानना होगा। जैसे कि पादरी साहब ने कहा कि—वह आदमी को नहीं सुधार सकता। अब मैं पूछता हूं कि सर्वशक्तिमान् का क्या अर्थ है ? पादरी साहब क्या चाहते हैं ? जैसे पादरी साहब ने कहा कि—कुछ बातों में लाचार है, वैसे ही अवतार लेने में भी लाचार है, क्योंकि सर्वव्यापक का आना जाना प्रकट करना सर्वथा असम्भव है। जब वह दुःख नाश नहीं करता, तो पादरी साहब के कहने से ही पादरी साहब की बात कट जाती है, जो कि कहते हैं कि अवतार लेकर मनुष्यों का दुःख काटता है। और जो कहा कि—दुःख क्यों देता है? इसका उत्तर यह है कि वह न्यायाधीश है। जीवों के जैसे पाप-पुण्य होते हैं, वैसा ही उनका फल देना अवश्य है, क्योंकि वह सच्चा न्यायकारी है। **ह०—स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी**

पादरी टी० जी० स्काट साहबः—

द्वैतवादी वे होते हैं, जो कि दो पदार्थ मानते हैं—एक तो ईश्वर और दूसरे ईश्वर से भिन्न यह कार्यजगत्। अद्वैतवादी वे होते हैं, जो कि एक ही पदार्थ ईश्वर को मानते हैं, और कुछ नहीं। सो ज्ञात नहीं कि पण्डित जी एक ही पदार्थ मानते हैं, वा दो। ईश्वर अनदेखा तो है, परन्तु जब अपने आपको प्रकट करना चाहता है, तो प्रकट कर देता है। शारीरिक अर्थात् शरीर में तो आत्मा से हम आपके शरीर को देखते हैं, आत्मा को नहीं। परन्तु उस प्रकार से होने से ईश्वर का हाल बहुत अधिक जानते हैं। क्योंकि एक नमूना पवित्र और पूर्ण हमारी दृष्टि में होता है। इसलिए ईश्वर का अवतार होता है। ईश्वर ने देख लिया कि मनुष्य के लिए उचित यही है, इसलिए ऐसा ही हुआ और होता है।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् तो है, परन्तु तब भी इसका अर्थ यह नहीं है, कि कोई बात उसके वश से बाहर नहीं। वह अधर्माचरण नहीं कर सकता, झूठ नहीं बोल सकता। दो और दो को वह पांच नहीं मान सकता। इससे यह नहीं हो सकता कि एक वस्तु हो भी और न भी हो। अर्थात् एक अर्थ से उसकी शक्ति की भी सीमा है।

मैंने यह कहा कि यदि मनुष्य को रोग नहीं है, तो ईश्वर उसे सुधार नहीं सकता। सुधार का सर्वोत्तम उपाय यही है कि देह धारण करे और एक पूर्ण आदर्श मनुष्य के सामने प्रस्तुत करे। मनुष्य तो आदर्श को चाहता ही है। संसार में सर्वश्रेष्ठ और पवित्र गुरु कोई नहीं है, कि जिसने कभी भी पापाचरण न किया हो। कोई गुरु ऐसा नहीं है, जो सब बातों में पूर्ण हो। केवल ईश्वर ही देह धारण करके मनुष्य के सामने ऐसा नमूना पेश कर सकता है, जिससे ठीक-ठीक धर्म का मार्ग प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त हो सके, और वह हर बात में नेकी और पुण्य को जान सके। यह बहुत रहस्य की बात है।

कौन नहीं जानता कि मनुष्य अनुकरणप्रिय है। नमूने को देखकर उसके अनुसार कार्य करता है। पाठशालाओं और सेनाओं में देखो, और घर में भी देखो। जब नमूना अच्छा है, गुरु पूर्ण है, तब उन्नति भी बहुत अच्छी होती है। क्या यह बात उत्तम और रहस्यमयी नहीं है कि ईश्वर देह धारण करके इन्सान के लिये एक पूर्ण और पर्याप्त नमूना दिखावे कि जिससे मनुष्य अपनी मोक्ष-प्राप्ति में समर्थ हो सके?

ईश्वर की इच्छा यूं है और यही मेरा भी अभिप्राय है कि खुला करके कह देना कोई अच्छी बात नहीं है। उसमें सावधानता होनी ही चाहिये। यदि ईश्वर ने अपनी इच्छा से ऐसा किया, क्योंकि उसको यही उत्तम प्रतीत हुआ, तो फिर हम इसके विरुद्ध क्यों बोलें?

अब शब्द-प्रमाण को लीजिये। इंजील में लिखा है—'आरम्भ में शब्द था। और शब्द खुदा के साथ था। और शब्द खुदा था। और शब्द साकार हुआ।" अर्थात् वही खुदा शरीर धारण करके प्रकट हुआ—यह लिखा है। और जिस किताब में यह लिखा है,

ऐसी उत्तम किताब है । और वह अपना प्रमाण कि वह ईश्वर की ओर से है। और जो कुछ कि उसमें लिखा है, वह बुद्धि-पूर्वक, तर्क-संगत और प्रमाण-युक्त है। और यह कहा कि बहुत से लोग इसको झूठ समझ कर छोड़ देते हैं, जैसा कि वेद को। क्योंकि वह सर्वथा मिथ्या है, और उसके समर्थन में कोई भी युक्ति वा प्रमाण नहीं है। **ह०—पादरी टी० जी० स्काट साहब**

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी:—

अद्वैत विशेषण परमेश्वर का है, किसी दूसरे का नहीं। इसके कहने से यह सिद्ध हुआ कि परमेश्वर एक है। जीव अनेक हैं और जगत् का कारण अनेक प्रकार का है। और जो पादरी साहब कहें कि—ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा और कोई न था। तो फिर जीव और यह जगत् कहां से आया ? जो कहें कि ईश्वर से, तो जीव ईश्वर हुआ। जो कहें कि कारण से, तो पादरी साहब को भी कारण मानना पड़ेगा। और यदि जीव की उत्पत्ति मानी जाये, तब तो उसका नाश भी अवश्य ही मानना होगा। यह बात कई बार चली, परन्तु अभी तक ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया गया कि उसको देह धारण करने की आवश्यकता ही क्या है ? और इसके विना ही वह अपना काम क्यों नहीं कर सकता ? इसका कुछ जवाब नहीं हुआ।

जब उसकी शक्ति की सोमा है, तो फिर ईश्वर की भी सीमा क्यों नहीं है ? जो कहें ईश्वर की भी सीमा है, तो वह सर्वव्यापक नहीं। और यह बात पादरी साहब के पहले कथन के भी विरुद्ध होगी। जब परमेश्वर की सब बातों को नहीं जानते, तो फिर पादरी साहब नें ऐसा क्यों कहा था कि ईश्वर अवतार लेता है ? और वे अब इस बात में जिद क्यों करते हैं ? और जब अवतार लेने से पहिले उसे कोई जान ही नहीं सकता, तो उसी ने अवतार लिया यह कहना भी व्यर्थ ही है। क्योंकि वही पुरुष या पादरी साहब आज भी हैं, जो कि कल के शास्त्रार्थ में थे। जब कि अवतार होने से पहिले कभी देखा या जाना ही नहीं, तो फिर उसी ने अवतार लिया है, यह कहना भी तो अनुचित और अयुक्त ही है।

क्या पादरी साहब ने कभी इस बात पर विचार नहीं किया कि पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, मनुष्य शरीर आदि भी तो ईश्वरीय शक्ति

के ही नमूने हैं ? और एक साढ़े तीन हाथ के शरीर में आकर खा पी बढ़ घट कर मर जाना भी क्या कोई बड़ा नमूना है ?

और जो इञ्जील के लेख की बात कही कि—वह शब्द अवतार हुआ। यह कथन सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि शब्द गुण होता है और वह द्रव्य कभी भी नहीं हो सकता। ऐसी मिथ्या बात जिस इञ्जील में लिखी है, वह सत्य कभी नहीं हो सकती, और न ही कभी उत्तम हो सकती है। पादरी साहब की इञ्जील में योहन्ना के स्वप्न के प्रकाशित वाक्य की कथा सर्वथा असम्भव है, कि जो पोथी के एक बन्धने के खोलने पर उसमें से एक सवार घोड़े सहित निकला। क्या ऐसा कभी हो सकता है ? ऐसी-ऐसी कई झूठ बातें हैं। क्या पादरी साहब ने ये कभी भी नहीं देखी होंगी ? फिर भी ऐसी किताब के सत्य होने का दावा करते हैं। सो जिद करने के सिवा और कुछ नहीं है।

इसलिये पादरी साहब और सब सज्जन पुरुषों को चाहिये कि—अब सर्वथा सत्य, ईश्वरकृत वेदों की शरण लेकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि अवश्य करें। ह०—**स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी**

पादरी टी० जी० स्काट साहब :—

योहन्ना के विषय में 'मकाशफात की पुस्तक' में लिखा है। उसके विषय में यदि पण्डितजी की बुद्धि ऐसी ही है, तो मैं क्या उत्तर दे सकता हूं ? ईश्वर ने अपनी सामर्थ्य से इस सम्पूर्ण सृष्टि को अभाव से भाव रूप में रचा है। उचित यही है कि वह जब भी चाहे इसका नाश कर दे। जब तक यह सृष्टि स्थिर है, तब तक ईश्वर इसमें सर्वव्यापक नहीं है, वह तो इससे पृथक् है। और मैंने बार-बार यह कहा कि उसने जो अवतार लिया, इसका कारण था। सो आप फिर से पहले लेख को देख लीजिये।

ईश्वर की शक्ति की सीमा यही है कि वह अपने विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। हम दावा करते हैं कि हम सबके शरीर में भी उसका प्रकाश होता है। और सब कामों के लिये उसने एक पूर्ण नमूना भी हमें दिया है। मनुष्य के लिये उसकी महिमा चाँद, सूर्य, सितारे से अधिक है।

शब्द का भाव यह है कि वह ईश्वर को प्रकाशित करने वाला हो। जैसे कि शब्द ही मनुष्य के अर्थ को भी प्रकट करता है। उसी प्रकार मसीह जैसे अवतार ईश्वर की महिमा और अर्थ को प्रकट करते हैं।

अब देखिये कि लोग बाइबिल के विषय में कितने पुरुषार्थी और सावधान हैं, और इस पुस्तक को कैसी दृढ़ता के साथ पकड़े हुए हैं। पच्चीस सोसाइटियाँ हैं, जो कि इसकी छपाई में संलग्न हैं। दो सौ भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं। उदाहरण के रूप में दो सोसाइटियों के कार्य को लें। एक वर्ष में इङ्गलिस्तान में एक ने बाईस लाख, छियानवे हजार, एक सौ तीस प्रतियां छपवाई। और बतलाइये ! अमरीका में एक सोसाइटी में सत्तर बड़ी-बड़ी मशीनें छापने के लिये हैं, चार सौ कार्यकर्त्ता हैं। उसमें बीस हजार पाँच सौ प्रतियाँ एक ही दिन में तैयार की जाती हैं। कौन कह सकता है कि इस किताब को नहीं मानते ? सो मैंने सिद्ध कर दिया कि ईश्वर की देह धारण करने की पूर्ण सम्भावना है। ऐसा होना बुद्धि से परे की बात नहीं; अपितु यह युक्तिसंगत और उचित है। उसका बहुत आवश्यक कारण भी मैंने बता दिया। और इस पुस्तक का वचन सत्य प्रमाणित होता है। **ह०—टी. जी. स्काट साहब**

[ता० २७ अगस्त, १८७६। विषयः-ईश्वर पाप को क्षमा भी करता है।]

पादरी टी० जी० स्काट साहब:—

मेरा यह दावा नहीं है कि ईश्वर दण्ड नहीं देता, दण्ड भी वह अवश्य ही देता है। परन्तु मेरा निवेदन यह है कि वह समय-समय पर, जब भी और जैसा भी उसको उचित प्रतीत होता है, मनुष्य के कल्याण के लिये पाप को क्षमा कर सकता है। जब कोई ईश्वर है, वह सर्वगुण-सम्पन्न है, और चेतन भी है, और भी उसमें अनेक प्रकार के गुण, कर्म और स्वभाव विद्यमान हैं; तो यह भी अवश्य ही समझना चाहिये कि वह हमको देखता है, हमारे लिए चिन्तन करता है, हमारा कल्याण चाहता है, और हमको सुधारना चाहता है। सो यह दावा अनुचित कोई नहीं है।

बहुत-सी बातों से हमारी ईश्वर से समानता है, अर्थात् हम

धर्म की बातें जैसे कि न्याय और अन्याय इत्यादि जानते हैं। ईश्वर में अनेक प्रकार की विशेषतायें हैं, जैसा कि न्याय, प्रेम, दया इत्यादि, सो ये मनुष्य में भी पाई जाती हैं। जब हम इस बात पर विचार करें कि बहुत-सी बातों में हम और ईश्वर एक ही हैं, तब हम ईश्वर की सत्ता को कुछ-कुछ जान सकते हैं। हमें यह भी समझना चाहिये कि ईश्वर के साथ हमारा सम्बन्ध ऐसा है, जैसा कि हम आपस में रखते हैं। अर्थात् ईश्वर हमारा शासक है, वह हमारा शासन करता है, वह हमारा पिता है, उसने हमको उत्पन्न किया है, वही हमारा पालन और संरक्षण करता है।

जब हम इन बातों पर विचार करते हैं, तब हम ईश्वर के विषय में अधिकाधिक बोध प्राप्त करते हैं। और वेदों में तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में भी पिता तथा शासक आदि के रूप में ईश्वर का उल्लेख किया गया है। अब विचारना चाहिये कि—जब सभी धर्म-ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख है, तो इसमें कुछ न कुछ बात हमारे समझने-समझाने की भी है। हमें यह समझना चाहिये कि जिस प्रकार उसके साथ हमारा शासक वा पिता के रूप में सम्बन्ध है, उसी प्रकार वह पिता और शासक के कर्तव्य कर्मों का पालन भी अवश्य ही करता है। अब विचारिपे कि पिता और शासक का काम क्या-क्या होता है? इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि ये दण्ड देने वाले भी होते ही हैं। दण्ड देने का भी एक उत्तम उद्देश्य होता है, और वह यह कि दण्ड देकर अपराधी सन्तान वा प्रजा को सुधारा जाये, और इस प्रकार दूसरों को भी शिक्षा मिले। हम और आप यह भी कहते ही हैं कि बदले की भावना से दण्ड न दिया जावे। दण्ड उतना ही दिया जावे, जितना कि आवश्यक हो, और शिक्षादायक हो। फिर भी यदि पिता वा शासक चाहें तो क्षमा कर दें, और इसीलिये क्षमा होती है।

ह०—पादरी टी० जी० स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जीः—

पादरी साहब का पक्ष यह था कि ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है। क्षमा कर सकता है, ऐसा पक्ष नहीं। फिर पादरी साहब ने दूसरी प्रकार से क्यों कहा? और यह कहा कि दण्ड भी अवश्य देता है। यह तो परस्पर विरोधी कथन है। क्या आधा दण्ड देता

है, और आधा क्षमा कर देता है, या कुछ कम-अधिक करता है ? जैसे ईश्वर सब बातें जानता है, क्या जीव लोग भी वैसे ही जानते हैं, अथवा कम-अधिक जानते हैं ? जैसे हमारे बीच में न्यायाधीश न्यायकारी होता है और अन्यायकारी भी होता है, क्या ईश्वर भी वैसा ही है, अथवा ईश्वर केवल न्यायकारी है ? जो न्यायकारी है, तो फिर क्षमा करना कहां रहा ? क्योंकि न्याय उसका नाम है—जिसने जितना जैसा काम किया, उसको उतना वैसा ही ही फल देना।

जो ईश्वर को थोड़ा बहुत कुछ न कुछ जानते हैं, तो मैं पूछता हूं कि—ईश्वर की सब बातों में ऐसी ही रीति है, या कुछ कम-अधिक ? यह मैं भी मानता हूं कि ईश्वर के साथ हमारा राजा और पिता का सा सम्बन्ध है। परन्तु यह सम्बन्ध क्या अन्याय करने के लिये है ? ऐसा कभी नहीं हो सकता। वेद आदि पुस्तकों में क्षमा करना कहीं नहीं लिखा है। ईश्वर के न्याय करने का क्या अर्थ है ? न्यायाधीश और सभा आदि के दण्ड और पुरस्कार आदि सुधार आदि के लिए होते हैं, अथवा इनका कुछ और अर्थ है ? और जो क्षमा करता है, तो किस-किस काम पर क्षमा करता है, और किस-किस पर नहीं ? जब क्षमा करता है, तब तो ईश्वर पाप का बढ़ाने वाला होता है। क्योकि वह जीवों को पाप करने में उत्साहित करता है।

जब ईश्वर सर्वज्ञ है, तो उसके न्याय आदि गुण और कम भी भूल और भ्रांति आदि सब दोषों से रहित हैं। इसलिए जब ईश्वर अपने स्वभाव के विरुद्ध कोई कार्य कभी नहीं कर सकता, तो फिर न्याय के प्रतिकूल क्षमा वह कैसे कर सकता है? और ईश्वर जो दयालु है, तो दया का भी वही अर्थ है, जो कि न्याय का है। क्षमा करना दया नहीं है। जैसे कि एक डाकू पर कोई दया करे अर्थात् क्षमा करे, तो क्या वह दयालु गिना जा सकता है ? कभी नहीं। क्योंकि हजारों जीवों को उसने दुःख दिया है। जब डाकू क्षमा कर दिया जावेगा, तब तो वह बड़े साहस के साथ और भी खूब डाके मारेगा। इसलिपे दया का मतलब भी और ही है, जो पादरी साहब जानते हैं वह नहीं।

ह०—स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

पादरी टी० जी० स्काट साहबः—

पण्डित जी जल्दी न करें। मेरा मतलब बेईमानी पर कमर बांधने का नहीं है। जब ईश्वर क्षमा करता है तो उसमें 'सकता या नहीं सकता' का उल्लेख आरम्भ में इसलिये किया गया है कि इस प्रकार की सम्भावना प्रतीत होती है। निस्सन्देह आज का विषय तो यही है कि—'वह क्षमा करता है'। हम यह नहीं कह सकते कि वह कहां तक दण्ड देता है, और कहां तक क्षमा करता है। यह उसका काम है, हमारा नहीं। परन्तु जब वह सर्वज्ञ है, और हम लोगों के समान भूल भी कभी नहीं करता। हम लोग तो अपने कामों में भूल किया ही करते हैं। ईश्वर अपनी अच्छी बातों में, और उसकी सभी बातें अच्छी हैं, भूल कभी नहीं करता। ईश्वर तो सब कुछ जानता है; हम वास्तव में कुछ भी नहीं जानते। उसके क्षमा करने में भी अवश्य ही कोई भेद है, क्योंकि क्षमा करना सदा ही एक सूक्ष्म विवेक का कार्य होता है। ईसाई लोग दृढ़तापूर्वक कहा करते हैं कि वह बिना किसी सिफारिश के और बिना किसी न्याय के क्षमा किया करता है।

परन्तु जब वह दयालु है और न्यायकारी भी है, तो वह सर्वथा एक ही बात है, अर्थात् दया और न्याय एक ही बात है। परन्तु जरा न्यायकारी बन कर सोचिये। दया में कुछ न कुछ मतलब ऐसा भी जरूर होगा जो कि न्याय में नहीं है। वेद में यह जरूर लिखा है कि—'ईश्वर पापों को क्षमा करता है'।

अब मैं यहां पर एक पुस्तक म्यूर साहब की कि जिसमें लिखा है—"अदिति पाप को क्षमा करती है" का प्रमाण देता हूं। पण्डित जी कहेंगे कि यह अर्थ गलत है। अब अंग्रेजी जानने वालों का यह काम है कि वे म्यूर साहब की पुस्तक देखकर न्याय करें। मैं यह पूछना चाहता हूं कि—क्या क्षमा शब्द का विचार वेद वालों को कभी नहीं सूझा? क्या वे क्षमा का अर्थ नहीं जानते थे? और क्या क्षमा करना भूल है?

मैं यह सिद्ध करूंगा कि समय-समय पर क्षमा करना बहुत ही श्रेष्ठ कार्य है। यदि इसे संसार में से हटा दिया जाये, तो संसार की अवस्था बहुत ही बिगड़ जायेगी। और यह तो अनुमान से प्रत्येक

व्यक्ति जान सकता है कि क्षमा से संसार में बहुत अच्छे-अच्छे परिणाम होते हैं। कौन जानता है कि माता-पिता के बीच में और बेटा-बेटी के बीच में क्या वास्ता है ? और परस्पर एक का दूसरे से तथा मित्र का मित्र से क्या सम्बन्ध है ? यदि इन सबके बीच में क्षमा करने का भाव कभी भी सर्वथा न आवे, तो ये सम्बन्ध जरा भी न चलें।

और यह कहना कि—क्षमा करने से पाप बढ़ जाता है, तो यह ठीक है, यदि क्षमा सदा ही क्षमा हो, और वह कभी किसी भी रूप में दण्ड न हो। और यह भी ठीक है कि कुछ अवस्थायें ऐसी भी होती हैं कि जिनमें किसी को कभी भी क्षमा नहीं करना चाहिये, जैसा कि डाकुओं के विषय में। संसार में सभी बातें इस प्रकार की नहीं हैं कि हम क्षमा को संसार से सदा के लिये सर्वथा दूर कर दें। जो अनादि और न्यायकारी है, वह भी जानता है कि कब और किस पर क्षमा और दया आदि का व्यवहार किस प्रकार करना चाहिये। आगे चलकर मैं यह भी बताऊंगा कि क्षमा करने से पापवासना का अन्त हो जाता है। और साथ ही यह भी कि दण्ड देने से पाप की प्रवृत्ति बढ जाती है, और इस प्रकार मनुष्य और भी अधिक निडर तथा बड़ा शैतान बन जाता है। **ह०—पादरी टी० जी० स्काट साहब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी:—

जो शास्त्रार्थ का विषय है, और जिसको सिद्ध करने की प्रतिज्ञा प्रथम पादरी साहब ने की थी, उससे दूसरा कथन करना न्याय-शास्त्र के अनुसार पराजय का सूचक है। इस प्रकार की पराजय को दार्शनिक भाषा में 'प्रतिज्ञान्तर' कहा जाता है। पादरी साहब ने कहा कि—असल विषय वही है कि ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ऐसे अवसर पर पादरी साहब को अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए विशेष बल देना चाहिये था। जब पूर्ण निश्चय से नहीं जानते, तो फिर उसका प्रतिपादन या समर्थन कैसा ?

मैं पूछता हूं कि जितने अंश में क्षमा करना पादरी साहब मानते हैं, उसको भी ठीक-ठीक जानते हैं, या नहीं ? क्या आपके मत में ईश्वर डाकू आदि को क्षमा नहीं करता ? आप डाकू आदि

को क्षमा करने का उपदेश नहीं करते ? और यदि ईश्वर किसी के वसीले से क्षमा करता है, तब तो वह पराधीन ठहरता है। और भी बतायें कि—ईश्वर किसके वसीले से क्षमा करता है ? वह वसीला आपका है, या किसी दूसरे का ? यदि कहो कि अपने आपका वसीला है, तो झूठ है। और यदि कहो कि किसी दूसरे का है, तो फिर ईश्वर स्वतन्त्र नहीं रहा।

और जो पादरी साहब ने कहा कि—अदिति माता क्षमा करती है, यह वेद में लिखा है। तो मैं पूछता हूं कि अदिति किसका नाम है ? और क्षमा करना तो चारों वेदों में कहीं भी नहीं लिखा। जब क्षमा करना है ही व्यर्थ, तो फिर ऐसी मिथ्या बातों का उपदेश वेदों में क्यों कर हो सकता है ? यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अंग्रेजी जानने वाले वेदों के सिद्धान्तों का निर्णय करें। यह बात तो ऐसी ही है, जैसे कि कोई संस्कृत पढ़कर अंग्रेजी के सिद्धान्तों का निर्णय करे।

और जो माता-पिता क्षमा करते हैं, ऐसा पादरी साहब का कथन है। सो वे भी पूर्णतया क्षमा करते हैं, या कुछ-कुछ ? जो कहें कि कुछ-कुछ, तब भी ठीक नहीं है। क्योंकि पाप करने से क्या माता-पिता अपने अन्तरात्मा में अपने सन्तान के प्रति प्रसन्न होते हैं ? यदि हां, तो फिर वे बालकों की ताड़ना क्यों करते हैं ? यही तो दण्ड है। जब बालक कुछ समर्थ हो जाते हैं, और पांच वर्ष से बड़े हो जाते हैं, तब माता-पिता बालकों के साधारण पाप वा अपराध भी क्षमा नहीं किया करते। और जो क्षमा करते हैं, तो कभी-कभी माता-पिता और संतान में वैर विरोध क्यों होता है ? इससे पादरी साहब का दृष्टान्त गलत ठहरता है।

हां, यदि सब माता-पिता क्षमा करते, तब तो पादरी साहब का दृष्टान्त भी ठीक होता और कथन भी। आपके मत के अनुसार—शैतान ने बहुत अपराध किये हैं। परन्तु ईश्वर ने उसको आज तक कोई दण्ड दिया कि नहीं, और भविष्य में भी उसको कोई दण्ड देगा या नहीं ? जब शैतान को बनाया, तब तो वह पवित्र था। फिर जब उसने पाप किया ईश्वर ने उसे क्षमा क्यों नहीं किया ? और आगे भी करेगा, या नहीं ?

ह०—स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

पादरी टी० जी० स्काट साहब:—

हमारे सुयोग्य विद्वान् और प्रिय मित्र स्वामी दयानन्दजी घबरायें नहीं। मैं विषय से बचकर न चलूंगा। परन्तु यह मुझे अधिकार है कि मैं जिस प्रकार भी उचित समझूं, उसी प्रकार अपनी युक्ति का आधार स्थिर करूं। पहिले मैं बुद्धि से यह सिद्ध कर रहा हूं कि क्षमा की सम्भावना है। फिर आगे चलकर देख लेना, मैं शास्त्रीय प्रमाणों से भी यह सिद्ध करूंगा कि—ईश्वर पाप क्षमा करता है। अर्थात् आज का विषय कि ईश्वर पाप क्षमा भी करता है, वह बुद्धिपूर्वक है कि नहीं ? और फिर इसका विशेष कथन न करूंगा।

मेरी युक्ति तीन प्रकार की हैं—बुद्धिपूर्वक है, शास्त्र-सिद्ध है और अनुभव से भी पुष्ट है। वह डाकू का उदाहरण इस प्रकार से है कि अनुशासन को स्थिर रखने के लिये डाकू को क्षमा करना अच्छा नहीं है। परन्तु कौन नहीं जानता कि कभी-कभी डाकुओं को क्षमा करने के भी बड़े उत्तम-उत्तम परिणाम निकलते हैं। एक उदाहरण है:—

'योहन्ना रसूल ने एक आदमी को ईसाईधर्म में दीक्षित किया—वह डाकू था। बाद में वह धर्म से बहिष्कृत किया गया और जंगल में भाग गया, तथा बड़े-बड़े डाकुओं का काम करने लगा। योहन्ना उसकी खोज करने जंगल में गया। पहले तो डाकू ने उसे मार डालना चाहा, परन्तु योहन्ना बूढ़ा था। वह उससे न डरा, और पास जाकर बोला कि मैं तो बूढ़ा आदमी हूं, मुझे क्यों मारते हो ? डाकू का हृदय परिवर्तन हो गया। उसने डाकुओं का साथ छोड़ दिया, और योहन्ना के साथ चला आया। फिर वही डाकू बहुत उत्साही प्रचारक और साधु पुरुष बन गया। उसने फिर कभी कोई अपराध नहीं किया और अपना जीवन बहुत पवित्रता से व्यतीत किया।

डाकुओं आदि के विषय में जबकि मनुष्य भी क्षमा-पूर्ण व्यवहार करते ही हैं, तब यह भी सम्भावना है कि ईश्वर भी क्षमा कर देता है। और यह पूर्णतया सम्भव है। ईश्वर तो मनोगत बातों को भी जानने वाला है। ईसाइयों का सिद्धान्त यह है कि यह वसीला, जिससे क्षमा प्राप्त होती है, निष्कलंक अवतार ईसामसीह का इस संसार में पैदा होना है।

मैं पण्डित जी से पूछता हूं कि—अदिति का क्या अर्थ है ?म्यूर साहब की पुस्तक का जो जिकर मैंने किया है, सो स्वामी जी जल्दी में किसी बात को उलटी न समझें। मैं कोई मूर्ख नहीं हूं। म्यूर साहब की पुस्तक अंग्रेजी में है, परन्तु उसमें साथ ही संस्कृत श्लोक भी वेद के भरे हुए हैं। अंग्रेजी जानने वाले सज्जन म्यूर साहब के प्रमाणों और युक्तियों को अंग्रेजी में भी देख सकते हैं और अपनी संस्कृत में भी समझ सकते हैं।

शैतान का जो हाल है, सो हम नहीं जानते। शायद उसको बीस बार क्षमा मिल चुकी है, और अब उसे क्षमा मिलने की कोई आशा नहीं है। फिर भी कौन जानता है ? हां, इतना हम जानते हैं कि आज शैतान का विषय नहीं है । मैं पण्डित जी से यह पूछता हूं कि क्या क्षमा कभी भी नहीं होनी चाहिये ? क्या मनुष्य के हृदय में क्षमा करने वा क्षमा चाहने का कुछ भी विचार कभी नहीं होता ? क्या क्षमा शब्द का संसार में कुछ भी काम नहीं है ? पण्डित जी इस बातपर विचार करें।

ह०—पादरी टी० जी० स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी :—

मैं कब घबराया हूं ? जो आपने कहा कि घबरावें नहीं। जब पहिले कहा कि ईश्वर पापों को माफ भी करता है और अब कहा कि कर सकता है, तो क्या ये दोनों परस्पर विरोधी बातें नहीं हैं ? और क्या इस प्रकार आप प्रतिज्ञा-हानि नहीं कर रहे ? तर्क शास्त्र-प्रमाण और अनुभव-प्राप्त पुरुषों का ही सत्य होता है, प्रत्येक जनसाधारण का नहीं। जब डाकू का कहीं-कहीं क्षमा करना अच्छा है, तो आज-कल की सरकार को भी चाहिये कि किसी अवसर पर डाकुओं को क्षमा करे।

योहन्ना के क्षमा करने से, क्या प्रत्येक अपराधी क्षमा के योग्य हुआ ? उसने भयवश या किसी स्वार्थवश क्षमा किया होगा। तो क्या उसने यह कोई अच्छा काम किया ? और जब तक उसने डाका मारना न छोड़ा था, तब तक अपने साथ क्यों न रखा ? और जो कहो कि क्षमा करने से लिया, तो यह बात सत्य नहीं है। क्योंकि जब उसने डाके का काम छोड़ दिया, और अच्छे काम करके अच्छा आदमी बना, तब साथ रखा। भले और बुरे दोनों प्रकार के कामों

का फल ईश्वर यथायोग्य देता है। जब पादरी साहब का सिद्धान्त यह है कि—ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है। फिर उसके विरुद्ध पादरी साहब ने कथन किया कि जब कभी हम क्षमा करते हैं, तो ईश्वर क्षमा नहीं करता। और जब हम क्षमा नहीं करते, तो ईश्वर क्षमा करता है।

पादरी साहब ने मुझसे अदिति का अर्थ पूछा है। सो पृथिवी, अन्तरिक्ष, माता, पिता और ईश्वर आदि अर्थ हैं। जैसे किसी हल जोतने वाले के सामने या विद्या वाले के सामने रत्नों की या और-और विद्याओं की बात करें, तो क्या वह व्यर्थ नहीं है? जो शैतान का पाप क्षमा न किया जायेगा, तब तो शैतान के विषय में आपका सिद्धान्त अटक गया। क्षमा शब्द किसी और मुहावरे के लिये है। दण्ड तो दिया जाना है, परन्तु समर्थ को जैसा दण्ड दिया जाता है, वैसा असमर्थ को नहीं। जैसे कि पागलों को पागलखाने में भेजा जाता है। यदि ईश्वर ईसा के वसीले से क्षमा करता है, तो क्या वह खुशामदी नहीं है? क्या आप ईश्वर के सामने भी वकील आदि की आवश्यकता समझते हैं? क्या आप उसे सर्वव्यापक और सर्व-शक्तिमान् नहीं मानते? और यदि आप ईसा के वसीले से पापों का क्षमा होना मानते हैं, तो ईसा ने जो पाप किये, उनकों क्षमा करने का वसीला क्या है? **ह०—स्वामी दयानन्द सरस्वती जी**

पादरी टी० जी० स्काट साहब:—

अब यहां पर कुछ विचार करना उचित है। क्षमा करना और बात है, तथा दिल को पवित्र करना और बात है। इसलिये मनुष्य की क्षमा और ईश्वर की क्षमा में बहुत भेद है। जब मनुष्य तोबा करे और उस नियम पर चले, जो कि उसके लिए नियत और विहित है, तब ईश्वर उसको क्षमा कर देता है, और उसके हृदय को भी पवित्र कर देता है। और मेरा भाव यह है कि ईश्वर ने किसी को क्षमा किया और उसके हृदय को भी पवित्र किया, इसकी पूर्ण सम्भावना है। परन्तु फिर भी मनुष्य की स्वतन्त्रता और धर्मशास्त्र के कारण नियम के अनुसार वह क्षमा नहीं होता। यह मेरा अभिप्राय है।

और क्षमा का लाभ इसमें प्रतीत होता है कि बीसियों विचारवान् युक्ति-तर्क-विशेषज्ञ भली प्रकार जानते हैं कि क्षमा का

परिणाम बहुत उत्तम निकलता है। कोई हठ वा दुराग्रहवश इस सिद्धान्त से इन्कार करे, तो करे। पण्डित जी का सिद्धान्त यह है कि ईश्वर किसी को भी विना दण्ड दिये छोड़ता नहीं। परन्तु योहन्ना ने उस डाकू को दण्ड नहीं दिलाया, क्षमा कर दिया। और हमारा यह सिद्धान्त है कि ईश्वर जब भी उसे उचित प्रतीत होता है, क्षमा कर देता है, जैसा कि धर्म-शास्त्र में लिखा है।

पण्डित जी ने अदिति के अर्थ परमेश्वर भी लिखे हैं। और मयूर साहब का दावा है कि अदिति वेद के प्रमाण से पापों को क्षमा भी कर देती है। यदि शैतान अभी तक माफ नहीं गया, तो यह किसी प्रकार भी मेरे दावे के विरुद्ध नहीं है। क्योंकि आज के विषय में एक शब्द "भी" मौजूद है, और यह "भी" अवस्था और परिस्थिति के अनुसार कभी दण्ड और कभी क्षमा इन दोनों को बताता है।

पण्डित जी का दावा है कि ईश्वर कभी भी क्षमा नहीं करता, अतः 'क्षमा' शब्द को संसार से हटा दो। इसके प्रतिकूल यदि ईश्वर किसी एक पाप को क्षमा भी करता है, तो केवल उसी से मेरा पक्ष सिद्ध हो जाता है। मेरा पक्ष यह नहीं है कि ईश्वर क्षमा ही करता है; अपितु यह मेरा पक्ष है कि ईश्वर क्षमा भी करता है। इस "भी" पर विशेष ध्यान दीजिये।

ईसा के वसीले का विषय आज नहीं है, इसलिये इस विषय में मैं आज कुछ नहीं कहता। हमारे लिये आज यह जान लेना ही बहुत है कि किस वसीले से पाप क्षमा होता है। उदाहरण के लिये देखिये—दवाई से दर्द हट जाता है। हम दवाई के विषय में विशेष कुछ नहीं जानते, परन्तु न जानने से क्या भेद पड़ता है? दर्द तो दूर हो ही जाता है। इसी प्रकार क्षमा होने की भी एक शर्त तो है।

अब शास्त्रीय प्रमाण आरम्भ होता है। इसमें मैं अधिक कुछ नहीं लिखता। जो लोग इस विषय में कुछ विशेष जानना चाहें, और प्रमाण पूछें, वे कल की लिखित पर विचार करें। तथा तौरेत में 'खरूज की किताब' अध्याय चौंतीस, आयत आठ, और 'गिनती की किताब' अध्याय चौदह, आयत अट्ठारह को पढ़ें एवं विचार करें।

ह०—टी० जी० स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जीः—

क्षमा करना, पवित्र होना है या नहीं? क्या क्षमा करना

पवित्र होने के लिए है ? जो कहें कि पवित्र होने के लिये है, तो ठीक नहीं। क्योंकि क्षमा करने से पाप की निवृत्ति संसार में देखने में नहीं आती। और जो अशुद्ध होने के लिये क्षमा होना कहा जाये, तब तो क्षमा करना ही सर्वथा व्यर्थ हो जाये। जब हमारे क्षमा करने और ईश्वर के क्षमा करने में भेद है, तो आपने पहिले क्यों कहा था कि हम भी दयालु हैं और ईश्वर तुल्य हैं ? और ईश्वर के सामने क्षमा कराने वाला यौहन्ना मौजूद है। तब तो ईश्वर भी खुशामद को पसन्द करने वाला तथा बेसमझ सिद्ध होता है। क्या योहन्ना मनुष्य नहीं था कि जिसने क्षमा किया ? क्या योहन्ना कोई राजा था ? वह राजा या ईश्वर नहीं था, यह मैं जानता हूं।

न्याय दण्ड देने से छोड़ता नहीं है और छोड़ता भी है, यह बात परस्पर विरुद्ध है। जो पादरी साहब ने यहां मनुष्यों के राज के विषय में यह कहा कि—कानून की पाबन्दो करनी आवश्यक है, अतः डाकुओं को क्षमा नहीं किया जा सकता। तो मैं पूछता हूं कि क्या ईश्वर के घर में कानून की पाबन्दी नहीं है ? क्या कोई कह सकता है कि ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है ? यदि नहीं, तो फिर योहन्ना के कहने फुसलाने और खुशामद करने से वह क्षमा करने को राजी क्यों हो गया ? ऐसी बातों से तो ईश्वर की सर्वज्ञता नष्ट होती है।

और जो पादरी साहब ने कहा कि ईश्वर कभी दण्ड देता है और कभी क्षमा भी करता है। यह बात ऐसी ही मिथ्या है, जैसे कि अग्नि कभी गर्म होती है और कभी ठण्डी हो जाती है। और जो यह बात कही कि—आज ईसा मसीह का विषय नहीं है। सो आपने ही आज ईसा का विषय बीच में छेड़ा है। क्योंकि आपने कहा कि ईश्वर ईसा के वसीले से पापों को क्षमा करता है। यहां मैं पूछता हूं कि—ईसा जीव था या ईश्वर ? जो कहें कि जीव था, तो सभी आदमी जीव हैं, सभी ईश्वर के सामने क्षमा कराने वाले हुए। फिर आप एक-मात्र ईसा का नाम ही क्यों लेते हैं ? और जो कहो कि ईसा ईश्वर था, तो अपने आप ही वह वसीला अथवा साक्षी कभी नहीं बन सकता। जो कहें कि उसमें जीवात्मा और परमात्मा दोनों थे, तो दोनों के क्या-क्या काम थे ? और दोनों साथ-साथ थे या पृथक्-पृथक् ?

जो कहें कि पृथक् थे, तो व्याप्य-व्यापकता न रही। जो कहें कि व्याप्य-व्यापकता है, तो ईसा में और इन सब जीवों में क्या भेद

है ? जो कहें कि विद्या पढ़े थे, सो भी ठीक नहीं। क्योंकि इंजील के लेख से मालूम होता है कि वह विद्वान् नहीं था, परन्तु एक साधु पुरुष था।

जो लोग ईसा को मानते हैं, उनके सिद्धान्तानुसार जब यहूदियों ने ईसा को फांसी पर चढ़ाया, तो उसने ईश्वर से प्रार्थना कि—हे ईश्वर ! तूने मुझे क्यों छोड़ दिया ? ऐसी बातों से उसमें केवल साधारण जीव ही गति करता था, ईश्वर नहीं। किन्तु ईश्वर तो जैसे सब में व्यापक है, वैसे ही उसमें था। जो कहें कि—उसने मुरदों को जीवित किया, अन्धों को आंखें दीं, और कोढ़ियों को चंगा किया, भूत निकाले, इसलिए वह ईश्वर था। यहां मैं कहता हूं कि ये बातें प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों और सृष्टिक्रम आदि से विरुद्ध होने से विद्वानों के मानने योग्य न कभी थीं, न हैं और न कभी होंगी। हां, ये बातें पौराणिकों के अनुसार हैं।

पक्षी बोला, पशु हाथी आदि आदमी की बोली में बोले, जैसा कि तोरेत में लिखा है कि—गदहे आदमी की बोली बोले। क्या इन बातों को कोई विद्वान् मान सकता है ? अथवा किसी विद्वान् से इन बातों को कोई मनवा सकता है ?

और जो यह कहा कि—दवा खाने से रोग छूट जाते हैं, वैसा ही यह पापों को क्षमा करना भी है। तो क्या दवा का नियम से सेवन करना, परहेज करना, वैद्य के कहने के अनुसार चलना, अपनी मर्जी से न चलना, यह सब दण्ड नहीं है ?

अब तीन दिन से मुझ से और पादरी साहब से जो वार्तालाप हुआ है, उसके विषय में मैं अपनी बुद्धि के अनुसार यह समझता हूं कि मैंने पुनर्जन्म का सिद्धान्त सिद्ध कर दिया। पादरी साहब उसका खण्डन नहीं कर सके। और पादरी साहब अपने सिद्धान्तों का मण्डन करने में तथा उसके विषय में मेरे प्रश्नों के युक्ति और प्रमाण से उत्तर देने में भी समर्थ नहीं हुए। ह०—**दयानन्द सरस्वती जी**

पादरी टी० जी० स्काट साहब:—

अब विचार करने वाले भाई विचार करें। क्योंकि इस लिखाई के बीच में शास्त्रार्थ के नियमों के विरुद्ध बहुत सी बातें कही गई हैं, और वे लिखी नहीं गईं। इसका परिणाम वही हुआ है कि जिसके

ऊपर झगडा हुआ। अर्थात् केवल अर्थ मिलाने के लिए मैं एक वाक्य सुनाना चाहता था, परन्तु मैंने यह आवश्यक न समझा कि लिखने वाले से उसे लिखने के लिए भी कहूं। अब मैं केवल उस प्रमाण का ही उल्लेख करता हूं। भाषा के शब्दों का विचार मैं न करूंगा। जो चाहें वे पुस्तक में स्थल को निकाल कर देख लें। हां, यह मैं लिखवा दूंगा कि मैं प्रमाण किस उद्देश्य से देता हूं। पण्डित जी का यह कहना कि मेरी दलील पक्की नहीं है, और मैंने यूं सिद्ध किया है, इत्यादि। इसमें कुछ भी सार नहीं है। मैं भी इस प्रकार कह सकता हूं। अब यह सुनने वालों का काम है कि वे विचार करके स्वयमेव निर्णय करें। और यह भी स्मरण रखना चाहिये कि मैं यह नहीं चाहता कि इस विषय में किसी प्रकार का पक्षपात किया जाये।

पण्डित जो ने इस बात का कुछ उत्तर नहीं दिया कि—'क्षमा' शब्द को संसार से बहिष्कृत क्यों नहीं कर दिया जाता? यह एक व्यर्थ और हानिकारक शब्द है। इससे सदा सबकी हानि ही होती है। यदि पंडित जी के कथनानुसार यही बात है, तो बहिष्कार जरूरी है। मैं तो निःसन्देह यह कहता हूं कि क्षमा करने से भगवान् की महिमा का प्रकाश होता है। ईश्वर की बड़ाई इसी में है कि वह मनुष्य को क्षमा करे। क्योंकि मैंने कहा कि वह सब गुप्त भेदों को भी यथावत् जानता है, और क्षमा करने के देश काल तथा पात्र को भी भली प्रकार जानता है, और क्षमा करने के कारणों को भी पूर्णतया जानता है। ईश्वर के घर में न तो कुछ कमी है, और न ही किसी प्रकार की भूल या भ्रान्ति की कोई सम्भावना है। ये सब कमियां और त्रुटियां इस संसार में ही हैं।

देखो, संसार में कितना पाप, अन्याय, घमण्ड और रक्तपात तथा और भी अनेकविध अनाचार दृष्टिगोचर हो रहा है। पंडित जी इसे स्वीकार नहीं करेंगे; परन्तु प्रत्यक्ष ही संसार में भारी कमी और त्रुटि देखने में आ रही है। जैसा कि अंग्रेजी सरकार ने इसका यथोचित प्रबन्ध किया है, ईश्वर भी इसका प्रबन्ध करेगा।

मैं निःसन्देह मसीह के विषय में कोई वार्ता न चलाऊंगा। मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इस पवित्र धर्म-ग्रन्थ में जिसको क्षमा करने का उल्लेख है, वह उसी वसीले से है। यह दर्द का जिक्र तो है, परन्तु दर्द का विवरण यह नहीं है कि कहां-कहां, कैसे-कैसे है?

जब कभी इस विषय पर वार्ता चलेगी; तब आप इसे यथार्थरूप में देख लेंगे। युक्ति और प्रमाण के आधार पर मेरा निवेदन यही है कि क्षमा होती है।

और तोबा के सिद्धान्त से भी यही प्रमाणित होता है, कि क्षमा होती है। उपाय को खूब जानना और ईश्वरीय पुस्तक के विषय में इस प्रकार से हंसी-ठट्ठा करना यदि पंडित जी को उचित प्रतीत होता है, और वे प्रत्येक बात को उलटे रूप में ही समझना चाहते हैं, तो वे जानें। वेद की अनेकानेक बातें हैं; परन्तु यहां उनके विषय में मैं विशेष कुछ कहना नहीं चाहता। अब आप मेरे इन उत्तरों को कृपया देख लीजिये—

'गिनती की पुस्तक' अध्याय १४, आयत १८ का अर्थ इस प्रकार है कि—ईश्वर पापों को क्षमा करता है।

'लूका की इंजील' अध्याय ६, आयत ४ तथा अध्याय १५ और आयत १०, इसी प्रकार 'योहन्ना का पहिला पत्र' अध्याय १, आयत ६। इन का अर्थ यह है कि—पापों को क्षमा किया जाता है। फिर मसीह ने अपने चेलों को समझाया कि अपनी प्रार्थना में इस प्रकार से बोलो—"हे ईश्वर हमारे पापों को क्षमा कर।"

अब अनुभवसिद्ध प्रमाणों पर भी विचार कीजिए। अनुभव के आधार पर सत्य को जानना बहुत बड़ी बात है, और अपना अनुभव सत्यासत्य का निर्णय करने की सबसे बड़ी कसौटी है। मनुष्य कह सकता है कि मेरा पाप क्षमा किया जाये। और इसके साथ ही ऐसा कथन निराधार है। क्योंकि जैसे पंडित जी ने स्वयं भी एक उदाहरण में बताया है कि—प्रत्येक पापी को दण्ड अवश्य ही मिलेगा। वह पाप भी है। फिर जब तोबा-तोबा कहा तब भी वही पाप मौजूद है। फिर खुदा के बेटे का नाम लिया, तब भी पाप वर्तमान है। मैं यह मान लेता हूँ कि मनुष्य मिथ्या-कथन करें।

कल्पना करो कि वे सच्ची तोबा करके सन्मार्ग पर आ जावेंगे, और प्रत्यक्ष देख भी लें कि अब वह पहिले जैसी बात नहीं है। अब मन में संतोष है और शान्ति है। प्रकाश ही प्रकाश है, न कोई सन्देह है, न चिन्ता है, और न ही कोई आशंका है। अब देख लीजिये कि ऐसे हजारों आदमी संसार में हैं कि जिनका यही अनुभव है। और उन्होंने अपने अनुभव से यह भली प्रकार जान लिया है कि

ईश्वर ने मेरे पापों को क्षमा कर दिया है। वे अब पूर्णतया सन्तुष्ट हैं। उनके हृदय पर न तो पाप की छाप शेष है, और न ही पाप का कोई भार है। पापाचरण की किसी प्रकार की इच्छा वा कल्पना भी नहीं है। एक क्षणमात्र में हृदय परिवर्तन हो गया है।

मेरी ओर से इंजील के अनुसार प्रमाण मिल चुका है। यह कहना बहुत ही आसान है कि यह मिथ्या है, ऐसा है और ऐसा नहीं। परन्तु जानने वाले जानते हैं, जिसका दर्द सर्वथा चला गया है, वह जानता है। परन्तु मेरे धर्म के मानने वाले इकतालीस करोड ईसाई संसार में हैं। उनमें से बहुत से तो झूठे ही हैं, यह मैं स्वीकार करता हूं, उनका कथन भी झूठ ही हैं। परन्तु सच्चे आदमी भी बहुत हैं और उनका कथन भी पूर्णतया यथार्थ है, सत्य है। उनकी जीवनचर्या से यह भली भान्ति प्रमाणित हो जाता हैं कि उनके सब पाप सर्वथा लुप्त हो चुके हैं। उनके पापों को क्षमा किया गया है। हां, इसको जानने और समझने के लिये अपना अनुभव होना भी आवश्यक है। यह कार्य अभ्यास से होगा।

मैं फिर कहता हूं कि वह अपने अनुभव का प्रमाण सबसे बढ़ कर और पक्का प्रमाण है। युक्ति और तर्क की पुष्टि से भी बढ़कर यह पुष्टि है, कि जिसको अपने अनुभव के आधार पर अपना अन्तरात्मा भी पुष्ट करता है। बात यह नहीं है कि हम केवल मौखिक कथनमात्र ही करते हैं, ऐसा कथन तो मिथ्या भी हो सकता है। परन्तु जिसके पाप तोबा करने के बाद अपना अस्तित्व सर्वथा खो चुके हैं, कि वह नहीं जानता कि जैसे कि कोई पिता अपने पुत्र से क्षमा का वचन कहे तो क्या वह पुत्र यह नहीं समझता कि पिता ने उसे क्षमा कर दिया है, और अब चिन्ताओं की कोई आवश्यकता नहीं है। मानव-हृदय की भी इसी प्रकार अवस्था है।

मैंने तर्क युक्तियों और शास्त्रीय प्रमाणों के द्वारा तथा मनुष्यों के अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि ईश्वर पापों को क्षमा करता है। **ह०—टी० जी० स्काट साहब**

७. शास्त्रार्थ-मसूदा

सम्पादकीय वक्तव्य

ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज-विषयक पुरातन सामग्री की शोध के प्रसंग में आर्यसमाज अजमेर द्वारा प्रकाशित 'देश-हितैषी' मासिक पत्र की संचिकायें देखने का अवसर मिला। यह पत्र वैशाख १९३९ वि० में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ था। 'देश-हितैषी' के कतिपय अंकों में महर्षि दयानन्द के मसूदा (जिला अजमेर) ग्राम में निवास का विस्तृत विवरण उपलब्ध हुआ। मसूदा के अधिपति स्व० राव बहादुरसिंह जी, स्वामी दयानन्द के निष्ठावान् अनुयायी तथा भक्त थे। उन्हीं के आमन्त्रण पर स्वामीजी एकाधिक बार मसूदा गये थे। यद्यपि स्वामीजी के मसूदा पधारने तथा वहां जैन साधु सिद्धकरण से शास्त्रार्थ करने का विवरण पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा संकलित तथा पं० घासीराम जी द्वारा लिखित श्री महाराज के जीवन-चरित में भी उपलब्ध होता है, परन्तु वह अत्यन्त संक्षिप्त है। 'देश-हितैषी' के निम्न अंकों में यह विवरण धारावाही रूप से प्रकाशित हुआ था—ज्येष्ठ १९३९ (अंक २ खण्ड १), श्रावण १९३९ (अंक ४ खण्ड १), भाद्रपद १९३९ (अंक ५ खण्ड १), आश्विन १९३९ (अंक ६ खण्ड १), कार्तिक १९३९ (अंक ७ खण्ड १), मार्गशीर्ष १९३९ (अंक ८ खण्ड १), अर्थात् उक्त ६ अंकों में मसूदा के शास्त्रार्थो वृत्तान्त प्रकाशित हुआ था। इस वृत्तान्त के प्रेषक पं० वृद्धिचन्द्र श्रीमाली नामक एक श्रीमाली ब्राह्मण थे।

'मसूदा के मंगल-समाचार' शीर्षक से प्रकाशित इस विवरण में तीन शास्त्रार्थों का उल्लेख हुआ है। प्रथम शास्त्रार्थ जैन साधु सिद्धकरण तथा स्वामीजी के मध्य, द्वितीय राव बहादुर सिंह जी तथा यावर निवासी पादरी बिहारीलाल के बीच, तथा तृतीय स्वामीजी एवं एक कबीर-पन्थी साधु के बीच हुआ था। जैन साधु सिद्धकरण श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय की स्थानकवासी शाखा के अनुयायी थे। इस शाखा के साधु मुख पर श्वेत पट्टी बांधते हैं। राजस्थान में इन्हें '२२ टोला' भी कहा जाता है। शास्त्रार्थ-विवरण के अतिरिक्त भी मसूदा के इस इतिवृत्तसे ऋषि दयानन्द-विषयक कतिपय महत्त्व-

पूर्ण बातों का परिज्ञान होता है। यथा—मसूदा में स्वामीजी ने धर्म, राजनीति, पुनर्विवाह, सत्यशास्त्रादि विषयों पर १६ व्याख्यान तो अपने प्रथम बार के निवास के समय ही दिये थे। क्या ही अच्छा होता, यदि इन व्याख्यानों का विवरण उपलब्ध हो सकता। पादरी शूलब्रेड तथा पादरी बिहारीलाल के समक्ष भी उनका व्याख्यान 'राजनीति' पर ही हुआ था। स्वामीजी के राजनैतिक विचार और भी स्पष्ट हो जाते, यदि हमें इन व्याख्यानों का विवरण उपलब्ध होता।

पं० वृद्धिचन्द-लिखित विवरण की भाषा को यथासाध्य उसी रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है, जिसमें वह आज से ८८ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। उस समय खड़ी बोली का गद्य पूर्णतया परिष्कृत नहीं था। शब्दों के स्वरूप तथा वर्तनी का निर्धारण भी नहीं हुआ था, और न विराम-चिह्नों का ही प्रयोग किया जाता था। फिर भी मैंने यथासम्भव शब्दों की वर्तनी को शुद्ध कर दिया है, तथा यत्र तत्र विराम-चिह्न भी लगा दिये हैं, तथापि भाषा के पुराने रूप को देखा जा सकता है। यत्र तत्र आवश्यक पाद-टिप्पणियां भी दे दी गई हैं।

मसूदा रावसाहब के पुराने 'इतिवृत्त-संग्रह' में महर्षि-विषयक और भी महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होने की पूर्ण सम्भावना है। मसूदा के सैंकड़ों निवासी स्वामीजी के अमृतमय उपदेशों को सुनकर वैदिक-धर्म में दीक्षित हो गये थे। ऐसे लोगों में जैन मतावलम्बी कोठारी परिवार के लोगों की संख्या यथेष्ट थी। अतः इस विवरण में उल्लिखित उन लोगों के नामों की सूची भी महत्त्वपूर्ण है, जिन्होंने श्रीमहाराज के करकमलों से यज्ञोपवीत दीक्षा धारण की थी। मेरा प्रयास मसूदा-विपयक शेष सामग्री को भी प्रकाश में लाने का है। जिसके लिये आर्यसमाज के अनुसंधानप्रिय पाठकों को प्रतीक्षा करनी होगी।

शास्त्रार्थ-मसूदा (१)

यह शास्त्रार्थ जैन साधु सिद्धकरण के साथ हुआ था।

[पूर्व-पीठिका]

विदित होय कि श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज के अजमेर में पदार्पण करने के समाचार राव बहादुरसिंह जी मसूदा के कर्णगत हुए। तत्काल ही उक्त रावसाहब ने श्रीस्वामीजी महाराज को निमन्त्रण पत्र सहित श्री पण्डित वृद्धिचन्द जी को अजमेर भेजा। उक्त पण्डितजो ने रावसाहब का निमन्त्रणपत्र स्वामीजी को दे सर्वव्यवस्था कह सुनाई। तब स्वामीजी ने मसूदा की ओर पधारना स्वीकार किया। इसके पश्चात् जब अजमेर में स्वामीजी के व्याख्यानादि समाप्त हो चुके, तब उक्त महाराज ने अत्यन्त कृपा करके अपने प्रण के अनुसार आषाढ़ वदी १२, सं० १९३८वि०, बृहस्पतिवार को ९ बजे दिन के अजमेर स्टेशन से मसूदा की ओर प्रस्थान कर, नसीराबाद स्टेशन पर उतर, रथ पर चढ़ ९बजे रात्रि को मसूदा में जा विराजे।

फिर आषाढ़ वदी ३०, सं० १९३८ वि० से उक्त महाराजजी के व्याख्यान महलों में होने आरम्भ हुये। तात्पर्य यह कि १६ व्याख्यान अर्थात् प्रथम धर्म विषय, फिर राजनीति, पुनर्विवाह, सत्यशास्त्रादि और मोक्ष विषय में होकर फिर दो तीन दिवस इसी प्रकार बाहर बाग में आनन्द मंगल होते रहे। इसके पश्चात् अर्थात् आषाढ़ सुदी २ मंगलवार को पादरी शूलब्रेड और बाबू बिहारीलाल ईसाई नये शहर[1] (व्यावर) से स्वामीजी से मिलने को आये। उक्त महाराज ने उक्त पादरी साहब और बाबूजी को आदर सहित बिठाया, फिर वार्तालाप होने लगी। फिर स्वामीजी ने प्रसंगानुकूल पादरी साहब से उनके धर्म विषय में प्रश्न किये, जिनका कुछ उत्तर न देकर [वे] कहने लगे कि स्वामीजी! मैं आपसे शास्त्रार्थ करने नहीं आया हूं, वरंच आपके मुखारविंद से कुछ व्याख्यान सुनने की अभिलाषा है।

स्वामीजी ने कहा—बहुत अच्छा, मैं व्याख्यान देता हूं, आप श्रवण कीजिये। पादरी साहब बोले—मैं २० मिनट से अधिक नहीं

१. वर्तमान ब्यावर नगर को नया शहर भी कहा जाता है।

ठहरूंगा, आप व्याख्यान दीजिए। फिर स्वामीजी ने राजनीति में व्याख्यान दिया। इसके पश्चात् पादरी साहब ने स्वामीजी से पूछा कि वेदों में गो और अश्वमेध लिखा है ? स्वामीजी ने कहा— कि नहीं वैसी बात वेदों में कहीं नहीं लिखी है। हमारे पास चारों वेदों के पुस्तक हैं, आप उन में बतलाइये। पादरी साहब ने कहा—मेरी पुस्तकें तो नये शहर ब्यावर में हैं। स्वामीजी ने कहा किसी मनुष्य को भेज दो, ले आवेगा। पादरी साहब—इस समय नहीं मंगवा सकता, कारण अवकाश नहीं है। इतना कह नये शहर (ब्यावर) को चल दिये।

फिर स्वामीजी और रावसाहब ने जैनियों से, जो उस समय वहां उपस्थित थे, कहा—कि तुम लोग अपने किसी विद्वान् पण्डित वा मतावलम्बी को बुलाओ, उससे शास्त्रार्थ होगा। तब जैनियों ने कहा कि हम अपने साधु सिद्धकरण को बुलाते हैं, वे आपसे शास्त्रार्थ करेंगे। फिर जैनियों ने उक्त साधु को आषाढ़ सुदी १०, सं० १९३८ वि० को पत्र भेजा, सो दूसरे दिन वह मसूदा में आ गया।

एक दिन अर्थात् आषाढ़ सुदी १३ को, जब स्वामीजी महाराज अपने नियमानुसार भ्रमण को गये, तो सिद्धकरण साधु से भी, जो शौचादि से निवृत्त होकर आते थे, मार्ग में भेंट हो गई। साधु ने स्वामीजी के निकट आकर कहा कि—आपका क्या नाम और कहाँ से पधारना हुआ ? स्वामीजी ने उत्तर दिया—मेरा नाम दयानन्द सरस्वती है, और अजमेर से आया हूं। फिर स्वामीजी ने कहा—आपका क्या नाम है, और कहां से आना हुआ ? साधुजी ने कहा—मेरा नाम सिद्धकरण है, और सरवाड़ से आया हूं। चार मास यहीं रहूंगा। स्वामी जी—यहाँ पर आप कहां ठहरे हैं ? साधु ने कहा—एक उपासरे[1] में। स्वामीजी—क्या आप ही को जैनियों ने बुलवाया है ? साधु—हाँ, मुझ ही को। और स्वामीजी से कहा कि—आपका पेट तो बड़ा मोटा है, क्या इसमें ज्ञान भरा है? आप लोहे का तवा बांध लीजिये, नहीं तो फट जाएगा। स्वामी जी ने इसका उस समय उत्तर देना अनुचित समझ साधु से यह प्रश्न किया कि—आप लोग मुख पर पट्टी क्यों बांधते और गरम जल क्यों पीते हो? साधु जी ने कहा कि—जो आप भी मुख पर पट्टी बांधें, तो मैं इसका उत्तर दूं। अब इनमें

१. स्थानकवासी जैन साधुओं के ठहरने का स्थान उपासरा (उपाश्रय) कहलाता है।

परस्पर वादानुवाद हो ही रहा था कि रावसाहब ने जो बहुधा अपने महलों पर छत पर बैठ प्रातःकाल दूरवीक्षण द्वारा स्वामीजी को भ्रमण करते देखा करते थे, देखा कि किसी से स्वामीजी वार्ता कर रहे हैं। तत्काल ही रावसाहब अश्वारोहण हो स्वामीजी के निकट आ उपस्थित हुए। रावसाहब को देख साधु चलने लगा। तब रावसाहब ने साधु जी से कहा कि--ठहरो, प्रश्न करो, क्यों जाते हो? अंत को रावसाहब के आते ही साधुजी चले ही गये, और स्वामीजी महाराज वा[1] राव बहादुरसिंह जी मार्ग में परस्पर वार्ता करते हुए निज स्थान को पधारे।

[जैन साधु सिद्धकरण और स्वामी जी के मध्य प्रश्नोत्तर]

फिर स्वामीजी ने श्रावण बदी २ सं० १९३८ वि० को निम्नलिखित प्रश्न, पं० छगनलाल कामदार वा जोशी जगन्नाथ और सरदार वा और पण्डित लोगों के हस्ते सिद्धकरण साधु के पास भेजे। **प्रश्न यह हैं—**

१—जैन मतान्तर्गत तुम लोग ढूंढ़िये, जो मुख पर पट्टी बांधना अच्छा जानते हो, यह तुम्हारी बात विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणादि की रीति से सिद्ध नहीं है। इसमें जो तुम ऐसा मानते हो कि—मुख की वायु से जीव मरते हैं। तो भी ठीक नहीं। क्यों कि जीव अजर अमर है, "और तुम भी ऐसा ही मानते होगे"। जो तुम कहो कि—जीव तो नहीं मरता, परन्तु जो उनको पीड़ा अर्थात् दुख देवें वे पापभागी होते हैं। सो भी सर्वथा ठीक नहीं, क्योंकि पीड़ा दिये बिना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता।

इसमें जो तुम कहते हो कि—जहां तक बन सके तहां तक जीवों की रक्षा करनी चाहिये, कारण सर्व वायु आदि पदार्थ जीवों से भरे हैं, इसलिये हम लोग मुख पर कपड़ा बांधते हैं कि मुख से उष्ण वायु निकलने से बहुत से जीवों को दुख, और बांधने से थोड़े जीवों को कष्ट पहुंचता है। सो यह भी कहना आप लोगों का अयुक्त है, क्योंकि कपड़ा बांधने से जीवों को बहुत दुःख पहुंचता है। कारण यह है कि मुख पर कपड़ा बांधने से गरमी

१. 'वा' का प्रयोग सर्वत्र 'और' के अर्थ में हुआ है 'अथवा' के अर्थ में नहीं।

रुकने मे ऊष्णता अधिक होती है। जैसे किसी मकान का दरवाजा बंद हो वा परदा डाला जाय, तो उसमें गर्मी अधिक होती है, और खुला रहने से कम होती है। इससे विदित होता है कि मुख पर कपड़ा बांधने से जीवों को अधिक पीड़ा होती है। इसलिये जो कोई मुख पर कपड़ा बांधते है, वे जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाने से अधिक पापी होते हैं। जो नहीं बांधते, वे उन बांधने वालों से अच्छे हैं।

किन्तु जब तुम मुख पर कपड़ा बाँधते हो, तो मुख द्वारा वायु रुक कर नाक के छिद्र से अधिक वेग से जो बाहर निकलती है, वह जीवों के लिये अधिक दुखदाई होती है। जैसे कोई मुख से अग्नि फूंके और कोई नली से, तो नली से वायु चारों ओर से रुक, अधिक बलवान हो अग्नि में लगती है। इसी प्रकार नाक का वायु जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाता है। इससे तुम अधिक हिंसक हो।

जो तुम कहो कि—हम नाक और मुंह पर एक कपड़ा बांधेंगे। तो पूर्वोक्त रीति से मुख और नासिका की दोनों गरमी बढ़ कर द्विगुण हिंसा होगी। उससे मुख वा नासिका पर कपड़ा बांधना कदापि योग्य नहीं। दूसरे कपड़ा बाँधने से बोला भी ठीक-ठीक नहीं जाता। निरनुनासिक शब्दों को सानुनासिक[1] कर देना दोष है, उधर दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है, क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध है। शरीर से जितना वायु निकलता है, वह दुर्गन्ध-युक्त ही है। जब वह रोका जाय तो अधिक दुर्गन्ध बढ़ता है, जैसा कि बंद जाजरूर[2]।

इसी प्रकार मुखादि का प्रक्षालन न करने और मुख पर कपड़ा बांधने से अधिक दुर्गन्ध होकर अधिक रोग उत्पन्न करता है, जैसा कि मेला आदि में। और न्यून दुर्गन्ध से विशेष रोग नहीं होता, यह बात प्रत्यक्ष है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अधिक दुर्गंध बढ़ाने वाला अधिक अपराधी होता है। जैसा कि आप लोग दन्तधावन और स्नानादिक न करने से दुर्गन्ध बढ़ाते हो, जिस से रोगोत्पत्ति कर बुद्धि और पुरुषार्थ को नष्ट करके धर्मानुष्ठान में बाधक होते हो। जैसा

---

१. मुख पर पट्टी बांधने वाले जैन साधुओं का उच्चारण अधिकांश में सानुनासिक हो जाता है।

२. इस शब्द का प्रयोग 'शौचालय' के अर्थ में होता है।

कि जाजरूर के शुद्ध करने वालों की दुर्गन्ध के संग से न्यून बुद्धि होती है, वैसे ही आप लोगों की क्यों नहीं होती होगी ? जब दुर्गन्ध-युक्त पुरुष की बुद्धि अति मन्द, तो उसके संगियों की क्यों नहीं होती होगी ?

२—जो तुम लोग कच्चा जल पीने आदि में दोष गिनते और ऊष्ण में नहीं, यह भी तुमको अत्यन्त भ्रम हुआ है। क्योंकि ठंडे जल के जीव ऊष्ण जल करने में अधिक दुख पाते हैं, और उनके शरीर रंध जल में घुट जाते हैं, जैसे सौंफ का अर्क। सिद्ध हुआ कि उक्त जल के पीने वाले मानो माँस का जल पीते है। और जो ठंडा जल पान करते हैं वे (उन जीवों को) गर्म जल पीने वालों की अपेक्षा थोड़ा दुख देते हैं। दूसरे वे जीव जठराग्नि में प्राप्त होकर भी बहुत से प्राण वायु के साथ बाहर भी निकल जाते हैं। इससे ठंडा जल पीने वाले तुमसे बहुत कम जीवों को दुख देने वाले ठहरते हैं।

जो तुम कहो कि—न हम जल गर्म करते और न हम किसी को अपने लिये शिक्षा ऊष्ण करने की करते हैं। तो भी तुम इस अपराध से नहीं छूट सकते, क्योंकि जो तुम गर्म जल न लेते, न पीते और न ऊष्ण करने को शिक्षा करते तो, वे अधिक जल क्यों गर्म करते? जो ऐसा कहो कि—पाप करने वालों को दोष लगता है, अन्य को नहीं। यह भी कथन ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि चोरी करने वाला तो आप ही चोरी करता है परन्तु शिक्षा करने वाले बहुतों को चोर बना देते हैं, इसलिये तुम ही अधिक पापी हुए। फिर जल के गर्म करने में अग्नि जलाने और उस जल से भाप ऊपर उड़ने से भी जीवों को बहुत दुःख पहुंचता है, इस कारण यह भी तुम्हारा कथन व्यर्थ हुआ।

३—तुम्हारे मत में ऐसी-ऐसी बहुत-सी बातें अयुक्त हैं, जैसे—एक छोटे से अर्थात् पैसे भर के कंद में अनन्त जीवों का रहना। इसमें जो कोई तुम से प्रश्न करे कि जिसमें जीव रहते हैं जब उसका अन्त है, तो उसमें रहने वालों का अन्त क्यों नहीं ? फिर तुमसे इसके उत्तर में केवल चुप वा हठ के और कुछ न बन पड़ेगा। यह थोड़ा-सा अर्थात् समुद्र में से बिन्दुवत् तुम्हारे मत में दोष दिखलाया है। जो तुम सन्मुख बैठ कर चर्चा करो, तो

तुमको और तुम्हारे साथियों को तुम्हारे मत के दोष भली-भांति विदित हो जायं।

परन्तु जब कोई विद्वान् तुम्हारे सन्मुख तुम्हारे मत के खण्डन विषय में चर्चा करना चाहें, तो भी तुम कभी न चाहोगे। क्योंकि जो तुम्हारा मत निर्दोष होता, तो दूसरे मत वालों से संवाद करने में कभी न डरते। इसका दृष्टान्त यह है कि तुम अपनी पुस्तकों को बहुत गुप्त रखते और अपने मत वालों के सिवाय दूसरों को देखने के लिये नहीं देते। यह तुम्हारा सिद्धान्त पुस्तक और तुम्हारे सिद्धान्तों को तुम्हारी ही बातें झूंठ कर देती हैं। जिसका चांदी का रुपया है, वह सर्राफ वा सुनारादि के दिखलाने में क्यों डरेगा? देखो, हमारा वेद मत सच्चा है, इससे हमको किसी के साथ चर्चा करने में डर नहीं होता। जैसा तुम डर के कारण हठ करते हो कि मुख पर कपड़ा बांधे बिना तुम से बात नहीं करते, यह तुम्हारा केवल छल है, क्योंकि नाच न आवे आंगन टेढ़ा।

--ह० **दयानन्द सरस्वती**

जब पूर्वोक्त पुरुष उक्त प्रश्नों को लेकर साधुजी के स्थान पर पहुंचे, तो क्या देखते हैं कि साधुजी बहुत-सी स्त्री और पुरुषों के मध्य में बखान[1] कर रहे हैं। तब यह लोग वहां जा बैठे। जब बखान पूर्ण हुआ, तब पण्डित छगनलाल जी मन्त्री राव मसूदा ने, जो उक्त प्रश्न ले गये थे, सब लोगों के सन्मुख पढ़ कर सुना दिये। और कहा कि इनका उत्तर देना आपको योग्य है। इस पर साधुजी ने कहा कि—जो तुम लोग मुख पर पट्टी बांधो तो मैं उत्तर दूं। तब इन लोगों ने कहा कि—हम मुख पर पट्टी बाँधना पाप गिनते हैं। प्रथम आप इन प्रश्नों का उत्तर दें। पट्टी का बांधना सिद्ध कर देंगे, तब हम प्रसन्नतापूर्वक यही क्या जैसा आप हम से कहेंगे, स्वीकार करेंगे। ये सुन साधु ने कहा कि—तो मैं उत्तर नहीं दे सकता, और उठ कर भीतर की ओर चले गये। फिर यह लोग अपने गृह की ओर चले आये, और सब वृत्तान्त स्वामीजी वा राव साहब को सुनाय अपने-अपने निज स्थान को पधारे।

१. जैन साधुओं के धर्मोपदेश को राजस्थान में 'बखाण' (व्याख्यान का अपभ्रंश) कहते हैं।

[साधु सिद्धकरण के द्वारा स्वामीजी के प्रश्नों का उत्तर]

फिर साधुजी ने तीसरे दिन सुजानमल कोठारी के हस्ते स्वामीजी के प्रश्नों का उत्तर निम्नलिखित भेजा—

प्रश्न—[१]मुंह बांधने में क्या धर्म है। हमको तो पाप मालूम होता है, इत्यादि।

उत्तर—जब कि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है, उस मकान के दरवाजे में होकर हवा भीतर जाती है, तो हवा के जीव सब मर जाते हैं, और बाहर उस ज्वाला का तेज कपड़े की ओट से ठंडा होकर जाता है। जैसा कि ऊना[२] (गर्म) जल की भाप बाहर एक ऊनी करी हुई चीज को भाप के निकलते समय कपड़ा की ओट दो, तो फिर ओट से बच कर भाप जावेगी, वह फिर वैसी गर्म कभी न रहेगी। वा आडा हाथ देकर देखो, तो पहला हाथ देगा उसका जलेगा वही जल की भाप निकलेगी तो दूसरी तरफ जो आजू बाजू हाथ रहेगा, कभो वैसा नहीं जल सकता, यह तो प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। और जीव अजर-अमर है लेकिन वायु का जीव के शरीर है, बिना शरीर के जीव नहीं रह सकता।

दूसरे खुले मुख रहने से प्रत्यक्ष दोष भी है, कि उसको सब कोई समझ सकता है, क्योंकि जो कोई बड़े आदमी के निकट बात करे तो मुंह के पल्ला लगा लेना है, क्योंकि जिससे थूक न उछले, वा अपनी दुर्गंधता का स्वास उनके द्वारा न पहुंचे। तो आप सरीखे बुद्धिमान् होकर यह क्या सवाल पूछा ? आप को भी यह तो खयाल चाहिये कि वेद की पुस्तकों को खुले मुंह बांचना, क्या पुस्तक के थूक वा दुर्गंध स्वास नहीं पहुंचती होगी ? इस वास्ते जरूर आपको उगाड़े (खुले) मुंह रहना लाजिम नहीं। और हम तो साधु हैं, हम बेफायदा झोड[३] नहीं करते, क्योंकि यह बात पक्षपात कहलाती है। सिवाय धर्म के साधु को कुछ वास्ता नहीं। कोई हमारे निकट आवे

१. यह जैसे के तैसे लिख दिये हैं, जिससे जैनमत के साधुओं की विद्या भी पाठकों पर भली-भांति प्रकट हो जाय। (सम्पादक 'देश हितैषी' की टिप्पणी)

२. 'उष्ण' को मारवाड़ी में 'ऊना' कहते हैं

३. 'झोड़' विवाद के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

और सुनना चाहे तो सुने, जाने आने का कुछ प्रयोजन नहीं ां, यह पक्की दीखे कि कुछ धर्म की बात मानेंगे, तो जा सकते हैं ।

—द० सिधकरण

[स्वामीजी के द्वारा साधु सिद्धकरण के प्रश्नों का उत्तर]

स्वामीजी ने इन पूर्वोक्त प्रश्नों का उत्तर दूसरे दिन पं० वृद्धिचन्द जो, जगन्नाथ जोशी, व्यास रामनारायण और बाबू बिहारी लाल और अन्य सरदार लोगों के हस्ते निम्नलिखित भेजा—

(उत्तर) जब कि मकान में अग्नि को ज्वाला निकलती है, इत्यादि। यह तुम्हारा मुख की पट्टी बांधने का उत्तर अविद्यारूप है, क्योंकि बाहर का वायु ही सब प्राणियों का जीवन-हेतु है। विना इसके सयोग के कोई भी प्राणी नहीं जी सकता, और उसके सम्बन्ध के विना अग्नि भी नहीं जल सकता। जैसे किसी प्राणी वा जलते अग्नि को बाहर के वायु से वियुक्त करें, तो वह उसी समय मर जाता और दीपादि अग्नि भी बुझ जाता है। इससे उसको जिलाने और जलाने आदि का कारण बाहर का वायु ही है। न मानो तो बंद कर देख लो। इसलिये यह तुम्हारा अविद्यारूपी ही उत्तर सिद्ध होता है। यद्यपि ऐसी अन्यथा बातों पर लिखना व्यर्थ है, क्योंकि जो किसी से हो ही नहीं सकता।

देखो! जो मकान के दरवाजे और छिद्र बिल्कुल बंद कर दिए जायें, तो अग्नि कभी न जले। और एक ओर से ओट किया जाए, तो दूसरी ओर से जहां कि मार्ग पाता है, वहां अति वेग से चलकर वही वायु के जीवों को उसका सम्बन्ध होता है। और कपड़े की ओट से भी वह कभी ठंडा नहीं हो सकता, किन्तु वह एक ओर रुककर दूसरी ओर गर्म हो जाता है। ज्वाला की जितनी गर्मी है, वह जब तक बाहर के वायु से सम्बन्ध वा संघात छूट एक एक परमाणु पृथक् पृथक् होकर न मिल जायें, तब तक अग्नि ठंडा कैसे हो सकता है? और सर्वत्र वायु में विद्युत् रूप अग्नि भी (कि जहाँ वायु के शरीर वाले जीव हैं) व्याप्त हो रहा है, फिर वायुस्थ जोव क्यों नहीं मर जाते?

जब एक ओर कपड़े आदि से आडा[1] किया जाए, तो

1. 'आडा' करने का अर्थ ओट करने से है।

दूसरी ओर गर्म वायु अधिक इकट्ठा फैलने और पटकने आदि से शीघ्र ठंडा नहीं होता, किन्तु जो चारों ओर से खुला रहे तो शीघ्र ठंडा हो जाता है, जैसा कि मैदान की अग्नि। जब अग्नि की ओर आडा हाथ दिया जाए, तो हाथ की आड से दूसरी ओर गर्मी फैलेगी। आड़े हाथ करने से गर्मी कुछ भी कम नहीं हो सकती। इससे यह अविद्वानों की बात है।

देखो! कोई सूर्य की ओर हाथ करे, तो क्या सूर्य की गर्मी घट जाती है? और क्या जिस बर्तन में गर्म जल किया जाता है, उसका मुख खुला रखने से अधिक गर्मी और आधा वा तीन भाग बन्द करने से अर्थात् आधे वा चौथे भाग से भाप अधिक और जोर से निकल कर बाहर के वायु में नहीं फैलती? और जो उसका मुख सर्वथा बन्द किया जाए, तो क्या बर्तन टूट फूट वा न उड़ जायेगा?

क्या जिसने अग्नि की ज्वाला के सामने आड़ की, तो उसकी ओर गर्मी कम होने से अग्नि के दूसरी ओर जिस किसी का हाथ वा कोई वस्तु हो, तो वह अधिक तप्त नहीं होती? और जब चारों ओर से आड़ कर अग्नि को रोका जाये, तो गोलाकार होकर ऊपर को क्या नहीं चढ़ेगा? और भाप के दूसरे बाजू हाथ जैसा कि इधर का जलता है वैसा उधर का न जलेगा? और हाथ की आड़ के हाथ में गर्मी इसलिए अधिक नहीं लगती कि वह गर्मी अगल बगल होके ऊपर उड़ जाती है।

देखो! तुम्हारी अत्यन्त भूल है, क्योंकि जो वायु के शरीर वाले जीव गर्म वायु से मर जाते, तो वैशाख और ज्येष्ठ मास में जब कि वायु अत्यन्त तप्त होय लू चलता है, तब वे क्या सब मर जाते हैं? और गर्म वायु के जीव जब कि पौष मास में अति शीत पड़ता है, तब वे क्या सब मर जाते हैं? इससे यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या ही है। क्योंकि जो ऐसा होता, तो ईश्वर इस सृष्टि में अग्नि और सूर्यादि को क्यों रचता? इससे जो तुम सत्यासत्य बातों का निश्चय करना चाहो, तो वेदादि सत्य शास्त्र पढ़ो और सुनो। जिससे यथार्थ ज्ञान पाके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी फल को प्राप्त हो सको। ऐसा न करके अपने मत के ग्रन्थों के विश्वास में रहोगे, तो यह उत्तम मनुष्य जन्म व्यर्थ ही नष्ट करोगे।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि, जीवों को अजर अमर मान कर फिर उनका मरण भी मानते हो। जो तुम खुला मुख रखने में प्रत्यक्ष दोष लिखते हो, तो प्रतीत होता है कि आप प्रत्यक्ष के लक्षणादि विद्या को ही नहीं जानते। इसी से किसी बड़े आदमी आदि से बातें करने में पल्ला लगाना अच्छा समझते हो। जो ऐसा है, तो फिर वैसा क्यों नहीं करते ? क्यों छोटे आदमी के सन्मुख हर वक्त मुख को बांधे रहते हो ? क्या बड़े आदमी का थूंकार छोटे आदमी के लग जाना अच्छा समझते हो ? क्या बड़े आदमी के मुख में कस्तूरी घुली होती है, और छोटे के नहीं ? यदि बड़े छोटों का विचार है, तो अपने चेलों के सन्मुख मुख क्यों बांधते हो ? क्योंकि जब किसी बड़े आदमी से बोला करो, तो बांध लिया करो, सदैव ये व्यर्थ बातें क्यों किया करते हो ?

देखो, इस बात को तुम नहीं जानते। बड़े आदमियों से सम्भाषण करते समय पल्ला लगाने से यह प्रयोजन है कि सभा में कभी कभी गुप्त वार्ता करनी पड़ती है। यदि मुख खुला रखा जाये अर्थात् कपड़ा न लगावें, तो अन्य मनुष्य जो निकट बैठे होयें, अवश्य सुन लें। जहां कोई तीसरा मनुष्य नहीं होता वहां बातें करने में पल्ला नहीं लगाते। और क्या पल्ला लगाने से दुर्गन्ध रुक सकता है ? इसमें इतना ही प्रयोजन है कि जो वायु को रोक के न बातें करें, तो उसके फैलने के साथ ही शब्द भी फैल जाये और कान में वायु लगने से ठीक-ठीक सुना भी न जाय। जैसा कि वायु के वेग से चलने में ठीक-ठीक नहीं सुना जाता।

देखो, कैसे अंधेर की बात है, क्या दुर्गन्ध को कान ग्रहण कर सकता है? नहीं। किन्तु सुगन्ध दुर्गन्ध का ग्रहण नासिका ही से होता है। इस बात का आपने प्रयोजन ही नहीं समझा है, जैसे गान विद्या न जानने वाला ध्रुपद को समझ नहीं सकता। क्योंकि जो तो विद्या की बातें हैं, उनको विद्या से ही समझ सकता है, अविद्वान् नहीं। हम शब्द, अर्थ और सम्बन्ध को वेद समझते हैं, कागज स्याही को नहीं। और कागज स्याही को (जड़ होने से) सुगन्ध दुर्गन्ध का ज्ञान वा सम्बन्ध नहीं होता। क्या जो तुम्हारे जैनी लोगों के ग्रन्थ वा पुस्तकों के कागज लाख आदि हैं, उनको बनाने और लाने वालों ने मुख बन्द कर बनाया और लिखा होगा ?

हम खुले मुख से वेदों का पाठ करना अत्युत्तम समझते हैं ? क्योंकि मुख बांधने से स्पष्ट यथार्थ उच्चारण नहीं होता, जैसा कि तुम्हारा सब अक्षरों का नासिका से अशुद्ध उच्चारण होता है। उसका उत्तर हमने पहले ही लिख दिया था कि निरनुनासिक को मुख बाँधकर सदैव सानुनासिक बोलना शुद्ध नहीं, परन्तु इसके समझने को विद्या चाहिये। और जो आप साधु बनते हो, तो साधु के क्या लक्षण हैं ? और आप स्वार्थी हो वा परमार्थी ? जो परमार्थी हो तो स्वार्थ की इच्छा अर्थात् बेफायदा हम नहीं बोलते, ऐसा क्यों कहते? और जो स्वार्थी हो तो साधु क्यों बनते हो?

जो आपको पक्षपात नहीं होता, तो मुख पर पट्टी बांधने का झूठा आग्रह क्यों करते? कि विना मुख पर पट्टी बांधने के हम नहीं बोलते। यदि ऐसा नियम था, तो प्रथम ही प्रथम (जंगल में भ्रमण करते समय) हमसे क्यो बोले थे, कि आपका नाम क्या है ? इत्यादि खुले मुख बोले। और अन्य जनों से भी बातें क्यों किया करते हो ? और भोजन समय में (स्वप्रयोजन के लिये) क्यों मुख खोलते हो ? क्या तुम अपने शरीर-पोषण, भोजन-छादन, मल-विसर्गादि कर्म भी सिवाय नहीं समझते होंगे ? यह बात मिथ्या है, क्योंकि जब हम सुनना चाहते थे, तब तो तुम सुनाने को खड़े भी न हुये। और जो तुम कहीं आते जाते नहीं, तो यहां कहां से आ गये ? क्या एक ही ठौर शिलावत् स्थित रहते हो ? भला जिसका रुपया चांदी का है, उसको कच्चेपन का क्या भय है ? क्या सबके सामने दिखलाने से ताम्र का हो जाता है ?

क्या तुम वहीं जाते हो जहां तुम्हारी बातें विना समझे बूझे मान लेवें ? हां ठीक है, तुम तो उन्हीं गोबर-गणेशों को सुना सकते हो, जो सुनते ही सत्यार्थ और प्रमाण शब्दों से हल्ला करके तुम को सन्तुष्ट किया करें। चाहे सत्य कहो वा असत्य, मान ही लें, जैसे दिल्ली की मिठाई। न पूछें न शंका करें न झूठ का खण्डन करें। ठीक समझ लिया, जैसे तुम और तुम्हारे सिद्धान्त हैं मानो बालकों का खेल। जो यह मुख की पट्टी बांधने का सहज उत्तर तुम नहीं दे सकते, तो छोटे से कंद में अनन्त जीवों के होने आदि का उत्तर तुम क्या दोगे ? किन्तु तुम्हारे तीर्थंकरों ने भी इन विद्या की

बातों को नहीं समझा था। जो समझते होते, तो ऐसी असम्भव बातें क्यों लिख जाते ?

सत्य है, जब से तुम लोग वेद-विरोधी होके तदुक्त सत्य मत को छोड़ के कपोल-कल्पित असत्य मत को ग्रहण किया है, तभी से विद्यारूप प्रकाश से पृथक् होकर अविद्यारूप अंधकार में प्रविष्ट हो गये हो। इसी से ईश्वर जीव और पृथिवी आदि तत्वों को यथावत् नहीं जान सकते हो। आओ, अब भी क्यों झूठे पक्षपात करके वेदोक्त सत्य मत को स्वीकार नहीं करते ? और मुख पर पट्टी बांधने आदि विद्या-विरुद्ध कपोल-कल्पित बातों को क्यों नहां छोड़ते ? और अन्यथा आग्रह करते जाते हो। सत्य है कि, जो तुम लोगों के आत्माओं में वेद विद्या का थोड़ा भी प्रकाश होता, तो ऐसी निर्मूल झूठी बातों को लिखने में लेखनी कभी नहीं चलती।

और जो तुम्हारे सिद्धान्त सत्य होते, तो चर्चा करने में ऐसे झूठे हीले बहाने क्यों पकड़ते? और ऐसे अशुद्ध लेख में व्यर्थ परिश्रम क्यों करते वा कराते ? अब भी जो सच्चे हो तो सन्मुख आकर थोड़े काल में सत्यासत्य का यथार्थ निश्चय क्यों नहीं कर लेते ? क्योंकि 'वादि-प्रतिवादिभ्यां निर्णीतोर्थः सिद्धान्तः'—जो वाद-प्रतिवाद से बात सिद्ध होती है, वही मानने योग्य है। जिस किसी ने मतमतान्तर वालों से पक्ष-प्रतिपक्षपूर्वक वादानुवाद नहीं किया, वह सत्यासत्य को ठीक-ठीक कभी नहीं जान सकता। इसी लिए तुम भी ऐसा क्यों नहीं करते ? परन्तु क्या करो, 'नाच न जाने आंगन टेढ़ा'।

ह०—दयानन्द सरस्वती

यह उक्त पत्र पूर्वोक्त पुरुष जब लेकर, चले, तो अनुमान २०० आदमियों के और एकत्र हो गये थे। उन्होंने पहुंचते ही साधु जी को उक्त पत्र पढ़ सुनाया, और निवेदन किया कि अब आप इसका फिर उत्तर दीजिये। परन्तु पाठकगण ! उत्तर देने को तो विद्या चाहिये। न जाने पहले किसकी सहायता से उत्तर लिखा था ? विशेष क्या लिखूं। साधु जी के छक्के छूट गये। अन्त को बहुत इन लोगों ने कहा सुना, तो यही मुख से निकला कि—'म्हारे से तो कोई नहीं बने, आपाँ तो साधु हैं[1]।' जब लोगों ने देखा कि जब

१. यह वाक्य मारवाड़ी भाषा का है।

साधु ही ने अपने मुख से हार मान ली, तो अब विशेष कहना उचित नहीं। यह समझ कर 'नमस्ते' कह के चले आये, और सर्व वृत्तान्त रावसाहब और स्वामी जी से निवेदन कर अपने अपने निज स्थानों को चले गये। **ह०—पं० बृद्धिचन्द श्रीमाली, मसूदा**

शास्त्रार्थ-मसूदा (२)

[यह शास्त्रार्थ बाबू बिहारीलाल ईसाई के साथ राव साहब बहादुर सिंह जी मसूदा का श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती की मध्यस्थता में सम्पन्न हुआ।]

इसके पश्चात् सावन सुदी ४ सं० १९३८ को फिर बाबू बिहारी लाल ईसाई नये शहर (ब्यावर) से स्वामीजी से मिलने को आया। थोड़ी देर के पश्चात् बातों ही बातों में धर्म-विषय की चर्चा होने लगी। तिस पर श्रीयुत रावसाहब ने बा० बिहारीलाल से कहा कि—आइये, मेरी और आपकी परस्पर वार्ता होनी उचित है। क्योंकि यदि आप के पादरी साहब आते, तो उनसे स्वामीजी वार्तालाप करते। सो अब न्याययुक्त उचित यही है कि आप पादरी साहब के शिष्य और मैं स्वामीजी का। इस लिए मुझसे और आपसे ही वार्ता होनी अत्युत्तम है, और स्वामीजी हम दोनों के मध्यस्थ रहेंगे। यह बात रावसाहब की बाबू बिहारीलाल ने स्वीकार कर स्वामीजी को मध्यस्थ किया, और इस प्रकार से प्रश्नोत्तर होने लगे—

रावसाहब बहादुरसिंह जी—तुम्हारा ईमान पूरा है वा नहीं ?

बाबू बिहारीलाल—हमारा विश्वास प्रभु परमेश्वर पर है।

रा०[1]—तुम्हारा विश्वास पूरा है, वा अधूरा ?

बा०[1]—हमारा विश्वास पूरा है।

रा०—जो तुम्हारा पूरा विश्वास है, तो इस पहाड़ को यहां से हटा दो। क्योंकि आप लोगों के नये नियम के पर्व १० आयत २० में मसीह उपदेश करते हैं कि—'अगर तुम लोगों में राई बराबर विश्वास होय तो, इस पहाड़ को उठाय दूर ले जा सकते हो'।

१. बा० से बाबू बिहारीलाल (देशी पादरी) तथा रा० से राव साहब बहादुर सिंह जी मसूदा अभिप्रेत हैं।

बा०—विश्वास दो तरह का है, उनमें से आप कौनसा पूछते हो?

रा०—वे दो विश्वास कौन कौन से हैं ?

बा०—पहला विश्वास यह है कि—ईश्वर को अपना सरजनहार समझना। दूसरा यह कि—किसी की बड़ाई की तरफ झुक कर विश्वास करना। जैसे एक आदमी ने 'कोसालस' के पास आकर कुछ रुपये नजर किये, और कहा कि—मुझे भी यही ताकत मिले। उसने कहा कि—ताकत ईश्वर की रुपये-पैसे से नहीं मिलती।

रा०—आप चाहे जौन से विश्वास व ईमान से पहाड़ को हटा दो। यदि नहीं हटा सकते, तो आप में राई बराबर भी विश्वास नहीं।

बा०—इस प्रश्न का तात्पर्य हर एक ईसाई पर नहीं लग सकता। इसलिए कि उस वक्त मसीह के शागिर्दगान अपना बड़प्पन पाने के लिये यह अरज की, ताहम भी उनका विश्वास प्रभु पर था। और यह बात उनके बड़प्पन पर थी, और मसीह ने भी उस बड़प्पन पर जवाब दिया। अब मेरा विश्वास, जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूं, प्रभु परमेश्वर पर पूरा है कि—वह हमारा पैदा करने वाला और मुक्तिदाता है। और इस बात की अभिलाषा हम नहीं रखते कि हम करामाती हो जायें।

रा०—हर एक ईसाई का विश्वास माननीय एक सा है वा भिन्न भिन्न ? जो एक सा है, तो सब ईसाइयों में उस विश्वास के राई भर अंश का फल कहने मात्र से पहाड़ का हट जाना क्यों नहीं ? और परमेश्वर पर आपका पूर्ण विश्वास है, तो क्या उस विश्वास में वह सामर्थ्य नहीं है ? और ईसामसीह जिस विश्वास के बल से आश्चर्य कर्म करते थे, वह विश्वास यही आपका है जिसको आप मानते हैं, वा दूसरा ? यदि दूसरा अर्थात् भिन्न है, तो ईसामसीह ने आप लोगों से कपट रक्खा, कि किसी को अपना विश्वास न बताया, और जो बताया तो उनमें और आप लोगों में उस विश्वास का फल इस वक्त क्यों नहीं दृष्टि पड़ता ? मुझको तो यह निश्चय होता है कि ईसामसीह में किसी का वह विश्वास पूरा प्राप्त कराने का सामर्थ्य नहीं है। जो होता तो उनके साथ बारह शिष्य प्रत्यक्ष थे। जब उनका ही विश्वास पूरा न करा सका, तो अब आप लोगों का विश्वास पूरा क्यों कर हो सकता है, वा करा सकता है ?

जब ऐसा है, तो तुम लोगों को ईसामसीह मुक्ति आदि भी नहीं दे सकता। जो आप उसके पैदा किये हुए हैं, तो मर भी जायेंगे। क्योंकि जो पैदा होता है, उसका नाश भी अवश्य होता है। जब नाश हुआ तो जिस पर आप विश्वास कर रहे है कि हम को मुक्ति मिलेगी, वह व्यर्थ हो जायगी। क्योंकि मुक्ति का भोगना नाशधर्म वाला है, तो नित्य-सुख जो आपके मतानुसार है, उसको कौन भोगेगा? जो आप कहें कि—उत्पत्ति तो होती ही है, नाश नहीं होता। यह बात सृष्टिक्रम और विद्या के विरुद्ध है कि जिसकी उत्पत्ति तो होय और नाश न हो।

प्रभु के पूरे विश्वास से बड़प्पन और करामात प्राप्त होती है, वा नहीं? जो होती है, तो आपको इस पहाड़ का हटा देना अवश्य होगा, और जो नहीं तो परमेश्वर-विश्वास में वैसा बड़प्पन नहीं रहा। तो अब आप बतलाइए कि वह फिर दूसरा विश्वास कौनसा है, कि जिससे बड़प्पन और करामात प्राप्त होती है? क्या परमेश्वर के विश्वास से भी किसी अन्य का विश्वास बड़ा है? और क्या परमेश्वर से भी कोई वस्तु उत्तम है? वा परमेश्वर में करामात है वा नहीं? जो है तो अपने ही विश्वास से वा अन्य के? और उसके विश्वासियों में भी वैसा ही उचित होता है वा अन्य?

जब खुद ईसामसीह ने उनसे कहा कि जो तुम में राई भर ईमान होता, तो इस पहाड़ से कहते कि यहां से चला जा, तो चला जाता। इससे सिद्ध होता है कि उनमें राई भर भी ईमान न था। तो ईमान-रहितों की एकत्र की वा बनाई वा लिखी हुई अंजील भी विश्वास के योग्य कैसे हो सकती है? जो कहो कि—ईसामसीह के मरने के पश्चात् (१२ शागिर्दों का) ईमान दुरुस्त हो गया था, पश्चात् अंजील बनाई। यह भी ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि जो उसके सामने अर्थात् जिनको ईसामसीह ईमानदार बनाना चाहता और परिश्रम करता था, तो भी नहीं बन सके, तो पश्चात् कैसे बन सकते हैं?

बा०—स्वामी जी महाराज! मैं इसका उत्तर अभी नहीं दे सकता। अब मैं अपने गृह नये शहर (ब्यावर) को जाता हूं। पादरी साहब[1] से पूछ कर उत्तर दूंगा।

१. यूरोपीय पादरी शूलब्रेड से अभिप्राय है।

इतना कह बा० बिहारीलाल ईसाई थोड़ी देर पश्चात् अपने गृह की ओर पधारे, परन्तु उक्त लेख का उत्तर फिर आकर अर्थात् आज की तारीख तक न दिया। ह०—पं० **वृद्धिचन्द श्रीमाली, मसूदा**

[एक कबीरपन्थी साधु से प्रश्नोत्तर]

एक साधु कबीरपन्थी नये शहर (ब्यावर) से स्वामीजी के पास आया, और परस्पर प्रश्नोत्तर होने लगे। प्रथम स्वामीजी ने कहा कि—आपके मत के कितने ग्रन्थ हैं? साधुजी ने कहा—१४ करोड़ पुस्तक हैं। स्वामीजी ने कहा—यह बात मिथ्या है। कारण, इतने ग्रन्थों की संख्या और रखने को कितनी जगह चाहिये? फिर स्वामीजी ने पूछा कि—तुम्हारे कबीर कौन थे? और जब तुम कबीर-मत में होते हो, तब तुम उनकी प्रसादी और गुरु का उच्छिष्ट भी खाते हो कि नहीं? साधु—उच्छिष्ट खाते हैं। कबीर का जन्म नहीं है, अजन्मा हैं, मां बाप भी नहीं। स्वामीजी—कबीरजी काशी में कुकर्म से पैदा हुये थे[1], इस कारण उसकी मां ने उसे बाहर फेंक दिया था। उसी समय वहां पर (जहां कबीर पड़ा था) एक जुलाहा, जो जाति का मुसलमान था, आ निकला और कबीर को उठाय घर में ले आया और निज पुत्र सा जान उसको पाला, और उसको समर्थवान् किया। अब देखिये कि उसका जन्म भी हुआ और मां बाप भी ठहरे। उस बात को सुन साधु चुप हो रहा और कुछ उत्तर न दिया।

फिर श्रावण सुदी १५ सं० १९३८ को रावसाहब की ओर से सोनमगरी पर बड़ी धूमधाम और उत्साह सहित हवन हुआ, जिसमें ५०० आदमियों के लगभग एकत्र थे। हवन के पश्चात् ब्रह्मभोज भी सत्कार-पूर्वक कराया गया। फिर निम्नलिखित पुरुषों ने प्रणपूर्वक सबके सन्मुख वेदधर्म को स्वीकार किया। फिर उसी समय स्वामीजी से उचित पुरुषों ने यज्ञोपवीत लेने की अभिलाषा प्रकट की। इस कारण श्री स्वामीजी महाराज ने योग्यपुरुषों को यज्ञोपवीत भी दिया। यज्ञोपवीत लेने वाले महानुभावों में निम्नलिखित के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—

ठाकुर—१. प्रतापसिंहजी केलू के २. अखेसिंहजी वेगलियावास के ३. चैनसिंहजी आसीन ४, प्रतापसिंहजी वरवाड़े ५. माधोसिंहजी

१. कबीर के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि वे एक बिधवा ब्राह्मणी की जारज संतान थे।

वेगलियावास ६. अदूलसिंह जी किपाय ७. प्रतापसिंह जी मेरता ८. नाहरसिंह जी जामोड़ा ६. उगमसिंह जी किशनगढ़ १०. चतुर सिंह जी गहलोत मसूदा ११. हरिसिंहजी मेरता १२. लखेसिंहजी किपाय १३, गम्भीर जी थावड़ा १४. नामदेव जी जगपुरा १५. बलवन्तसिंह जी किपाय १६. महताब जी थावड़ा वाला।

जैनी—१. राजमल्लजी कोठारी २. किशनजी कोठारी ३. अनन्तजी कोठारी ४. श्योदानजी कोठारी ५. हीरालालजी तातेड़ ६. कजोड़जी चोरड़िया ७. छगनजी बोहरा ८. पानजी कोठारी ६. अमरसिंहजी कोठारी १०. बल्लभजी ११. राजजी मेहता १२. ऋषभदासजी वापना १३. हंसराजजी कोठारी १४. बालकिशनजी मेहता १५. किशनजी कोठारी १६. श्योदानजी मेहता १७. श्योबागजी कोठारी १८. रामचन्द्रजी अग्रवाल १६. ओनाडजी पिरोहित २० लालजी पिरोहित लोढ़ाने का २१. बालकिशनजी मेहता २२. औतारजी सोकला [२३. कल्याणसिंहजी कोठारी २४. जसवन्तसिंहजी कोठारी २५. किसनाजी २६. छगनजी कोठारी २७. कजोड़ीमल्लजी नार २८. गोपालजी घूत।

अन्य—१. चंपालालजी कायस्थ २. छुट्टनलालजी कायस्थ ३. कल्लूजी चारण ४. रांमदयालजी ब्राह्मण ५. श्योबख्शजी आदि।

उपसंहार—इसी प्रकार यहाँ आनन्द मंगल होते रहे। इसी अवसर में रायपुर के ठाकुर का निमंत्रणपत्र स्वामीजी के पास आया। इस कारण श्रीमद् आर्यकुलभूषण दिग्विजयी श्री स्वामीजी महाराज ने रायपुर जाने का विचार ठाना। तब श्री रायसाहबजी ने श्री स्वामीजी से निवेदन किया कि महाराज! आप का एक व्याख्यान महलों में हो जाय, तो अति उत्तम है। इस बात को श्रीस्वामीजी ने स्वीकार किया और भाद्र बदी ८ को महाराज का व्याख्यान राजनीति विषय में महलों में हुआ। तहां बड़ा आनन्द रहा। व्याख्यान के पश्चात् श्री रावसाहब ने ५०० रु० वेद-भाष्य की सहायता में स्वामी जी की भेंट किये।

मसूदा संवत् १६३८ वि० ह०—पं० वृद्धिचन्द श्रीमाली।

[सूचना—अवशिष्ट शास्त्रार्थ-उदयपुर व परिशिष्ट आदि समस्त सामग्री आगामी अङ्क में प्रकाशित की जायेगी। —सम्पादक]

८. शास्त्रार्थ-उदयपुर

सम्पादकीय

महर्षि के उदयपुर निवास के समय मौलवी अब्दुल रहमान सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस तथा जज अदालत उदयपुर के साथ स्वामीजी का यह शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ लिखित रूप में हुआ था। **शास्त्रार्थ के विषय तथा तिथियां निम्नलिखित थीं—**

११ सितम्बर, १८८२, सोमवार। विषयः—इलहामी पुस्तक कौन सी है? संसार के सब मनुष्य एक ही जाति के हैं वा कई जातियों के? मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा?

१३ सितम्बर, १८८२, बुधवार। विषयः—वेद किसकी रचना है? पुराण, मत की पुस्तक हैं या विद्या की?

१७ सितम्बर १८८२, रविवार। विषयः—वेद में अन्य धर्मों की पुस्तकों से क्या विशेषता है?

उपर्युक्त शास्त्रार्थ का उल्लेख ऋषि के भाद्रपद शुदि (?) सं० १६३६ के पत्र में भी मिलता है। पत्र में लिखा है—"यहां श्री महाराणा जी प्रतिदिन मिलते है और समागम करते हैं। और एक मौलवी से प्रश्नोत्तर प्रतिदिन होते हैं, और वे लिखे भी जाते हैं, सो तुम्हारे पास भेजेंगे"।

यह शास्त्रार्थ पं० लेखराम द्वारा संग्रहीत ऋषि के जीवन-चरित में अक्षरशः प्रकाशित हुआ है। उसके प्रारम्भ में लेखरामजी ने निम्न टिप्पणी लिखी है.—

["मुबाहिसा स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और मौलवी अब्दुल रहमान सुपरिन्टेन्डेन्ट व जज अदालत उदयपुर, मुल्क मेवाड़।]

पं० ब्रजनाथ जी हाकिम सायर, मुल्क मेवाड़ (जो उस वक्त इस मुबाहिसा के लिखने वाले थे) ने बयान किया कि मैं उस वक्त स्वामी जी के दरमियान मुतर्जम (अनुवादक) भी था। अरबी के दकीक (क्लिष्ट) अल्फाजों का तर्जुमा स्वामी जी को और संस्कृत के दकीक अल्फाज का तर्जुमा मौलवी जी को बता दिया करता था। यह मुबाहिसा मैंने उस वक्त अपने हाथ से लिखा, जिसकी दो असल कापी मेरे पास पैंसिल से लिखी हुई अभी तक मौजद हैं।

तीन आदमी इस मुबाहिसा के लिखने वाले थे । एक पं० ब्रजनाथ जी हाकिम सायर, दूसरे मिर्जा मोहम्मद खां वकील, हाल मेम्बर कौंसिल टोंक, तीसरे मुंशी रामनारायण जी सरिश्तेदार बागे कलाँ सरकारी, जिनमें से पहले और तीसरे साहिबान की असल कापियां हमको मिली हैं, और जिनकी मौलवी साहब ने भी तस्दीक की । मगर उनकी दानाई और ईमानदारी पर अफसोस है। उस वक्त तो कोई माकूल जवाब न बन आया और न बाजे अर्जा, दिसम्बर १८८६ में बेबुनियाद और झूठे हवाले से कुछ का कुछ असल तहरीर के खिलाफ शाया करके अपनी दीनदारी का शवोफां दिखलाया । इस मुबाहिसा के रोज सामईन हिन्दू मुसलमान खास आम की बहुत कसरत थी। यहां तक कि श्री दरबार वैकुण्ठवासी महाराज सज्जन सिंह जी भी मुबाहिसा समाअत फर्माने को तशरीफ फर्मा हुये थे।"

इस टिप्पणी के पश्चात् पं० लेखराम संग्रहीत जीवन चरित में शास्त्रार्थ का पाठ प्रकाशित हुआ है, और अन्त में एक नोट इस प्रकार पुनः लिखा गया है—

"पण्ड्या मोहनलाल जी ने कहा कि मौलवी साहब के मुबाहिसा के अव्वल रोज तो राणासाहब नहीं आये थे, मगर उन्होंने मुबाहिसा तहरीरी होना मंजूर फरमाया था । आखिर रोज श्री हजूर तशरीफ लाये थे, और मौलवी साहब की जिद्द देखकर दरबार ने इर्शाद फरमाया कि जो कुछ स्वामीजी ने कहा है वह बेशक ठीक है। फिर मुबाहिसा नहीं हुआ। कविराज श्यामलदास जी ने भी इसकी ताईद की"।

पं० लेखराम संगृहीत जीवन चरित में उद्धृत होने के अतिरिक्त यह शास्त्रार्थ अभी तक पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुआ है। देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने स्वसंग्रहीत जीवन चरित में इसका संक्षेप में उल्लेख किया है। यहां 'दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह' (कविराज रघुनन्दन सिंह निर्मल सम्पादित) से यह **शास्त्रार्थ-उदयपुर** उद्धृत किया जाता है ।

शास्त्रार्थ-उदयपुर

[स्वामी दयानन्द जी महाराज और मौलवी अब्दुर्रहमान साहब सुपरिन्टैन्डैन्ट पुलिस तथा न्यायाधीश न्यायालय उदयपुर, मेवाड़ देश के मध्य में होने वाला शास्त्रार्थ]

११ सितम्बर १८८२, भादों बदी चौदस, सं० १९३९ सोमवार।

प्रथम प्रश्न—

मौलवी साहब :—ऐसा कौन सा मत है, जिसकी मूल पुस्तक सब मनुष्यों की बोलचाल और समस्त प्राकृतिक बातों को सिद्ध करने में पूर्ण हो ? जब बड़े-बड़े मतों पर विचार किया जाता है, जैसे भारतीय वेद पुराण, या चीन वाले चीनी जापानी बर्मी बौद्ध वाले, फार्सी जिन्द [अवेस्ता] वाले, यहूदी तौरते वाले, नसरानी इन्जील वाले, मौहम्मदी कुरान वाले, तो प्रकट होता है कि उनके धार्मिक नियम और मूल विशेष एक देश में एक भाषा के द्वारा एक प्रकार से ऐसे बनाये गये हैं, जो एक दूसरे से नहीं मिलते। और इन मतों में से प्रत्येक मत के समस्त गुण और विशेष चमत्कार उसी देश तक सीमित हैं, जहां वह बना है। जिनमें से कोई एक लक्षण तथा चिह्न उसी देश के अतिरिक्त दूसरे देश में नहीं पाया जाता, प्रत्युत दूसरे देश वाले अनभिज्ञता के कारण उसे बुरा जानकर उसके प्रति मानवी व्यवहार तो क्या उसका मुख तक देखना नहीं चाहते। ऐसी दशा में सब मतों में से कौन-सा मत सत्य समझना चाहिये ?

स्वामी जी :—मतों की पुस्तकों में से विश्वास के योग्य एक भी नहीं, क्योंकि [वे सब] पक्षपात से पूर्ण हैं। जो विद्या की पुस्तक पक्षपात से रहित है, वह मेरे विचार में सत्य है। और ऐसी पुस्तक का साधारण प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध न होना भी आवश्यक है। मैंने जो खोज की है, उसके अनुसार वेदों के अतिरिक्त कोई पुस्तक ऐसी नहीं है जो विश्वास के योग्य हो। क्योंकि समस्त पुस्तकें किसी न किसी देश विशेष की भाषा में हैं, और वेद की भाषा किसी देश की विशेष भाषा नहीं, केवल विद्या की भाषा है। क्योंकि यह विद्या की पुस्तक है, इसी कारण से किसी मत विशेष

से सम्बन्ध नहीं रखती। यही पुस्तक समस्त देशीय भाषाओं का मूल कारण है[१], और पूर्ण होने से प्रसिद्ध भलाइयों तथा निषिद्ध बुराइयों को परिचायक है, और समस्त प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है।

मौलवी:—क्या वेद मत की पुस्तक नहीं है?

स्वामी:—वेद मत की पुस्तक नहीं है, प्रत्युत विद्या की पुस्तक है।

मौलवी:—मत का आप क्या अर्थ करते हैं?

स्वामी:—पक्षपात सहित को मत कहते हैं, इसी कारण से मत की पुस्तक सर्वथा मान्य नहीं हो सकती।

मौलवी:—हमारे पूछने का अभिप्राय यह है कि समस्त मनुष्यों की भाषाओं पर तथा समस्त मनुष्यों के आचार पर, और समस्त प्राकृतिक नियमों पर कौन-सी पुस्तक पूर्ण है? सो आपने वेद निश्चित किया। सो वेद इस योग्य है वा नहीं?

स्वामी:—हां है।

मौलवी:—आपने कहा कि वेद किसी देश की भाषा में नहीं। जो किसी देश की भाषा नहीं होती, उसके अन्तर्गत समस्त भाषायें कैसे हो सकती हैं?

स्वामी:—जो किसी देश विशेष की भाषा होती है, वह किसी दूसरी देश-भाषा में व्यापक नहीं हो सकती। क्योंकि उसी में बद्ध (सीमित) है।

मौलवी:—जब एक देश की भाषा होने से वह दूसरे देश में नहीं मिलती, तो जब वह किसी देश की है ही नहीं, तो सब में व्यापक कैसे हो सकती है?

स्वामी:—जो एक देश की भाषा है, उसका व्यापक कहना सर्वथा विरुद्ध है। और जो किसी देश विशेष की भाषा नहीं वह सब भाषाओं में व्यापक है, जैसे आकाश किसी देश विशेष का नहीं है, इसी से सब देशों में व्यापक है। ऐसे वेद की भाषा भी किसी देश विशेष से सम्बन्ध न रखने से व्यापक है।

मौलवी:—यह भाषा किसकी है?

१. यही बात सत्यार्थप्रकाश और पूना-प्रवचन में भी कही है।

स्वामीः—विद्या की।

मौलवीः—बोलने वाला इसका कौन है ?

स्वामीः—इसका बोलने वाला सर्वदेशी है ?

मौलवीः—तो वह कौन है ?

स्वामीः—वह परब्रह्म है।

मौलवीः—यह किसको सम्बोधन की गई है ?

स्वामीः—आदि सृष्टि में इसके सुनने वाले चार ऋषि थे, जिनका नाम अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा था। इन चारों ने ईश्वर से शिक्षा प्राप्त करके दूसरों को सुनाया।

मौलवीः—इन चारों को ही विशेष रूप से क्यों सुनाया ?

स्वामीः—वह चार ही सब में पुण्यात्मा और उत्तम थे ?

मौलवीः—क्या इस बोली को वह जानते थे ?

स्वामी—उस जनाने वाले ने उसी समय उनको भाषा भी जना दी थी, अर्थात् उस शिक्षक ने उसी समय उनको भाषा का ज्ञान दे दिया।

मौलवीः—इसको आप किन युक्तियों से सिद्ध कर सकते हैं ?

स्वामीः—विना कारण के कार्य कोई नहीं हो सकता।

मौलवीः—विना कारण के कार्य होता है या नहीं ?

स्वामीः—नहीं।

मौलवीः—इस बात की क्या साक्षी है ?

स्वामीः—ब्रह्मादिक अनेक ऋषियों की साक्षी है, और उनके ग्रन्थ भी विद्यमान हैं।

मौलवीः—यह साक्षी सन्देहात्मक और बुद्धि-विरुद्ध है। कारण कथन कीजिये।

स्वामीः—वेद की साक्षी स्वयं वेद से प्रकट है।

मौलवीः—इसी प्रकार सब मतवाले भी अपनी-अपनी पुस्तकों में कहते हैं।

स्वामीः—ऐसी बात दूसरे मतवालों की पुस्तकों में नहीं है, और न वह सिद्ध कर सकते हैं।

मौलवीः—पुस्तक वाले सभी सिद्ध कर सकते हैं।

स्वामीः—मैं पहले से कह चुका हूं कि मतवाले ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते, और यदि कर सकते हैं तो बताईये कि मौहम्मद साहब के पास कुरान कैसे पहुंचा ?

मौलवीः—जैसे चारों ऋषियों के पास वेद आया।

नोटः—खेद है कि मौलवी साहब ने विना सोचे समझे ऐसा कह दिया। यह किसी प्रकार ठीक नहीं। न तो कुरान आदि सृष्टि में मौहम्मद साहब की आत्मा में प्रकाशित हुआ और न उसमें वर्णित कहानियां ही ऐसी हैं, जो आदि सृष्टि से सम्बन्धित हों, और न उसकी भाषा ही ऐसी है। मौहम्मद साहब और खुदा के मध्य में तीसरा जिबराइल और असंख्य फरिश्तों की चौकीदारी और पहरा और आकाश से उतरना आदि समस्त बातें ऐसी हैं. जिनसे कोई मौहम्मदी भाई इन्कार नहीं कर सकता। इसलिये कुरान किसी प्रकार भी इस विशेषण का पात्र नहीं हो सकता, और उस्मान और कुरानों के बदलने की कहानी इसके अतिरिक्त है। —**सम्पादक**]

दूसरा प्रश्न—

मौलवीः—समस्त संसार के मनुष्य एक जाति के हैं, अथवा कई जातियों के ?

स्वामीः—जुदी-जुदी जातियों के हैं।

मौलवीः—किस युक्ति से ?

स्वामीः—सृष्टि के आदि में ईश्वरीय सृष्टि में उतने जीव मनुष्य-शरीर धारण करते हैं कि जितने गर्भ सृष्टि में शरीर धारण करने के योग्य होते हैं, और वह जीव असंख्य होने से अनेक हैं।

मौलवीः—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ?

स्वामीः—अब भी सब ही अनेक मां-बाप के पुत्र हैं।

मौलवीः—इसके विश्वसनीय प्रमाण कहिए।

स्वामीः—प्रत्यक्षादि आठों प्रमाण।

मौलवीः—वह कौन से हैं ?

स्वामीः—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, संभव, अभाव।

मौलवीः—इन आठों में से एक-एक का उदाहरण दे कर सिद्ध कीजिए।

मौलवी:—यह जो आकार मनुष्यों के हैं, इनके शरीर एक प्रकार के बने अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार के बने ?

स्वामी:—मुख आदियों में एक से हैं, रंगों में कुछ भेद है।

मौलवी:—किस किस के रंग में क्या-क्या भेद है ?

स्वामी:—छोटाई-बड़ाई में किंचिन्मात्र अन्तर है।

मौलवी:—यह अन्तर एक देश अथवा एक जाति में एक ही प्रकार के हैं, अथवा भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं ?

स्वामी:—एक-एक देश में अनेक हैं। जैसे एक मां-बाप के पुत्रों में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं।

मौलवी:—हम जब संसार की अवस्था पर दृष्टिपात करते हैं, तो आपके कथनानुसार नहीं पाते। एक ही देश में कई जातियां जैसे हिन्दी, हब्शी, चीनी इत्यादि देखने में पृथक् पृथक् विदित होती है—अर्थात् चीन वाले दाढ़ी नहीं रखते और तिकौने मुंह के होते हैं। हब्शी, मलन्गई, चीनी तीनों की आकृतियां परस्पर नहीं मिलती। एक ही देश में यह भेद क्यों कर है ?

स्वामी:—उनमें भी अन्तर है।

मौलवी,—दाढ़ी न निकलने का क्या कारण है ?

स्वामी:—देश काल और मां बाप आदि के शरीरों में कुछ कुछ भेद है। समस्त शरीर रज वीर्य्य के अनुसार बनते हैं। वात, पित्त, कफ आदि धातुओं के संयोग वियोग से भी कुछ कुछ भेद होते हैं।

मौलवी:—हम समस्त संसार में तीन प्रकार के मनुष्य देखते हैं। जिनका विभाजन इस प्रकार है—दाढ़ी वाले, विना दाढ़ी के, घूंघरू बाल वाले। दाढ़ी वाले भारतीय, फिरंगी, अर्बी, मिश्री आदि। बेदाढ़ी वाले चीनी, जापानी, कैमिस्टका के। घूंघरू बाल बाल वाले हब्शी। इन तीनों की बनावट और प्रकार में बहुत सा भेद है। एक दूसरे से नहीं मिलता। और यह भेद आपके कथन अनुसार ऊपर वाले कारणों से है। यदि एक देश में रहने वाले यह तीनों प्रकार के मनुष्य दूसरे देश में जाकर रहें तो कभी भेद नहीं होता, जाति समान है। इस अवस्था में संसार के मूलरूप आपके कथनानुसार तीन हुये—अधिक नहीं।

स्वामी:—भोटियों को किसमें मिलाते हैं। वह किसी से नहीं मिलते। इस प्रकार तीन से अधिक जाति विदित होती है।

मौलवी:—जैसा भेद इन तीनों में है वैसा दूसरे में नहीं। तीनों जातियों का परस्पर मिल जाना इस थोड़े भेद का कारण है परन्तु इन तीनों की आकृति एक दूसरे से नहीं मिलती।

तीसरा प्रश्न——

मौलवी:—मनुष्य की उत्पत्ति कब से है, और अन्त कब होगा ?

स्वामी:—एक अरब छियानवे करोड़ और कितने लाख वर्ष उत्पत्ति को हुये, और दो अरब वर्ष से कुछ ऊपर तक रहेगी।

मौलवी:—इसका क्या कारण और प्रमाण है ?

स्वामी:—इसका हिसाब विद्या और ज्योतिष शास्त्र से है।

मौलवी:—वह हिसाब बतलाइये ?

स्वामी:—भूमिका[1] के पहले अंक में लिखा है, और हमारे ज्योतिष-शास्त्र से सिद्ध हैं, देख लो।

[१३ सितम्बर १८८२, बुधवार, भादों सुदी एकम १९३९]

चौथा प्रश्न——

मौलवी:—आप धर्म के नेता हैं या विद्या के अर्थात् आप किसी धर्म के मानने वाले हैं, या नहीं ?

स्वामीजी:—जो धर्म विद्या से सिद्ध होता है, उसको मानते हैं।

मौलवी:—आपने किस प्रकार जाना कि ब्रह्म ने चारों ऋषियों को वेद पढ़ाया ?

स्वामी:—प्रदान किये गये वेदों के पढ़ने से और विश्वसनीय विद्वानों की साक्षी से।

मौलवी:—यह साक्षी आप तक किस प्रकार पहुंची ?

१. अर्थात् ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अङ्क में। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण मासिक अंकों के रूप में छपा था। सम्पा०

स्वामीः—शब्दानुक्रम से और उनके ग्रन्थों से ।

मौलवीः—प्रश्नों से पूर्व परसों यह निश्चित हुआ था कि उत्तर बुद्धि के आधार पर दिए जायेंगे, पुस्तकों के आधार पर नहीं । अब आप उसके विरुद्ध ग्रन्थों की साक्षी देते हैं ।

स्वामीः—बुद्धि के अनुकूल वह है जो विद्या से सिद्ध हो, चाहे वह लिखित हो अथवा वाणी द्वारा कहा जावे । समस्त बुद्धिमान् इसको मानते हैं, और आप भी ।

मौलवीः—इस कथन के अनुसार ब्रह्मा का चारों ऋषियों को वेद की शिक्षा देना, विद्या अथवा बुद्धि द्वारा किस प्रकार सिद्ध होता है ?

स्वामीः—विना कारण के कार्य नहीं हो सकता, इसलिये विद्या का भी कोई कारण चाहिये ? और विद्या का कारण वह है कि जो सनातन हो । यह सनातन विद्या परमेश्वर में उसकी कारीगरी को देखने से सिद्ध होती है । जिस प्रकार वह समस्त सृष्टि का निमित्त कारण है, उसी प्रकार उसकी विद्या भी समस्त मनुष्यों की विद्या का कारण है । यदि वह उन ऋषियों को शिक्षा न देता, तो सृष्टि नियम के अनुकूल यह जो विद्या की पुस्तक है—इसका क्रम ही न चलता ।

मौलवीः—ब्रह्मा ने वेद चारों ऋषियों को पृथक् पृथक् पढ़ाया अथवा एक साथ क्रमशः शिक्षा दी अथवा एक काल में पढ़ाया ?

स्वामीः—ब्रह्मा व्यापक होने के कारण चारों को पृथक् पृथक् और क्रमशः पढ़ाता गया, क्योंकि वह चारों परिमित बुद्धि वाले होने के कारण एक ही समय में कई विद्याओं को नहीं सीख सकते थे । और प्रत्येक की बुद्धि-प्राप्ति की शक्ति भिन्न भिन्न होने के कारण कभी चारों एक समय में और कभी पृथक् पृथक् समझ कर एक साथ पढ़ते रहे । जिस प्रकार चारों वेद पृथक् पृथक् हैं, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को एक एक वेद पढ़ाया ।

मौलवीः—शिक्षा देने में कितना समय लगा ?

स्वामीः—जितना समय उनकी बुद्धि की दृढ़ता के लिए आवश्यक था[1] ।

१. पूना-प्रवचन पृष्ठ ६० में 'पांच वर्ष' का संकेत है । सम्पा०

मौलवी:—पढ़ाना मानसिक प्रेरणा के द्वारा था अथवा शब्द अक्षर आदि के द्वारा, जो वेद में लिखे हुए हैं, अर्थात् क्या शब्द अर्थ सम्बन्ध सहित पढ़ाया ?

स्वामी:—वही अक्षर जो वेद में लिखे हुए हैं, शब्दार्थ सम्बन्ध सहित पढ़ाए गये।

मौलवी:—शब्द बोलने के लिए मुख, जिह्वादि साधनों की अपेक्षा है। शिक्षा देने वाले में यह साधन हैं या नहीं ?

स्वामी:—उसमें यह साधन नहीं हैं, क्योंकि वह निराकार है। शिक्षा देने के लिए परमेश्वर अवयवों तथा बोलने के साधनादि से रहित है।

मौलवी:—शब्द कैसे बोला गया ?

स्वामी—जैसे आत्मा और मन में बोला सुना और समझा जाता है।

मौलवी:—भाषा को जाने बिना शब्द किस प्रकार उनके मन में आये ?

स्वामी:—ईश्वर के डालने से, क्योंकि वह सर्वव्यापक है।

मौलवी:—इस सारे वार्तालाप में दो बातें बुद्धि के विरुद्ध हैं। प्रथम यह कि ब्रह्मा ने केवल चार ही मनुष्यों को उस भाषा में वेद की शिक्षा दी, जो किसी देश अथवा जाति की भाषा नहीं। दूसरे यह कि उच्चारित शब्द जो पहले से जाने हुए न थे—दिल में डाले गए और उन्होंने ठीक समझे। यदि यह स्वीकार किया जावे, तो फिर समस्त बुद्धिविरुद्ध बातें जैसे चमत्कार आदि सब मतों के सत्य स्वीकार करने चाहियें।

स्वामी:--यह दोनों बातें बुद्धिविरुद्ध नहीं, क्योंकि यह दोनों ही सच्ची हैं। जो कुछ जिह्वा से अथवा आत्मा से बताया जावे, वह शब्दों के बिना नहीं हो सकता। उसने जब शब्द बतलाये तो उनमें ग्रहण करने की शक्ति थी। उसके द्वारा उन्होंने परमेश्वर के ग्रहण कराने से अपनी योग्यतानुसार ग्रहण किया। और बोलने के साधनों की आवश्यकता बोलने और सुनने वाले के अलग (=दूर) अलग होने पर होती है, क्योंकि जो वक्ता मुख से न कहे और श्रोता के कान न हों,

तो न कोई शिक्षा कर सकता है और न कोई श्रवण। परमेश्वर चूंकि सर्वव्यापक है, इसलिए उनके आत्मा में भी विद्यमान था, पृथक् न था।

परमेश्वर ने अपनी सनातन विद्या के शब्दों को उनके अर्थात् चारों के आत्माओं में प्रकट किया और सिखाया। जैसे किसी अन्य देश की भाषा का ज्ञाता किसी अन्य देश के अनभिज्ञ मनुष्य को जिसने उस भाषा का कोई शब्द नहीं सुना—सिखा देता है, उसी प्रकार परमेश्वर ने जिसकी विद्या व्यापक है, और जो उस विद्या की भाषा को भी जानता था—उनको सिखा दिया। यह बातें बुद्धि-विरुद्ध नहीं। जो इनको बुद्धिविरुद्ध कहे वह अपने दावे को युक्तियों द्वारा सिद्ध करे। पुराण जो पुरानी पुस्तकें हैं अर्थात् वेद के चार ब्राह्मण हैं—वह वहीं तक सत्य हैं जहां तक वेद के विरुद्ध न हों। और जो अठारह पुराण नवीन हैं जैसे भागवत, पद्मपुराणादि वह प्राकृतिक नियमों और विद्या के विरुद्ध होने से सत्य नहीं, नितान्त झूठे हैं।

मौलवी:—पुराण मत की पुस्तकें हैं या विद्या की ?

स्वामी:—वह प्राचीन पुस्तकें अर्थात् चारों ब्राह्मण विद्या की और पिछली भागवतादि पुराण मत की पुस्तकें हैं, जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ।

मौलवी:—जब वेद विद्या की पुस्तक है और पुराण मत की पुस्तकें हैं, और आपके कथनानुसार असत्य हैं, तो आर्यों का धर्म क्या है ?

स्वामी:—धर्म वह है जिसमें निष्पक्षता, न्याय और सत्य का स्वीकार और असत्य का अस्वीकार हो। वेदों में भी उसी का वर्णन है, और वही आर्यों का प्राचीन धर्म है। और पुराण केवल पक्षपात-पूर्ण सम्प्रदायों अर्थात् शैव, वैष्णवादि से सम्बन्धित है, जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ।

मौलवी:—पक्षपात आप किसको कहते हैं ?

स्वामी:—जो अविद्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुसंग से किसी अपने स्वार्थ के लिए न्याय और सत्य को छोड़कर असत्य और अन्याय को धारण करना है—वह 'पक्षपात' कहलाता है।

मौलवी:—यदि कोई इन गुणों से रहित हो, आर्य्य न हो, तो

आर्य्य लोग उसके साथ भोजन और विवाहादि व्यवहार करेंगे या नहीं ?

स्वामी:—विद्वान् पुरुष भोजन तथा विवाह को धर्म अथवा धर्म से सम्बन्धित नहीं मानते, प्रत्युत इसका सम्बन्ध विशेष रीतियों, देश तथा समीपस्थ वर्गों से है। इसके ग्रहण अथवा त्याग से धर्म की उन्नति अथवा हानि नहीं होती, परन्तु किसी देश अथवा वर्ग में रहकर किसी अन्य मत वाले के साथ इन दोनों कार्य्यों में सम्मिलित होना हानिकारक है, इसलिए करना अनुचित है।

जो लोग भोजन तथा विवाहादि पर ही धर्म अथवा अधर्म का आधार समझते हैं, उनका सुधार करना विद्वानों को आवश्यक है। और यदि कोई विद्वान् उनसे पृथक् हो जावे, तो वर्ग को उससे घृणा होगी और यह घृणा उसको शिक्षा का लाभ उठाने से वंचित रखेगी। सब विद्याओं का निष्कर्ष यह है कि दूसरों को लाभ पहुंचाना। और दूसरों को हानि पहुंचाना उचित नहीं।

(रविवार १७ सितम्बर १८८२; भादों सुदी पंचमी सं० १९३९)।

पांचवा प्रश्न—

मौलवी:—समस्त धर्म वाले अपनी धार्मिक पुस्तकों को सबसे उत्तम और उनकी भाषा को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं, और उसको उस कारण का कार्य भी कहते हैं। जिस प्रकार की बौद्धिक युक्तियां वह देते हैं, उसी प्रकार आपने भी वेद के विषय में कहा। कोई प्रमाण प्रकट न किया, फिर वेद में क्या विशेषता है?

स्वामी:—पहले भी इसका उत्तर दे दिया गया है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों और प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध विषय जिन पुस्तकों में होंगे, वह सर्वज्ञ की बनाई हुई नहीं हो सकतीं। और कार्य का होना कारण के बिना असम्भव है। चार मत जो कि समस्त मतों का मूल हैं, अर्थात् पुराणी, जैनी, इंजील तौरेत वाले किरानी, कुरानी—इनकी पुस्तकें मैंने कुछ देखी हैं और इस समय भी मेरे पास हैं। और मैं इनके बारे में कुछ कह भी सकता हूं, और पुस्तक भी दिखा सकता हूं। उदाहरणार्थ:—पुराण वाले एक शरीर से सृष्टि का आरम्भ मानते हैं—यह अशुद्ध है, क्योंकि शरीर संयोगज है, इसलिए वह कार्य है, उसके लिए कर्ता की अपेक्षा है।

जिन्होंने इस कार्य को इस प्रकार सनातन माना है कि कोई इसका रचयिता नहीं, वह भी अशुद्ध है, क्योंकि संयोगज पदार्थ स्वयं नहीं बनता। इंजील और कुरान में अभाव से भाव माना है। यह चारों बातें उदाहरणार्थ विद्या के नियमों के विरुद्ध हैं, इसलिए इनकी वेद से समता नहीं कर सकते। वेदों में कारण से कार्य को माना है, और कारण को अनादि कहा है। कार्य को प्रवाह से अनादि और संयोगज होने के कारण सान्त बताया है। इसको समस्त बुद्धिमान् मानते हैं। मैं सत्य और असत्य वचनों के कारण वेद की सत्यता और मतस्थ पुस्तकों की असत्यता कथन करता हूं।

यदि कोई सज्जन इसको प्रकट रूप में देखना चाहें तो, मैं किसी दिन तीन घंटे के भीतर उन मतों की पुस्तकों को प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध सिद्ध करके दिखा सकता हूं। यदि कोई नास्तिक वेद में से प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कोई बात दिखायेगा, तो उसको विचार करने के पश्चात् केवल अपनी अज्ञानता ही स्वीकार करनी पड़ेगी। इसलिए वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं, न कि किसी मत विशेष की।

छठा प्रश्न—

मौलवी:—क्या प्रकृति अनादि है?

स्वामी:—उपादान कारण अनादि है।

मौलवी:—अनादि आप कितने पदार्थों को मानते हैं?

स्वामी:—तीन—परमात्मा, जीव और सृष्टि का कारण, यह तीनों स्वभाव से अनादि हैं। इनका संयोग, वियोग, कर्म तथा उन का फलभोग प्रवाह से अनादि है। कारण का उदाहरण:—जैसे घड़ा कार्य, उसका उपादान कारण मिट्टी, बनाने वाला अर्थात् निमित्त कारण कुम्हार, चक्र दंडादि साधारण कारण, काल तथा आकाश समवाय कारण।

मौलवी:—वह वस्तु जिसको हमारी बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती, हम उसको अनादि क्यों कर मान सकते हैं?

स्वामी:—जो वस्तु नहीं है, वह कभी नहीं हो सकती, और जो है वही होती है। जैसे इस सभा के मनुष्य जो थे तो यहां आये।

यहां हैं तो फिर भी कहीं होंगे। विना कारण के कार्य का मानना ऐसा है, जैसे वन्ध्या के पुत्र उत्पन्न होने की बात कहना। कार्य वस्तु से चारों कारण, जिनका ऊपर वर्णन किया है, पहले मानने पड़ेंगे। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं जिसके पूर्वकथित चार कारण न हों।

मौलवी:—सम्भव है कि जगत् का कारण, जिसे आप अनादि कहते हैं, कदाचित् वह भी किसी अन्य वस्तु का कार्य हो। जैसे कि बिजली के बनने में कई साधारण वस्तुयें मिलकर ऐसी शक्ति उप्पन्न हो जाती है जो अत्यन्त महान् है। इस वार्तालाप के परिणाम से प्रकट है कि प्रत्येक वस्तु के लिए कोई कारण चाहिए। तो कारण के लिए भी कोई कारण अवश्य होगा।

स्वामी:—अनादि कारण उसका नाम है, जो किसी का कार्य न हो। जो किसी का कार्य हो उसको अनादि अथवा सनातन कारण नहीं कह सकते, किन्तु वह परम्परा और पूर्वापर सम्बन्ध से कार्य कारण नाम वाला होता है। यह बात सब विद्वानों को जो पदार्थ विद्या को यथावत् जानते हैं, स्वीकरणीय है। किसी वस्तु को चाहे जहां तक अवस्थान्तर में विभक्त करते चले जावें, चाहे वह सूक्ष्म हो चाहे स्थूल, जो उसकी अन्तिम अवस्था होगी--उसको कारण कहते हैं। और यह जो बिजली का दृष्टान्त दिया—वह भी निश्चित कारणों से होता है, जो उसके लिए आवश्यक हैं। अन्य कारणों से वह नहीं हो सकती।

सातवां प्रश्न––

मौलवी:—यदि वेद ईश्वर का बनाया होता, तो अन्य प्राकृतिक पदार्थों सूर्य, जल तथा वायु के समान संसार के समस्त साधारण मनुष्यों को उसका लाभ पहुंचना चाहिए था ?

स्वामी:—सूर्यादि सृष्टि के समान ही वेदों से सब को लाभ पहुंचता है, क्योंकि सब मतों और विद्या की पुस्तकों का आदिकारण वेद ही हैं। और इन पुस्तकों में विद्या के विरुद्ध जो बातें हैं, वह अविद्या के सम्बन्ध से हैं। क्योंकि यह सब पुस्तकें वेद के पीछे बनी हैं। वेद के अनादि होने का प्रमाण यह है कि अन्य प्रत्येक मत की पुस्तक में वेद की बात गौण अथवा प्रत्यक्ष रूप से पाई

जाती है, और वेदों में किसी का खंडन मंडन नहीं। जैसे सृष्टि विद्या वाले सूर्यादि से अधिक उपकार लेते हैं, वैसे ही वेद के पढ़ने वाले भी वेद से अधिक उपकार लेते हैं, और नहीं पढ़ने वाले कम।

मौलवीः—कोई इस दावे को स्वीकार नहीं करता कि किसी काल में वेद को समस्त मनुष्यों ने माना हो। और न किसी मत की पुस्तक में प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से वेदों का खंडनमंडन पाया जाता है।

स्वामी:—वेद का खंडन मंडन पुस्तकों में है, जैसे कुरान में बेकिताब वाले और एक ऊती ईश्वर के मानने वाले, जैसे बाइबिल में पिता पुत्र और पवित्रात्मा, होम की भेंट, ईश्वर को प्रिय, याजक, महायाजक, यज्ञ, महायज्ञ आदि शब्द आते हैं। जितने मतों के पुस्तक बने हुए हैं, बीच के काल के हैं। उस समय के इतिहास से सिद्ध है कि मुसलमान, ईसाई आदि जंगली थे, तो जंगलियों को विद्या से क्या काम ?

पूर्व के विद्वान् पुरुष वेदों को मानते थे, और वर्तमान समय में शब्द विद्या (फ़िलालोजी) के परीक्षक मोक्षमूलर आदि विद्वान् भी संस्कृत भाषा तथा ऋग्वेदादि को सब भाषाओं का मूल निश्चित करते हैं[1]। जब बाइबिल, कुरान नहीं बने थे, तब वेद के अतिरिक्त दूसरी मानने योग्य पुस्तक कोई भी नहीं थी। मनुष्य की उत्पत्ति का आदि काल ही ऋषियों की वेदप्राप्ति का समय है, जिसको १६६०८५२६६७ वर्ष हुए। इससे प्राचीन कोई पुस्तक नहीं है।

पांडे मोहनलाल जी ने कहा कि मौलवी साहब के शास्त्रार्थ के प्रथम दिन तो राणा साहब नहीं आये थे, परन्तु उन्होंने शास्त्रार्थ लिखित होना स्वीकार किया था। अन्तिम दिन श्री महाराज पधारे और मौलवी साहब की हठ देखकर श्री दर्बार साहब ने कहा कि जो कुछ स्वामी जी ने कहा है वह निस्सन्देह ठीक है। फिर शास्त्रार्थ नहीं हुआ। कविराज श्यामलदास जी ने भी इसका समर्थन किया।

१. योरोप में जब संस्कृत भाषा पहुंची, तब प्रारम्भ में अनेक विद्वानों ने यही मत प्रकट किया, परन्तु कुछ काल पीछे यहूदी ईसाई मत के पक्षपात और राजनीतिक कारणों से योरोपियन भाषा-वैज्ञानिकों ने संस्कृत से पूर्व एक काल्पनिक भाषा की सत्ता स्वीकार करके संस्कृत और लैटिन आदि भाषा को बराबर का दर्जा दे दिया। —सम्पा०

परिशिष्ट (१)

सम्पादक 'आर्य-दर्पण' को भेजा गया पत्र

नमस्ते,

आपने जो गत मास के पत्र में शास्त्रार्थ-काशी मुद्रित किया था, उसमें जो किसी को कुछ संदेह रहा हो तो दिसम्बर १८६९ के 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' (The Hindu Commentator) पत्र में देख लेवें। उसमें संस्कृत में यह शास्त्रार्थ बहुत उत्तम रीति से काशी वालों की ओर से छपा है। यद्यपि उसमें बहुत जगह गड़बड़ कर दी है, परन्तु सत्य छिपा नहीं है। उसमें से दो चार बातें जैसी की तैसी लेकर और नीचे उन पर कुछ नोट्स लिख कर भेजता हूं। कृपा करके मुद्रित कर दें—

दयानन्दो[1] नाम साधुः सद्धर्माविर्भावविनासद्धर्मपरिलोपनेऽहंकृत-संकल्पः।

दयानन्द नाम एक साधु है, जिन्होंने सत्यधर्म-प्रचार तथा असत् धर्म के निवारण का बेड़ा उठाया है।

दयानन्द स्वामी—स्वर्गादौ इन्द्रादयो देवाः सन्ति न वा ?

स्वर्ग आदि लोकों में इन्द्रादि देवता हैं या नहीं ?

विशुद्धानन्द स्वामी—मन्त्रमयी देवता। [महाराज-भ्रूकुंचनम्[2]]

वेदोक्त मन्त्र ही देवता हैं। [महाराज का भौंहें चढ़ाना[2]]

द०—कथमुपासना ?

फिर उपासना किस प्रकार होगी ?

१. यह एडीटर 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' का वाक्य है।

२. जब विशुद्धानन्द जी ने केवल मन्त्र मात्र ही को देवता बता दिया, तो काशी-नरेश ने समझा होगा कि प्रतिमा-पूजन का तो खण्डन अपनी ही ओर से हो गया।

वि०—प्रतीकोपासना, शालिग्रामादौ[1] ।

शालिग्राम[1] आदि मूर्तियों में प्रतीक रूप से उपासना होगी ।

द०—क्व वेदे लिखितमिदम् ?

ऐसा वेद में कहां लिखा है ?

वि०—एकस्य हि सामवेदस्यैव सहस्रशाखा:, भवता सर्वा एव दृष्टा:[2] ?

एक सामवेद की ही सहस्र शाखायें हैं, क्या आपने सब देखी हैं[2] ?

द०—शृणु, शृणु, सहस्रवर्त्मा सामवेदः सहस्रमार्गकः—इति तस्यार्थ:, संहिता तु सर्वत्र शाखासु एका एव ।

सुनो, सुनो, सहस्र शाखाओं में सहस्र प्रकार के व्याख्यान (सामवेद के गान प्रकार) किये गये हैं, परन्तु सब शाखाओं की संहिता तो एक ही है ।

वि०—स एव ईश्वर:[3] ।

वही ईश्वर है ।

द०—(उपहसन्) हेः । स-ए-व-ई-श्वरः । अलमनर्थविचारणेन यत्प्रकरणं तद्वद ।

---

१. पहले तो वेदों के मन्त्र मात्र ही को देवता बतलाया, अब शालिग्राम आदि को देवता कहने लगे । अच्छा गड़बड़ है । किसको सत्य मानें ?

२. जब प्रकृत प्रश्न का उत्तर न दे सके तो प्रकरणान्तर पर दौड़ गये । इससे इनका अभिप्राय यह जान पड़ता है कि मुख बंद न हो, जो चाहो अंड बंड कहते रहो ।

३. वेदों के विषय में विशुद्धानन्द जी ने यह पूछा था कि वेद ईश्वर का क्या सम्बन्ध है ? उस पर स्वामी जी ने कहा कि कार्य-कारण-सम्बन्ध हैं । फिर विशुद्धानन्द जी ने कहा कि कार्य-कारण सम्बन्ध से वेद नहीं रह सकते । इस पर स्वामीजी ने कहा कि परमेश्वर में जो कुछ भी नहीं रह सकता, तो आकाश में किसी वस्तु का सम्बन्ध कैसे हो सकेगा, यह कहो ? तो देखिये विशुद्धानन्द जी आकाश ही को ईश्वर बताने लगे । धन्य है ऐसी विचित्र पण्डिताई को । जब पण्डित लोग ही आकाश को ईश्वर कहें, तो फिर अपण्डित ईंट पत्थरों को क्यों न ईश्वर समझें ?

(हंस कर) हां, वही ईश्वर है। जिस बात का यहां सम्बन्ध नहीं है, उसका विचार करना व्यर्थ है। जो प्रकरण की बात है, वह बोलिये।

वि०—[पृष्ठे दत्तवामहस्तः][1] अरे, बाबा तूं अभी कुछ पढ़ा नहीं, कुछ दिन पढ़।

विशुद्धानन्द ने श्री महाराज की पीठ पर बांया हाथ रखकर यह हिन्दी वाक्य कहा—'अरे बाबा०'

द०—[हस्तं बलाद् दूरीकृत्य] भवता सर्वं पठितम् ?

(हाथ को बलपूर्वक दूर हटा कर) आपने सब कुछ पढ़ लिया है?

वि०—[प्रहस्य] सर्वम्।

(हंस कर) हां, सब पढ़ लिया है।

द०—[पुनः प्रत्युपविश्य] व्याकरणमपि ?

(फिर समीप बैठ कर) क्या व्याकरण भी ?

वि०—तदपि।

हां, वह भी।

द०—[रक्तेक्षणः] कल्मसंज्ञा कस्य ? [गर्जयन्] वद वद।

(आंखें लाल कर) कल्म संज्ञा किसकी है ? (गरजते हुए) कहो कहो !

पं० बाल शास्त्री[2]—कल्म संज्ञा महाभाष्ये······

श्रीमन्महाराजस्तु गभीरधीश्चारुचक्षुर्दृष्ट्वाऽऽद्यन्तं विचार-कोलाहलं नहि तृप्तिं जगाम। ततः प्रकाशितवांश्च क्रमादिदं स्वाग-

१. यह लो, शास्त्रार्थ तो संस्कृत में हो रहा था, भाषा पर जा कूदे। सभा के बीच ऐसी अयोग्य बात कहना और ऐसा काम अविद्वानों के सदृश करना, पण्डितों का काम नहीं होता। यहां स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वामी विशुद्धानन्द जी से जब उत्तर न बन पड़ा, तो क्रोध में आकर ऐसा अनुचित काम किया।

२. जब व्याकरण जानने की प्रतिज्ञा कर ली तो फिर क्यों आप ही उत्तर न दिया ? उस समय स्वामी विशुद्धानन्द जी का चुप रह जाना और स्वामीजी के प्रश्न के उत्तर को पं० बालशास्त्री का उद्यत होना, पाठकगण ही विचारें कि क्या प्रसिद्ध करता है ?

तम् । अस्तु, दयानन्दो धृष्टो मूर्खश्च[1] परं न एकेन केनचित्कोविदेन पराजेयः संभाव्यते । स हि षड्भिः कर्णो निपातित इति न्यायेन ध्वस्तबलो निरस्तः[2] । अपि च नहि तन्निरासेनैव विचारः शेषतां गतः । उद्भावयन्तु कोविदा मिश्राः खण्डनं मण्डनं मण्डनं खण्डनं च ग्रन्थाकारेण प्रकाशमेतु च तत्समस्तं मदाज्ञया इति ।

गम्भीर बुद्धि और उत्तम आंखों वाले महाराजा शास्त्रार्थ का आदि अन्त देखकर और कोलाहल पर विचार करके सन्तुष्ट तो न हुए, परन्तु उन्होंने अपना अभिप्राय क्रम से इस प्रकार प्रकट किया—दयानन्द ढ़ीठ और मूर्ख है, परन्तु उसे किसी एक विद्वान् के द्वारा पराजित करना सम्भव नहीं है। कर्ण को छः योद्धाओं ने गिराया था, इस न्याय से दयानन्द का बल नष्ट कर देने और उसे हरा देने मात्र से विचार समाप्त नहीं हुआ। मैंने सब पण्डितों को आज्ञा दी है कि आपस में मिल कर खण्डन-मण्डन और मण्डन-खण्डानात्मक ग्रन्थ बनाओ।

अपरे श्री हरेकृष्णव्यासः, श्री जयनारायण तर्कपंचाननः, श्री शिवकृष्ण वेदान्तसरस्वती इत्येवमादयो विद्वदग्रगण्याः कतिपया वदन्ति—विचारस्तु सम्यक् न भूतः[3], परं दयानन्दः पराजित[4] इति तु सत्यम् ।

---

१. ऐसे बड़े राजा-महाराजाओं के मुख से ऐसे दुर्वचनों का निकलना बड़े शोक की बात है।

२. जब तृप्ति तो हुई नहीं और अपने मुख से कहते हैं कि यह विचार ठीक नहीं हुआ, तो फिर न जाने कि यह कैसे विदित हो गया कि स्वामीजी की हार हो गई ? यहां पूर्वापर विरोध होने से कहने वालों का पक्षपात स्पष्ट ज्ञात होता है। जब आप लोगों के कथनानुसार विचार ठीक ठीक नहीं हुआ, तो इसी प्रकार हम भी कह सकते हैं कि काशी के पण्डितों को हार हुई। पण्डितों को उचित है कि सर्वदा सत्य ही कहें। किसी के दवाव से अन्यथा कहना कदाचित् योग्य नहीं है।

३. जब यहां ही गड़बड़ है, तो न जाने ग्रन्थ में क्या क्या भरा होगा ?

४. इसी पृष्ठ की पाद-टिप्पणी सं २ देखो—न० द०

श्री हरेकृष्णव्यास, श्री जयनारायण तर्कपंचानन, श्री शिवकृष्ण वेदान्त-सरस्वती आदि कतिपय विद्वान् कहते हैं कि शास्त्रार्थ तो ठीक नहीं हुआ, परन्तु यह सत्य है कि दयानन्द हार गया।

इस प्रेषित पत्र के लेखक कौन हैं, यह विदित नहीं होता। अन्तिम पाद-टिप्पणी के पास 'न० द०' लिखा है, जो लेखक के नाम का लघु रूप विदित होता है। 'आर्य दर्पण' के सम्पादक ने 'एडिटोरियल नोटस्' शीर्षक टिप्पणी दी है—जिसका सार यह है कि विशुद्धानन्द, बाल शास्त्री आदि काशी के पण्डित एकान्त में तो सब यही कहते हैं कि जो कुछ स्वामीजी कहते हैं, वह सब सत्य हैं, परन्तु क्या करें, यदि हम भी ऐसा ही कहने लगें तो सब लोग हमको छोड़ देंगे, हमसे वैर भाव रखने लगेंगे, फिर हम लोगों की जीविका कैसे चलेगी, आदि।

द्वितीय परिशिष्ट

श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा प्रकाशित काशी-शास्त्रार्थ-विवरण

सम्पादकीय

श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमी ऋषि दयानन्द के प्रसिद्ध काशी-शास्त्रार्थ में न केवल विद्यमान ही थे, अपितु उन्होंने वादी-प्रतिवादी के वचनों का अनुलेखन भी किया था[1]। उसी अनुलेखन[2] के आधार पर उन्होंने अपनी 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' संस्कृत-पत्रिका दिसम्बर १८६९ के अंक में प्रकाशित भी किया था[3]। यद्यपि हमें साक्षात् 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' पत्रिका का उक्त अङ्क उपलब्ध नहीं हुआ, पुनरपि उस अङ्क के अनुसार पं० मथुराप्रसाद दीक्षित ने सन् १९१६ में 'काशी-शास्त्रार्थ' को प्रकाशित किया था। उसकी द्वितीयावृत्ति गत वर्ष 'काशी-शास्त्रार्थ शताब्दी' के अवसर पर पुनः प्रकाशित हुई।

हमने उक्त शास्त्रार्थ को सूक्ष्मेक्षिका से देखा है। वैदिक यन्त्रालय द्वारा प्रकाशित तथा 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' से उद्धृत करके प्रकाशनार्थ भेजे गये और 'आर्य-दर्पण' के फरवरी १८८० के अङ्क में छापे गये अंश[4] से तुलना की है, उसके आधार पर हमारा विचार है कि पं० मथुराप्रसाद दीक्षित द्वारा प्रकाशित काशी-शास्त्रार्थ (संस्कृत-भाग) 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' में प्रकाशित शास्त्रार्थ की प्रतिलिपि है। परन्तु इस में पं० मथुराप्रसाद दीक्षित ने 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' में छपे अन्त्य अंश

---

१. परमहो काश्यानन्दोद्यानविचारे यत्र वयमास्म मध्यस्थाः, विशेषतो वादिप्रतिवादिवचसामनुलेखनेऽहमेक एवोभयपक्षतो नियुक्तः·········।

ऐतरेयालोचन पृष्ठ १२७।

२. अनुलेखन अर्थात् वादि-प्रतिवादी के वचनों को सुन कर लिखी गई टिप्पणियां (Notes)।

३. देखें पृ० ११ पर लिखा विवरण।

४. यह अंश प्रथम परिशिष्ट में हमने छापा है।

को जो काशी के पण्डितों के विरुद्ध पड़ता था, छोड़ दिया[1]। यह छोड़ा गया अंश पूर्व परिशिष्ट में 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' से उद्धृत पाठ में विद्यमान है। देखिए पूर्व पृष्ठ २०६, २१०।

इसी प्रकार शास्त्रार्थ के आरम्भ में शास्त्रार्थ अंश के नीचे रेखा देकर एक टिप्पणी छापी है, वह विचारणीय है। हमें वह टिप्पणी मथुराप्रसाद दीक्षित की प्रतीत होती है, क्योंकि उसमें जो परिचय दिया गया है वह अयथार्थ है। टिप्पणी इस प्रकार है—

नोट—गुर्जरनिवासी व्याकरणाद्यङ्गेषु सामवेदे च कृतश्रमः किन्त्वनधीतदर्शनस्ततो दर्शनविहीनो मथुरायां निवसति स्म कश्चिदन्धोऽनेकपण्डितमतविरुद्धः प्रतिमापूजनादीनामवैधत्ववादी तस्य शिष्यश्चत्वारिंशद्वयस्कः सुदीर्घकायः पुष्टो बलवांश्च लक्ष्यते।

यदि इस टिप्पणी का प्रारम्भिक **'गुर्जरनिवासी···दर्शनविहीनः'** अंश स्वामी दयानन्द के लिये लिखा गया है, तो मध्य में स्वामी विरजानन्द सम्बन्धी उल्लेख होने से आद्यन्त पाठ का सम्बन्ध नहीं बनता, और यदि उक्त अंश भी स्वामी विरजानन्द के सम्बन्ध में लिखा गया है (जैसा कि वाक्यरचना से विदित होता है), तो लेखक की भ्रान्ति स्पष्ट है। स्वामी विरजानन्द पंजाब के यजुर्वेदी ब्राह्मण थे।

हां, पं० मथुराप्रसाद दीक्षित द्वारा प्रकाशित शास्त्रार्थ में हमें दो एक स्थानों पर कोष्ठान्तर्गत दिये गये वक्ता के स्वरूपनिर्देशक वचनों के विषय में सन्देह है कि ये वचन इसी रूप में पं० सत्यव्रत सामश्रमी लिखित ही हैं या कुछ परिवर्तन हुआ है।

इसके साथ ही 'वैदिक यन्त्रालय' से प्रकाशित तथा 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' के अनुसार प्रकाशित आगे छापे जा रहे काशी-शास्त्रार्थ में कहीं कहीं कुछ भेद और कथा-प्रसंग का पौर्वापर्य मिलता है, कहीं कहीं न्यूनाधिक्य भी है। इनकी तुलना से हम इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि—

१ हमारे पास द्वितीय संस्करण है, अतः निश्चयात्मक रूप से हम नहीं कह सकते कि यह अंश पंडित मथुराप्रसाद दीक्षित ने छोड़ा था अथवा द्वितीय संस्करण छापने वालों ने। —सं०

१. पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने शास्त्रार्थ के टिप्पण (नोट) ही लिखे थे, प्रतिशब्द लेखन नहीं किया था। प्रतिपद लेखन उस समय सम्भव भी नहीं था।

२. 'वैदिक यन्त्रालय' से प्रकाशित 'काशी-शास्त्रार्थ', जो मूलरूप से वि० सं० १६२६ में ही लाइटप्रेस काशी में छपा था, का लेखन ऋषि दयानन्द ने किया था, और वह स्व स्मृति के आधार पर लिखा गया था।

३. दोनों शास्त्रार्थों के अध्ययन से कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति इस परिणाम पर पहुंच सकता है कि स्वामी दयानन्द का पराजय नहीं हुआ था, अपितु काशी के पण्डित वेदों में मूर्ति-पूजन नहीं दिखा सके। इस कारण पराजय उनका ही हुआ।

४. यदि इन दोनों मुद्रित अंशों को मिलाकर एक काशी शास्त्रार्थ तैयार किया जाये, तो निश्चय ही वह अधिक स्पष्ट और उसका विस्तृत रूप बन सकता है।

अब हम 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' के अनुसार पं० मथुराप्रसाद दीक्षित द्वारा प्रकाशित 'काशी-शास्त्रार्थ' आगे दे रहे हैं। इसका भाषा अनुवाद हमारा है। मथुराप्रसाद दीक्षित द्वारा प्रकाशित काशी-शास्त्रार्थ में जो हिन्दी अनुवाद दिया गया है, वह अनेक स्थानों पर मूल से असम्बद्ध और प्रमत्तप्रलापवत् लिखे गये समीक्षात्मक लेखों से परिवर्धित है। अतः वह सर्वथा त्याज्य है।

काशीस्थ राजसभायां प्रतिमापूजनविचारः

यथाक्रममिममवगन्तुमनेके कुतूहला, इति वचसा पत्रादिना च विज्ञायेह यत्नतोऽवतार्यते—

(हिन्दी)—इस शास्त्रार्थ के यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए अनेक लोग उत्सुक हैं, ऐसा लोगों के कथन और पत्रादि द्वारा जानकर यहां पर इस शास्त्रार्थ को बड़ी सावधानी से उद्धृत किया जाता है—

कश्चिद् दयानन्दो नाम साधुः सद्धर्माविर्भवविनासद्धर्मपरिलोपनेऽहं कृतसंकल्प इति घोषयन्नकस्मादावेदयत् काशीनरेशं श्रीमदीश्वरीप्रसादनारायणसिंहम्—'अशास्त्रीयत्वात् प्रतिमापूजनमवैधमिति विचारेण स्थिरीकर्तुमहमत्रागत' इति। विदित्वा च महीपालस्तदीयात्मभावं स-समादरं कृत्वा विचाराय सम्मतिमपालयद्धर्मपालकार्यम्। ततो भोग्यमात्यवरवर्योऽपि च त्यक्तभोगः सर्वशास्त्रसारसारोऽसारीकृतसंसारः सीतारामीयः श्रीहरिहरप्रसादशर्मा विचारस्य दिनस्थिराय मध्यस्थनिर्णयाय च प्रयतमानो वादिनमजिज्ञपत्। ज्ञापितश्च सः—'अहमुदासीनः, सर्वदैवावसरो मम, किञ्चात्र न मया कोऽपि मध्यस्थः स्वीक्रियते, सर्वेषामेव मिथ्याचारित्वदर्शनाद्', इत्यवोचद्वचः।

(हिन्दी)—कोई दयानन्द नामक साधु सद्धर्म की स्थापना और पाखण्ड-धर्म के विनाश का संकल्प लिये हुए अकस्मात् काशी नरेश श्रीमान् ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह की सभा में पहुंचे, और कहने लगे कि—"अशास्त्रीय होने के कारण प्रतिमा-पूजन अवैध है," यह मेरा मत है। इसे स्थिर करने के लिए शास्त्रार्थ-हेतु मैं उपस्थित हुआ हूं। यह जानकर राजा ने उनका आदर करते हुए राजोचित धर्म का पालन किया। तत्पश्चाद् राज-मन्त्री श्रीहरिहरप्रसाद शर्मा ने शास्त्रार्थ का दिन तथा मध्यस्थ नियत करने के विषय में स्वामी दयानन्द से पूछा। उत्तर में स्वामीजी ने कहा—'मैं साधु हूं, मुझे हर समय अवसर है, किन्तु सम्प्रति सभी लोग प्रतिमापूजन के मिथ्याचारों में लिप्त हैं, अतः मैं किसी को भी मध्यस्थ नहीं मान सकता।'

श्रुत्वैतद्राजकीयकोविदा लिखितविचारेऽभवन् कृतप्रयत्नाः, परं तत्रापि वाद्यसम्मतेर्न ते पूर्णमनोरथाः। ततो महाराजसदसि

योऽग्रवरः पण्डितः श्री ताराचरणो नाम तार्किकः स एकदा बलाबलपरीक्षणाय प्रच्छन्नवेशो वादिनमुपगत्यासौ नाधीतविद्योऽपितु साहसिकः, सहसा विचारोपहसने प्रवृत्त इति बुद्ध्वाऽबोधयत्तदेवान्यान् सभासदः काशीस्थानन्यांश्च संख्यावतः। इत्थमभवत् सर्वैरुपेक्षणीयः स साधुः समन्तात्। अथ पूर्वकीर्तिताह्वेन सीतारामीयेण विचारितम्—वाद्यसौ पण्डितो वा धूर्तो वा भवतु, परमेतर्हि काशीराजसभामुपगतो विचाराय कश्चिदिति भूतः प्रवादो दुर्निवार्यः, अतो लोकप्रबोधनाय तु विचारायोजनमवश्यं कार्यमिति, तथा च बहुभिः पण्डितैर्विचारसमयं निर्धार्य ज्ञापितः स वादी।

(हिन्दी)—यह सुनकर राजपण्डितों ने उनसे लिखित विचार करना चाहा, परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। तब महाराज की सभा के प्रमुख पं० ताराचरण एक दिन स्वामीजी के बलाबल की परीक्षा करने के लिए प्रच्छन्न वेश में उनके निकट पहुंचे, तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्वामीजी यद्यपि बहुत पढ़े नहीं हैं परन्तु साहसी हैं, तथा सहसा ही प्रतिपक्षी का उपहास कर देते हैं। यह सुनकर सभी पण्डितगण उनके प्रति उदासीन हो गये। तब पूर्वकथित पं० हरिहरप्रसाद ने कहा कि—यह साधु पण्डित हो या धूर्त, परन्तु उससे यदि शास्त्रार्थ न किया जायेगा तो यह लोक-प्रवाद फैलेगा कि काशी-राजसभा में उमसे कोई शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत नहीं हुआ। अतः लोक-प्रबोधन के लिए विचार अवश्य होना चाहिए। फलतः राजा ने अनेक पण्डितों से परामर्श कर समय निर्धारित कर वादी (स्वामी दयानन्द) को सूचित कर दिया।

अनन्तरमुपस्थिते तत्समये[1] राजाज्ञयाहूतैरत्रत्यैर्विविधशास्त्रविशारदैरन्यूनशतकोविदैः समलंकृते काश्यां दुर्गाकुण्डसमीपे आनन्दबागाख्योपवने सदानन्दः श्रीमानानन्दकाननेशो महाराजः श्रीमता यौवराज्याभिषिक्तेन प्रभुनारायणसिंहशर्मणा राजकुमारेण अन्यैश्चात्रत्यैः कतिपयैः सुप्रसिद्धधनिभिः स्वामात्यवर्गैश्च सानन्दं समागत्योक्तनाम तर्करत्नमादिशत्—क्रियतां तावत् शास्त्रार्थ इति, अहमपि वादिप्रतिवादिवचःसारानुवदने नियुक्तोऽग्रसरः पक्षपातशून्यो विचारदत्ताकर्णः संयतोऽस्मि।

१. वैक्रमीय १९२६ वर्षे तत्परदिनापराह्णे सौराग्रहायणस्य द्वितीयदिवसीये चान्द्रकार्तिकत्रयोदशीयुतमङ्गलवासरीये।

अनन्तर निर्धारित समय [अर्थात् चान्द्रमास (कार्तिक) शुक्ल त्रयोदशी, सौरमास अगहन (=मार्गशीर्ष) मंगलवार १९२६ वि०] में राजा द्वारा आमंत्रित विविध-शास्त्र-विशारद शताधिक पण्डितों, धनिक वर्ग, मंत्रियों तथा अपने पुत्र युवराज प्रभुनारायण सिंह शर्मा को साथ लेकर काशीराज काशी में दुर्गाकुण्ड के निकट आनन्द बाग में गये, जहां स्वामी दयानन्द का निवास था। तत्पश्चाद् काशी नरेश ने ताराचरण तर्करत्न से कहा—आप लोग शास्त्रार्थ करें। मैं भी उसे ध्यान देकर सुनूंगा तथा पक्षपात-रहित होकर जो पक्ष प्रबल होगा, उसी की ओर ध्यान दूंगा। तब—

ताराचरण:—वक्तुमुद्यतः।

ताराचरण बोलनें को उद्यत हुए।

दयानन्द:— (**एक एव वदेन्नान्य इति ब्रुवन्**) प्रतिमापूजनं वेदे क्व लिखितमिति कथ्यताम् ?

(**एक ही व्यक्ति बोले, दूसरा नहीं, इस प्रकार कहते पूछा**—) वेद में प्रतिमापूजन कहां लिखा है ? यह बताओ।

ताराचरण:—एतन्मात्रं प्रमाणं नान्यदत्र किं प्रमाणम् ?

केवल इतना अर्थात् वेदमात्र ही प्रमाण है अन्य नहीं, इसमें क्या प्रमाण है[1] ?

दयानन्द:—वेदे यन्न दृश्यते, तदप्रमाणेव।

जो वेद में उपलब्ध नहीं होता, वह अप्रमाण ही है।

ताराचरण:—कथम् ?

कैसे ?

दयानन्द:—वेदविरुद्धानां नास्ति प्रामाण्यम्।

वेद-विरुद्धों का प्रमाण नहीं होता।

ताराचरण:—अत्र किं प्रमाणम् ?

इसमें क्या प्रमाण है ?

---

१. यहां पाठक साफ देखेंगे कि जहां स्वामी जी ने पं० ताराचरण से स्पष्ट रूप से प्रतिमा-पूजन की सिद्धि के लिये वेद का प्रमाण मांगा, वहाँ वे उसका उत्तर देने की अपेक्षा प्रामाण्याप्रामाण्य विचार (=क्या प्रमाण है और क्या अप्रमाण) का नवीन प्रसंग ले बैठे। मूल प्रश्न से हट कर मानो वे स्थल: ही निग्रहस्थान में आ गये।

दयानन्दः—श्रुतिर्मनुस्मृतिश्च प्रमाणम् ।

श्रुति और मनुस्मृति प्रमाण है ।

ताराचरणः—तदेवोद्भावय ।

वही कहिये ।

दयानन्दः—प्रामाण्यविचारो भविष्यति पश्चात्, पूर्वं वेद-विचारः कर्तव्यः ।

प्रमाण-सम्बन्धी विचार पीछे किया जायेगा, पहले वेद-सम्बन्धी विचार करना चाहिये ।

ताराचरणः—वेदविचारः कीदृशः कर्तव्यः ? वेदस्य नित्त्यानित्त्यत्वविचारः, प्रामाण्याप्रामाण्यविचारो वा ?

कैसा वेद-विचार करना चाहिये ? वेद की नित्यता-अनित्यता का विचार, अथवा वेद के प्रामाण्य-अप्रामाण्य का विचार ?

दयानन्दः—पाषाणादिप्रतिमापूजनं वेदोक्तं न वा इति ?

पाषाणादि की प्रतिमा का पूजन वेदोक्त है वा नहीं[1] ?

ताराचरणः—अस्माकं यथा वेदस्य प्रामाण्यम्, तथा सर्वेषाम् ।

हमारे लिये जैसा वेद का प्रामाण्य है, उसी प्रकार सभी (अर्थात् स्मृति, इतिहास, पुराण इत्यादिक) का प्रामाण्य है ।[2]

दयानन्दः—वेदातिरिक्तानां न प्रामाण्यम् ।

वेद से अतिरिक्त ग्रन्थों का [स्वतः]प्रामाण्य नहीं है ।

ताराचरणः—वेदे क्व लिखितम्, अन्येषां नास्ति प्रामाण्यम्?

---

१. स्वामी जी ने ताराचरण की प्रकरणान्तर में प्रवृत्ति को रोकते हुए मूल विषय पर विचार करने के लिये प्रेरित किया ।

२. यहां ताराचरण ने वेद के तुल्य ही अन्य स्मृत्यादि परतः-प्रमाण ग्रन्थों को भी स्वतः-प्रमाण कोटि में रख कर मीमांसा-प्रतिपादित स्व-सिद्धांत **'वेदानां स्वतःप्रामाण्यम् अन्येषां परतः'** का स्वयं खण्डन करके पौराणिक प्रमाण-मीमांसा का वास्तविक रूप भी स्पष्ट कर दिया । तभी तो वर्तमान में भी स्वामी करपात्रीजी तथा पुरीमठ के स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ जी आदि कहते हैं कि—हमारे लिये तो नूतन ग्रन्थ 'हनुमान-चालीसा' भी वेदवत् ही प्रामाणिक है ।

वेद में कहां लिखा है कि अन्य ग्रन्थों का प्रामाण्य नहीं है[१] ?

दयानन्दः—वेदविरुद्धस्य नास्ति प्रामाण्यम् ।

वेद-विरुद्ध का प्रामाण्य नहीं है ?

ताराचरणः—वेदविरुद्धः कः ?

वेद से विरुद्ध कौन है ?

दयानन्दः—यो वेदे नास्ति ।

जिसका विधान वेद में नहीं है ।

ताराचरणः—इदं किं वेदोक्तं, अथवा भवत्कथितम् ?

यह कथन क्या वेदोक्त है, अथवा आप का कथन है[२] ?

दयानन्दः—त्वत्प्रश्नोत्तरं पश्चाद् दास्यामः, प्रतिमापूजनं वेदे लिखितं न वेत्येका* वक्तव्या ?

आप के प्रश्न का उत्तर पीछे दूंगा, पहले प्रतिमा का पूजन वेद में लिखा है या नहीं, यह एक बात कहो ।

बालशास्त्री—(**स्वस्वरूपं प्रकाशयितुमिच्छन्**) वेदानुक्तत्वेनाप्रामाण्यमुक्तम्, तत्र को हेतुः, स एव आदौ विचार्यः ।

(अपने को प्रकाश में लाने की इच्छा करते हुए **बालशास्त्री बोले**[३])--वेद में अनुक्त होने से अप्रामाण्य होता है, इसमें क्या हेतु है ? इसी पर पहले विचार होना चाहिये ।

---

१. यह पूछ कर ताराचरण ने स्वसिद्धान्त 'वेद की नित्यता वा अनादिता' पर ही आक्षेप किया है । नित्य अनादि वेद में उत्तरकालीन ग्रन्थों के प्रामाण्याप्रामाण्य का विचार भला कैसे हो सकता है ?

२. यहां ताराचरण की झुंझलाहट स्पष्ट है । वे वेद के स्वतः-प्रमाणत्व को भी अस्वीकार करते हुये उसे अनवस्था-दोष में ले जाना चाहते हैं । वेद का स्वतः-प्रामाण्य तो स्वयं प्रकाशमान सूर्य की भांति स्वतः-सिद्ध है, उसके लिए किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं होती । सभी आस्तिक दर्शनकार इस विषय में सहमत हैं ।

*इत्येका 'वार्ता' इति शेषः ।

३. ताराचरण के साथ हो रही कथा के मध्य में बालशास्त्री का कूदना, और वह भी अपना पाडित्य दर्शाने के लिए, (जैसा कि शास्त्रार्थ-संगृहीता ने कोष्ठान्तर्गत पाठ में स्पष्ट किया है), कहां तक उचित है ? यह सभी जान सकते हैं ।

दयानन्दः—प्रतिमापूजनं भवेत् अन्यद् विचारः[1], अतो वेदे अस्ति नास्ति वा इति विचारः पुरस्तात् कर्तव्यः, । श्रुतिस्मृतिप्रभृतीनां सर्वेषामेव मूलं वेदः ।

प्रतिमा-पूजन हो, यह अन्य विचार है[2]। इसलिये वेद में प्रतिमा-पूजन का विधान है या नही, यह पहले विचार करना चाहिये[3]। श्रुति स्मृति प्रभृति सभी ग्रन्थों का मूल वेद है ।

ताराचरणः—सर्वेषां वेदमूलकत्वे प्रामाण्योद्भावनं कर्तव्यम् ।

सब ग्रन्थों के वेदमूलक होने में प्रमाण कहो ?

दयानन्दः—मनुकात्यायनमहाभारतादिकमेव प्रमाणम् ।

मनु, कात्यायन, महाभारतादि ही प्रमाण हैं, अर्थात् इनके वचनों से सिद्ध होता है कि श्रुति स्मृत्यादि सभी ग्रन्थ वेद-मूलक हैं ।

ताराचरणः—तत्र तत्रैवान्येषामप्यस्ति प्रामाण्यम् ।

वहां-वहां ही अन्य ग्रन्थों का भी प्रामाण्य कहा है ।

दयानन्दः—किं वृथा वाग्वितण्डया । यथा मन्वादीनां मीमांसावेदान्तादिसूत्राणां च सर्वेषामस्ति मूलं वेदः, तथा प्रतिमा-पूजनस्यापि मूलं वेदो दर्शनीयः ।

व्यर्थ वाग्-वितण्डा से क्या लाभ ? जिस प्रकार से मन्वादि स्मृतियों तथा मीमांसा, वेदान्त आदि सब सूत्र ग्रन्थों का मूल वेद है, उसी प्रकार प्रतिमा-पूजन का भी मूलभूत वेद है, यह दिखाओ ।

विशुद्धानन्दस्वामीः—अहो किं वारंवारमेवं ब्रूषे वेदान्तादि-सूत्राणां सर्वेषामस्ति मूलं वेदः? '**रचनानुपपत्तेश्च नानुमानं प्रमाणम्**[4]', इत्यस्य मूलीभूतः को वेद इति वक्तव्यम् ?

---

१. अयं पाठः कश्चिद् भ्रष्टः प्रतिभाति । काशी-मुद्रिते संस्करणे पाठ-पूर्त्तिरेवं कृता—'प्रतिमापूजनं (न) भवेत् अन्यत्र विचारः' तथाप्यर्थोऽस्पष्ट एव ।

२. यहां पाठ कुछ भ्रष्ट है, इस कारण भाव स्पष्ट नहीं है ।

३. स्वामी जी बार बार इस बात पर बल देते हैं कि 'वेद में प्रतिमा-पूजन का विधान है या नहीं' इस पर विचार करो, परन्तु पंडित लोग सदा ही इस प्रश्न का उत्तर न देकर प्रसंगान्तर में प्रवृत्त हो जाते हैं । न्याय-शास्त्र के अनुसार प्रसंगान्तर का उत्थान करना 'निग्रह-स्थान' में गिना गया है ।

४. वेदान्त २।२।१।।

क्या बार-बार कहते हो कि वेदान्तादि सभी सूत्रों का मूल वेद है ? अच्छा बताइये 'रचनानुपपतेश्च' इस वेदान्त सूत्र (२।२।१) का मूल वेद में कहां है[1] ?

दयानन्दः—कोऽपि वदिष्यति अस्याक्षरस्य प्रमाणं देयम्, तत्र किं [सर्वेषामेव देयम्] ?

इस प्रकार तो कोई कहेगा--इस अक्षर की वेदमूलकता में प्रमाण दो, तो क्या वह सब देय होगा ?

बालशास्त्रीः—सर्वेषामेव देयम्, तथैव प्रतिज्ञानात् ।

सभी का उत्तर देना होगा, वेदमूलकता की प्रतिज्ञा करने से।

दयानन्दः—सर्वे वेदा नहि मे कण्ठस्थाः[2] । (**सभ्या हसन्ति**)

सारे वेद मुझे कण्ठस्थ नहीं हैं। (**सभ्यजन हंसते हैं**[3])

विशुद्धानन्दः— (**सन्तुष्टः गर्जन्**) तत्किमेवमभिलपसे ?

(**हावी होते हुए और गर्जना करते हुए**) तो फिर ऐसी बकवास[4] क्यों करते हो ?

दयानन्दः—(क्रुद्धः विशुद्धानन्दसम्मुखं प्रत्युपविश्य) तवास्ति किं सर्वमुपस्थितम् ? धर्मस्य किं लक्षणम् ? वद ।

(**क्रुद्ध होकर विशुद्धानन्द के सामने बैठकर**) क्या तुम्हें सब (शास्त्र) उपस्थित (कण्ठस्थ) हैं ? अच्छा बताओ, धर्म का क्या लक्षण है ?

विशुद्धानन्दः—**'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'**[5] इत्यादि सविस्तरम् ।

'चोदना=वेदवाक्य से विहित अर्थयुक्त कर्म धर्म है' इत्यादि विस्तार पूर्वक ।

दयानन्दः—(**वारयन्निव**) लक्षणं एकं बहु वा ?

---

१. पाठक यहां देखें—स्वामी विशुद्धानन्द ने पुनः मूल प्रश्न को टाल कर प्रसङ्गान्तर का उपन्यास किया है ।

२. अत्र कश्चित् पाठस्त्रुटितः प्रतिभाति ।

३. स्वामी जी द्वारा सरलता से सत्य बात कही जाने पर सभ्यों का हंसना, उनकी दुरभिसन्धि को घोषित करता है ।

४. 'मूर्तिपूजा वेद-विरुद्ध है' यह सिद्ध करने वा शास्त्रार्थ के लिये काशी क्यों आए ? यह इसका भाव है ।

५. मीमांसा १।१।२।

(रोकते हुए के समान) धर्म का लक्षण एक है, या बहुत हैं?

विशुद्धानन्दः—लक्षणं एकं, प्रमाणानि बहूनि ।

धर्म का लक्षण एक ही है, उसके प्रमाण (ज्ञापक) बहुत हैं ।

दयानन्दः—(हसति) हो हो लक्षणम् एकम् । दश लक्षणानि—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयः, शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो, दशकं धर्म लक्षणम्[1] ॥

(हंसते हैं) अहो लक्षण एक है [कहते हो]। धर्म के लक्षण दश हैं—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध इन दस लक्षणों वाला धर्म है ।

ताराचरणः—एते तु अनुमापकहेतवः, न तु लक्षणानि ।

ये तो धर्म के अनुमापक (ज्ञापक) हेतु हैं, लक्षण नहीं हैं।

दयानन्दः—(ताराचरणसम्मुखं प्रत्युपविश्य) किमनर्थं गर्जसे? अधर्मस्य लक्षणं वद ।

(ताराचरण के सन्मुख बैठकर) क्या निरर्थक बोलते हो ? तुम अधर्म के लक्षण बताओ ।

ताराचरणः—दुरदृष्टजनकत्वमधर्मत्वम् ।

बुरे अदृष्ट को उत्पन्न करने वाला अधर्म होता है ।

दयानन्दः—(अग्राह्यभावेन) किं त्वया[2] कोलाहलेन । (विशुद्धानन्दसम्मुखं प्रत्युपविश्य) त्वं वद स्वामिन् धर्मे का श्रुतिः ?

(अस्वीकार के भाव से) तुम्हारे द्वारा किये गये कोलाहल[3] से क्या लाभ ? (विशुद्धानन्द के सन्मुख बैठते हुए) स्वामिन् ! तुम बताओ धर्म में कौन सी श्रुति प्रमाण है ?

---

१. मनु ६।९२॥

२. किं त्वया कृतेन कोलाहलेन निरर्थकभाषणेनेत्यर्थः । यथा कोलाहले ध्वन्यात्मके सत्यप्यर्थज्ञानं न भवति ।

३. अधर्म के लक्षणों में श्रुति स्मृति का प्रमाण न देकर ताराचरण ने अपनी संस्कृत में लक्षण बताया, अतः स्वामीजी ने कोलाहल शब्द का प्रयोग किया है । जैसे कोलाहल में शब्द श्रवण होने पर भी अर्थ-ज्ञान न होने से वह निरर्थक होता है, उसी प्रकार ताराचरण का कथन निरर्थक है, यह इसका भाव है ।

विशुद्धानन्दः—**अग्निहोत्रं जुहोति** इत्येवमादिः।

'अग्निहोत्रं जुहोति' इत्यादि श्रुतियां धर्म में प्रमाण हैं।

दयानन्दः—(उपसंहरन्निव) किं प्रयोजनमप्रकृतविचारेण, वेदे क्वापि प्रतिमाशब्दो नास्ति, यत्र चैकत्र सामवेदेऽस्ति—**स परं दिवमन्वावर्तते**[1], यथा—'**यदास्यायुक्तानि यानानि प्रवर्तन्ते देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति गायन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्ति**'[2] इत्येवमादिः। तस्यापि ब्रह्मलोकपरता।

(उपसंहार करते हुए के समान) अप्रकृत विचार करने से क्या लाभ? वेद में कहीं भी प्रतिमा शब्द नहीं है, और जहां सामवेद में एक जगह है, वहाँ भी द्युलोक के अन्वावर्तन का कथन करने के पश्चात् द्युलोक से परे अन्वावर्तन का कथन करते हुए देवतायतनों के कम्पन और दैवत प्रतिमाओं के हंसने रोने गाने नाचने टूटने आंखें खोलने और बन्द करने का उल्लेख है, वह सब ब्रह्मलोकविषयक है।

ताराचरणः—तत्र को हेतुः?

उसके [ब्रह्मलोक-परता] में क्या हेतु है?

दयानन्दः—(पूर्ववत् ताराचरणसम्मुखं प्रत्युपविश्य)पश्यतु तावत् प्रकरणम्,[स्थिरः सन् बोधयति]**स प्राचीं दिशमन्वावर्तते** इत्यादिना, **स उदीचीं दिशमन्वावर्तते** इत्यादिना, **स प्रतीचीं दिशमन्वावर्तते** इत्यादिना, **स पृथिवीमन्वावर्तते** इत्यादिना च पञ्चभिः[3] खण्डैः पृथिव्यां यान्यद्भुतानि भवितुं युज्यन्ते, तेषां शान्तिस्तत्रत्यैरेवैवं कर्तव्येति विधाय, '**स दिवमन्वावर्तते** इत्यादिना द्युलोके यान्यद्भुतानि स्युस्तेषां शान्तिस्तत्रत्यैरेवैवं कर्तव्येति विधाय, **स परं दिवमन्वावर्तते** इत्यादिना तु ब्रह्मलोके यान्यद्भुतानि भव्यानि तेषां शान्तितत्रत्यैरेवैवं कर्तव्येति विद्यते। तथा च यथा मनुष्यलोके सन्ति

---

१. षड्विंश ब्राह्मण ५।६॥ २. षड्विंश ब्राह्मण ५।१०॥

३. अत्र चतुर्णामेव खण्डानां प्रतीकनिर्देश उपलभ्यते सोऽप्यक्रमः। 'स दक्षिणां दिशमन्वावर्तते' इत्यस्य निर्देशोऽत्र त्रुटितः प्रतिभाति, 'पञ्चभिः खण्डैः' इति स्पष्टनिर्देशात्। इमे पञ्च खण्डाः पञ्चमप्रपाठके ३, ४, ५, ६, ७ संख्याका ज्ञेयाः।

मनुष्यायतनानि, अस्ति च तत्कम्पनसम्भवः, तथा ब्रह्मलोके सन्त्येव देवायतनानि, अस्ति च तत्कम्पनसम्भवः एवमेव प्रकरणमनुगृह्यते ।

(पूर्ववत् ताराचरण के सम्मुख बैठकर)—पहले प्रकरण देखो । **(स्थिर होकर बताते हैं—)** 'वह प्राची दिशा को अनुवृत्त होता है' इत्यादि, 'वह उत्तर दिशा को अनुवृत्त होता है' इत्यादि, 'वह पश्चिम दिशा को अनुवृत्त होता है' इत्यादि, 'वह पृथिवी लोक को अनुवृत्त होता है' इत्यादि पांच[1] खण्डों से पृथिवी में जो अद्‌भुत कार्य हो सकते हैं उनकी शान्ति वहीं के लोगों को करनी चाहिये । ऐसा विधान करके 'वह द्युलोक को अनुवृत्त होता है' इत्यादि से द्युलोक में जो अद्‌भुत कार्य हों उनकी शान्ति वहीं के रहने वालों को करनी चाहिये । ऐसा विधान करके 'वह द्युलोक से परे अनुवृत्त होता है' इत्यादि से ब्रह्मलोक में जो अद्‌भुत कार्य हों, उनकी शान्ति वहीं के रहने वाले को करनी चाहिये । यह प्रकरण है । तथा जिस प्रकार मनुष्य लोक में मनुष्यों के आयतन=घर हैं और उनका [भूकम्पादि से] कम्पन सम्भव है, उसी प्रकार ब्रह्मलोक में देवायतन (=देवों के घर) हैं और उनका कम्पन भी संभव है । इसी प्रकार यह सारा प्रकरण संगत होता है ।

बालशास्त्री:—भवदुक्तप्रकरणेन तु नहीदमागतम्, यद् ब्रह्मलोकपरतैव तस्याः श्रुतेः, अपितु अन्वावर्तनं श्रूयते, तस्य कोऽर्थः ? **(स्वयं व्याचष्टे)** अनु आवर्तनम् अनुलक्ष्यीकृत्य आवर्तनम् । यदा ब्रह्मलोकादिषु अद्‌भुतानि लक्ष्यन्ते, तदा तानि लक्ष्यीकृत्य एवं शान्तिः, एवं च ब्रह्मलोकीयाऽपि शान्तिः मर्त्यैरेवानुष्ठेया ।

आप के कहे प्रकरण से यह सिद्ध नहीं होता कि उक्त श्रुति की ब्रह्मलोक-परता ही है, अपितु वहां अन्वावर्तन सुना गया है, उस का क्या अर्थ है ? **(स्वयं व्याख्या करते हैं)** अनु आवर्तन=लक्ष्य करके आवर्तन । जब ब्रह्मलोक में अद्‌भुत कार्य लक्षित हों, तब उनको लक्ष्य करके उक्त शान्ति करनी चाहिये । इस प्रकार ब्रह्मलोकीय शान्ति भी मर्त्यों (पृथिवीस्थ मनुष्यों) को ही करनी चाहिये ।

---

१. यहां चार खण्डों का प्रतीक निर्देश है और वह भी भिन्न क्रम से । दक्षिण दिशा के अनुवर्तन का यहां निर्देश छूट गया है । इससे स्पष्ट है कि लेखन में जैसे यहां पाठभ्रंश हुआ है, वैसे अन्यत्र भी संभव है ।

दयानन्दः—कथमसर्वज्ञा वयं जानीयाम, तत्र भूतमद्भुतम्? हम असर्वज्ञ कैसे जानेंगे कि वहां (ब्रह्मलोक में) अद्भुत कार्य हुआ ?

बालशास्त्री:—ग्रहादीनां गत्यादिकं यथा ज्ञायते, तथैव ।

ग्रहों की गति जैसे जानते हैं, उसी प्रकार जान लेंगे ।

दयानन्दः—किमनेन कष्टकल्पनेन ? तत्रत्यैरेवैवं कर्तव्यमित्येव सुलभम् ।

इस क्लिष्ट कल्पना से क्या लाभ ? वहीं (ब्रह्मलोक) के निवासियों द्वारा ही [वहां अद्भुतोत्पति की] शान्ति की जानी चाहिये, यही सुलभ है ।

बालशास्त्री:—तत्रानुष्ठातारः के भविष्यन्ति ?

वहां (=ब्रह्मलोक में) [शान्ति के] अनुष्ठाता कौन होंगे ?

दयानन्दः—स्वर्गादौ इन्द्रादयो देवाः सन्ति न वा ?

क्या स्वर्ग में इन्द्रादि देव नहीं हैं ?

विशुद्धानन्दः—मन्त्रमयी देवता । (**महाराजभ्रूकुञ्चनम्**[1])।

देवता तो मन्त्र-रूप हैं (**महाराज=काशीराज का भौवें सिकोड़ना**)[1]।

दयानन्दः—कथमुपासना ?

[मन्त्ररूप देवता की] उपासना कैसे होगी ?

विशुद्धानन्दः—प्रतीकोपासना, यथा शालग्रामादौ ।

प्रतीकोपासना के रूप से, जैसे शालग्राम आदि में [विष्णु आदि की] ।

---

१. ऐसा कहकर स्वामी विशुद्धानन्दजी ने मानो स्वमत का ही खण्डन कर दिया । स्वर्गादि लोकों में इन्द्रादि देवों की मनुष्यवत् सत्ता तथा उनके लौकिक ऐश्वर्य के तुल्य राज्यादि की कल्पना करने वाले पौराणिक यदि वेद-मन्त्रों को ही देवता मानने लगें, तो उनके पौराणिक देव-गाथा-वाद (Mythology) की तो समाप्ति ही हो जायेगी । विशुद्धानन्द जी मीमांसा के मत को मानते थे, अतः उन्होंने मन्त्रमयी देवता का सिद्धान्त रखा, परन्तु यह कथन सुनकर काशीराज की भौंहें सिकुड़ गईं, क्योंकि देवताओं को मन्त्ररूप मानकर मानो विशुद्धानन्द जी ने पौराणिक मान्यताओं पर कुठाराघात ही किया ।

दयानन्दः—क्व वेदे लिखितम् ?

[शालग्राम रूप पाषाण में प्रतीकोपासना करनी चाहिए] यह वेद में कहां लिखा है ?

विशुद्धानन्दः—एकस्य हि सामवेदस्यैव सहस्रशाखाः, भवता सर्वा एव दृष्टाः ?

एक ही सामवेद की सहस्र शाखायें हैं, आपने सब देखी हैं ?

दयानन्दः—शृणु शृणु ! 'सहस्रवर्त्मा सामवेदः' सहस्रमार्गक इति तस्यार्थः, संहिता तु सर्वत्र शाखासु एका एव ।

सुनो सुनो ! 'सहस्रवर्त्मा सामवेदः' का अर्थ सहस्र मार्ग वाला सामवेद है, संहिता तो सब शाखाओं में एक ही है।

विशुद्धानन्दः—मार्ग इति चेत्, कठेन प्रोक्ता कठीति[1] कथम्?

यदि मार्ग अर्थ करते हो, तो 'कठ' से प्रोक्त शाखा 'कठी'[2] कैसे कहलावेगी ?

दयानन्दः—तस्य तन्मार्गप्रवर्तकत्वात् ।

उसका उस मार्ग (=अध्ययन विशेष) का प्रवर्तक होने से ।

महाराजः—(**अमात्यमण्डलाभिमुखः**)—ययसा भी कभी होता है ?

---

१. 'कठी' इति शाखायाम् असाधुप्रयोगः। **कठचरकाल्लुक्** (अ०४।३।१०७) सूत्रेण तदध्येतृविशिष्टे प्रोक्तार्थे उत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, न तु छन्दसि केवलं प्रोक्तार्थे तद्धित उत्पद्यते, **छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि** (अ०४।२।६६) इति नियमात् । तस्मात् कठेन प्रोक्तां शाखामधीयते ये ते कठाः, तेषामाम्नायः काठकम् इत्येव भवति, गोत्रचरणाद् वुञ् (अ० ४।३।१२६) इत्यत्र **चरणाद् धर्माम्नाययोः** इति वचनात् ।—यु. मी.

२. स्वामी विशुद्धानन्द का कठ के द्वारा प्रोक्त शाखा अर्थ में 'कठी' प्रयोग करना, उनके व्याकरणानभिज्ञत्व का द्योतक है। कठ से केवल प्रोक्तार्थ में तद्धित का विधान और उसका (**कठचरकाल्लुक्** अ० ४।३।१०७) लुक् नहीं होता, अपितु अध्येता वेदिता विशिष्ट प्रोक्तार्थ में **कठचरकाल्लुक्** (अ०४।३।१०७) की प्रवृत्ति होती है। कठ से प्रोक्त शाखा का अध्ययन करने वाले 'कठ' कहाते हैं। यदि उनकी शाखा=आम्नाय-वेद अर्थ प्रकट करना हो तो **गोत्रचरणाद् वुञ्** (अ०४।३।१२६) सूत्र से वुञ् होकर 'काठक' प्रयोग उपपन्न होता है।

—यु० मी०

(काशीराज-अमात्य-मण्डल के सन्मुख)—ययसा (=ऐसा) भी कभी होता है ?

विशुद्धानन्दः—वेदा अपौरुषेयास्तत्र पुनः के प्रवर्तयितारः ?

वेद अपौरुषेय हैं, वहां कौन प्रवर्तक होंगे ?

दयानन्दः—वेदाः परमेश्वरे एव तिष्ठन्ति, परमेश्वर एव प्रवर्तकः, तत ऋष्यादयः।

वेद ईश्वर में ही रहते हैं, वही [सृष्टि के आदि में] उनका प्रवर्तक है, और [तत्पश्चात्] ऋषि लोग प्रवर्तक होते हैं।

विशुद्धानन्दः—किंलक्षणके ईश्वरे तिष्ठन्ति वेदाः ? न्यायनयसिद्धे नित्यज्ञानादिविशिष्टे ईश्वरे, पातञ्जलनयसिद्धे क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टे पुरुषविशेषे, वेदान्तानुयायिनये सच्चिदानन्दस्वरूपे वा ?

किस लक्षण वाले ईश्वर में वेद रहते हैं ? न्यायदर्शन प्रतिपादित नित्यज्ञानादिविशिष्ट ईश्वर में, अथवा पातञ्जल योगदर्शन-सिद्ध क्लेश-कर्मविपाक-आशय से रहित पुरुष विशेष ईश्वर में, अथवा वेदान्तानुयायियों के मतानुसार सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर में[1]?

दयानन्दः—एवं भवन्नये ईश्वरा बहवः सन्ति ?

इस प्रकार क्या आपके मत में बहुत से ईश्वर हैं ?

विशुद्धानन्दः—सन्त्येव मतभेदे।

मतभेद होने से ईश्वर बहुत प्रकार के हैं।

दयानन्दः—लक्षणे भेदः, ईश्वरे वा ? ईश्वरज्ञानमतिकठिनम्।

भेद ईश्वर के लक्षण में है, अथवा ईश्वर में ? ईश्वर का ज्ञान अति कठिन है।

विशुद्धानन्दः—सुलभमिति केनोक्तम् ? कस्मिन् स्वरूपे तिष्ठन्ति वेदा, इति प्रकृतं वद।

१. स्वामी विशुद्धानन्द का यह कथन इस बात का द्योतक है कि वे न्याय, वेदांत, योग आदि आर्ष दर्शनों में परस्पर भेद मानते हैं, तथा इन दर्शनों द्वारा प्रतिपादित ईश्वर की मान्यताओं में भी आकाश पाताल जैसा अन्तर स्वीकार करते हैं; जब कि स्वामी दयानन्द ने षट् दर्शनों के समन्वय का सिद्धान्त प्रस्तुत करते हुये पतञ्जलि, गोतम तथा वादरायण के सिद्धांतों को परस्पर अविरुद्ध बताया है।

[ईश्वर का ज्ञान] सुलभ है, यह किसने कहा है ? किस स्वरूप वाले ईश्वर में वेद रहते हैं, इस प्रकृत का उत्तर दो।

दयानन्दः—सच्चिदानन्दस्वरूपे।

सच्चिदानन्द स्वरूप वाले ईश्वर में।

विशुद्धानन्दः—तत्र न किमपि, तत्र न किमपि। अस्तु वा, केन सम्बन्धेनेति वद ?

वहां (=सच्चिदानन्द स्वरूप में) कुछ नहीं रहता[1], कुछ नहीं रहता। अथवा रहता है तो किस सम्बन्ध से रहता है, यह कहो ?

दयानन्दः—कार्यकारणसम्बन्धेन।

कार्य-कारण-सम्बन्ध से (अर्थात् वेदरूपी कार्य का ईश्वर कारण है)।

विशुद्धानन्दः—(उच्चैः) स सम्बन्धो न वृत्तिनियामकः, अन्यथा धर्मे तिष्ठतु सुखम्।

(ऊंचे से) वह [कार्य-कारण-सम्बन्ध]वृत्ति का नियामक नहीं है, अन्यथा 'धर्म में सुख रहता है' [यह स्वीकार करना होगा]।

दयानन्दः—तत्र न किमपि तिष्ठति, कार्यकारणसम्बन्धश्च न वृत्तिनियामक इति चेत्, आकाशः केन सम्बन्धेन क्व तिष्ठति, इति वद ?

यदि [सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर में] कुछ नहीं रहता, और कार्य-कारण-सम्बन्ध भी वृत्ति का नियामक नहीं है, तो आकाश किस सम्बन्ध से किसमें स्थित है ?

विशुद्धानन्दः—स एव ईश्वरः।

वही (आकाश ही) ईश्वर है[2]।

---

१. नवीन वेदन्तियों के मत में भी कार्य सृष्टि सर्वव्यापक सच्चिदानन्द-स्वरूप ईश्वर में रहती है, वह सृष्टि में अनुप्रविष्ट माना गया है। तब भला वेद उसमें क्यों नहीं रह सकते ?

२. जब स्वामी विशुद्धानन्द को स्वामीजी के प्रश्न का उत्तर नहीं सूझा, तो आकाश को ही ईश्वर कह दिया। सभी दार्शनिक विद्वान् मानते हैं कि आकाश ईश्वर से भिन्न पदार्थ है। अतः आकाश को ही ईश्वर कहना स्वामी विशुद्धानन्द की स्वमूढ़ता का परिचायक है। आकाश और ईश्वर का व्याप्य-व्यापक संबन्ध है। **'बृहदारण्यक उपनिषद्'** में गार्गीयाज्ञवल्क्य संवाद में गार्गी के—'किस में आकाश ओत और प्रोत है ?' प्रश्न के

दयानन्दः—(उपहसन्) हेः ! स-ए-व-ईश्वरः ।

(उपहास करते हुए) हेः ! स-ए-व ईश्वरः=वही (=आकाश ही) ईश्वर है।

ताराचरणः—अस्य मुखव्यङ्ग्यस्य कोऽर्थः ?

इस मुख से व्यङ्ग्य का क्या अर्थ है ?

दयानन्दः—(क्रुद्धः) कोऽर्थ कोऽर्थः, अर्थसंज्ञा कस्य ?

(रोष में आकर) क्या अर्थ है, क्या अर्थ है [क्या कहते हो, बताओ] अर्थसंज्ञा किसकी है ?

ताराचरणः—विषयमात्रस्य ।

[इन्द्रियग्राह्य] विषयमात्र की ।

दयानन्दः—अलमनर्थविचारेण, तत्प्रकरणं वद ।

बस करो इस प्रयोजन-रहित [अप्रासंगिक] विचार से, उसी प्रकरण (=वेद में मूर्ति-पूजा का विधान कहां है ?) के विषय में बोलो ।

विशुद्धानन्दः—(पृष्ठे दत्तवामहस्तः) अरे बाबा ! तूं अभी कुछ पढ़ा नहीं, काशी में कुछ दिन पढ़। (हंसकर)—

घटं भित्वा पटं भित्वा कृत्वा गर्दभवाहनम् ।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत् ॥

(स्वामीजी की पीठ पर बायां हाथ रखकर)[1] अरे बाबा! तूं अभी कुछ पढ़ा नहीं, काशी में कुछ दिन पढ़।(हंस कर) घड़ा फोड़कर, कपड़ा फाड़कर, गधे पर चढ़ कर किसी भी प्रकार से मनुष्य को प्रसिद्ध होना चाहिये।

दयानन्दः—(हस्तं बलाद् दूरीकृत्य) भवता सर्वं पठितम् ?

(हाथ को बलपूर्वक हटाकर) आपने सब पढ़ा है ?

विशुद्धानन्दः—(प्रहस्य) सर्वम् ।

(हंस कर) हां सब पढ़ा है ।

उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा था—'आकाश उसी ब्रह्म में ओत और प्रोत है'। इससे स्पस्ट है कि स्वामीजी का पक्ष सर्वथा युक्त है, और ईश्वर में आधाराधेय न मानने पर उनका उक्त प्रश्न भी सुसंगत है ।

१. शास्त्रार्थ संस्कृत में हो रहा था। उसमें हिन्दी-भाषा का प्रयोग करना निग्रह-स्थान में आना है ।

दयानन्दः— (पुनः प्रत्युपविश्य) व्याकरणमपि ?

(पुनः सामने बैठ कर) व्याकरण भी पढ़ा है ?

विशुद्धानन्दः—तदपि ।

वह भी पढ़ा है ।

दयानन्दः— (रक्तेक्षणः) कल्मसंज्ञा कस्य ? (गर्जन्) वद ! वद !

(लाल आंखों वाले) कल्म संज्ञा किसकी है? (गर्ज कर) कहो कहो !

बालशास्त्री—कल्मसंज्ञा महाभाष्य एकत्र परिहासेन कथिता, न सा प्रकृतसंज्ञा । अपि च प्रकृतविचारणे प्रवृत्तस्त्वं कथमप्रकृतं विचारयसि? पुराणादीनां वेदविरुद्धता कथं ? तदेवोद्भावय ।

कल्म संज्ञा[1] महाभाष्य में एक स्थान पर परिहास के रूप में कही है, वह प्रकृत संज्ञा नहीं है । तुम प्रकृत (=वेद में मूर्ति-पूजन है या नहीं) विचार में प्रवृत्त हुए अप्रकृत का विचार कैसे करते हो[2] ? पुराण आदि की वेदविरुद्धता कैसे है, यही बताओ ।

दयानन्दः—(यथावदुपविश्य) शृणु ! शृणु ! म्लेच्छ-भाषाध्ययनादेः पुराणादौ निषेधोऽस्ति, वेदे क्वास्ति ?

(ठीक प्रकार से बैठकर) सुनो सुनो ! पुराणों में म्लेच्छभाषा पढ़ने आदि का निषेध किया है, वेद में वह निषेध कहां है ?

बालशास्त्री—(सभ्यान् पश्यन् पठति) 'न म्लेच्छितवै नापभाषितवै' इत्यादिः ।

(सभा में बैठे पुरुषों को देखते हुए पढ़ते हैं)—म्लेच्छ उच्चारण नहीं करना चाहिये, अपभाषण नहीं करना चाहिये ।

---

१. स्वामीजी ने विशुद्धानन्द स्वामीजी से पूछा कि—क्या व्याकरण भी पढ़े हो ? तो उन्होंने कहा कि—वह भी पढ़ा है । तब स्वामीजी ने उन को परीक्षा के लिए व्याकरणविषयक प्रश्न किया कि 'कल्म' संज्ञा किसकी है ? स्वामी विशुद्धानन्द इसका उत्तर नहीं दे सके, तो बालशास्त्री ने आगे बढ़कर उनकी लाज बचाई ।

२. बालशास्त्री भी स्वयं 'कल्म' संज्ञा किसकी है? इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाए । महाभाष्य पढ़ा होता, तब तो प्रश्न का उत्तर देते । जब स्वयं उत्तर नहीं दे पाये तब प्रकरण की दुहाई दी । जब स्वामीजी महाराज बार बार प्रकरण पर विचार करने की बात कहते थे, तब ये ध्यान नहीं देते थे । इतना ही नहीं, प्रकरण की बात उठाकर भी बालशास्त्री ने पुनः प्रकरणान्तर की कथा आरम्भ कर दी ।

दयानन्दः—मदभिमुखो वद, अन्यथा नाहं श्रोष्यामि, इति वदन् नासौ वेदः ।

(सभासदों की ओर क्या देखते हो ?) मेरे सन्मुख कहो, अन्यथा मैं नहीं सुनूंगा । फिर कहा कि तुम्हारा कहा वचन वेद का नहीं है।

विशुद्धानन्दः—'यद्युह वा श्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्' इत्यादि ।

यह साक्षात् श्मशान है जो शूद्र है, इसलिये शूद्र के समीप [वेद] नहीं पढ़ना चाहिये ।

दयानन्दः—किमिदं संहिता उत ब्राह्मणादिकम् ? दर्शय ! **(महाराजाभिमुखः)** गतरजन्यामागतेन राजपुरुषेण महाराजः पुस्तकाय विज्ञापितः, विचारसमये पुस्तकानि स्थाप्यानि इति ।

क्या यह संहिता का वचन है या ब्राह्मण का ? दिखाओ। **(महाराज के सम्मुख होकर)** गत रात्रि में आये हुए राजपुरुष के द्वारा महाराज को सूचित कर दिया था कि विचार के समय पुस्तक रखने चाहियें ।

महाराजः—(**नीचैः**) पण्डितों को कण्ठस्थ ही हैं ।

(धीरे से) पण्डितों को कण्ठस्थ ही हैं ।

देवदत्तः—(जनचतुष्टयव्यवहितो दण्डायमानः अत्युच्चैः) किमभिलप्यसे, वेदानां पुस्तकानि अत्र स्थाप्यानि, वेदानां पुस्तकानि अत्र स्थाप्यानि इति, कति वेदाः ?

(चार जनों से घिरा हुआ, दण्डा हाथ में लिये, ऊंचे स्वर से) क्या बकवास करते हो, वेदों की पुस्तकें यहां रखनी चाहियें, वेदों की पुस्तकें यहाँ रखनी चाहियें । वेद कितने हैं ?

दयानन्दः—(हसन्) मनुनैवोक्तम्—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्[1] ।।

(हंसते हुए) मनु ने ही कहा है—अग्नि वायु और आदित्य से यज्ञों की सिद्धि के लिए ऋक् यजु साम रूप तीन सनातन वेदों को प्राप्त किया ।

देवदत्तः—(भर्त्संयन्निव) एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्मा

१. मनुस्मृतौ १।२३।।

सामवेदः एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् नवधाऽथर्वणो वेदः वाकोवाक्य-मितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावान् शब्दस्य प्रयोगविषयः[1] । तत्सर्वं पठितम् ? एकस्य सामवेदस्यैव सहस्रशाखाः, तासां द्वावेवात्र अन्याः सर्वा ब्रह्मलोके । **(मुखभङ्ग्या हस्तप्रसारेण च तर्जयित्वा)** विचाराय आगतोऽसि, पाषाणादिप्रतिमापूजनमशास्त्रीयं, वाराणस्या-मेवं कथयसि, न जानासि किमियं काशीपुरी ? **(सभ्या अनेके सहर्षा हसन्ति तं निवारयन्ति च)** ।

(भर्त्सना सी करते हुए) एक सौ एक यजुर्वेद की शाखायें हैं, साम-वेद सहस्र शाखा वाला है, इक्कीस प्रकार का ऋग्वेद है, नौ प्रकार का अथर्ववेद है, वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण, वैद्यक शास्त्र, इतना शब्द के प्रयोग का विषय है । वह सब क्या पढ़ लिया है ? एक साम वेद की ही सहस्र शाखायें हैं, उनमें से दो ही यहां (=मर्त्य लोक में) हैं, शेष सब ब्रह्म लोक में हैं । **(मुंह बिगाड़ कर और हाथ फैलाकर डराते हुए—)** विचार के लिये आया है, पाषाणादि प्रतिमा का पूजन अशास्त्रीय है, इस प्रकार वाराणसी में कहता है, क्या नहीं जानते कि यह काशीपुरी है[2] ? **(अनेक सभासद सहर्ष हंसते हैं और उसको रोकते हैं)** ।

दयानन्दः—(सभयमूर्ध्वमुखस्तन्मुखं[3] पश्यन्) अत्र किं तव बलं वर्तते ?

---

१. महाभाष्ये पस्पशाह्निके (१।१। आ० १) ।

२. देवदत्त का धृष्टता तथा अपमानयुक्त कथन एवं व्यवहार यह सिद्ध करता है कि काशिराज तथा उनके वेतनभोगी पण्डितों का श्री महाराज को अपमानित करने का यह कूटनीतिक षड़यन्त्र था, [यह शास्त्रार्थ के अन्त में काशीनरेश द्वारा प्रकट किए गए विचारों से भी व्यक्त होता है] तभी तो स्वयं काशीनरेश की उपस्थिति में एक साधारण व्यक्ति को इतना दुस्साहस हुआ कि वह स्वामीजी का अपमान कर बैठा । यह कहना कि सामवेद की शेष (९९८) शाखायें ब्रह्मलोक में हैं, पौराणिक पण्डित का अज्ञान सूचित करता है । जिन ब्राह्मणों ने शताब्दियों से वेदाध्ययन करना छोड़ दिया, उनके लिये तो सारे वेद ही ब्रह्मलोक में चले गये । देवदत्त की इस उद्दण्डता पर सभास्थित लोगों का हंसना असद् व्यवहार की पराकाष्ठा है ।

३. इतः पूर्वमेव 'हसन्' इति निर्देशान्नूनमत्र 'अभयम्' इत्यस्य स्थाने 'सभयम्' पाठो लेखकप्रमादजो वा स्यात्, काशी संस्करणप्रकाशकैः परि-वर्तितो वा ।

(ऊर्ध्वमुख होकर भय-सहित[1] उसका मुख देखते हुए) इसमें तुम्हारा क्या बल है ?

ताराचरण:—अस्ति शास्त्रे बलम् ।

शास्त्र में बल है ।

दयानन्दः—यदस्ति शास्त्रं तदवलम्ब्य वद । अप्रत्यक्षं शास्त्रं पूर्वं स्थितमिति नाहं मन्ये ।

जो शास्त्र में [बल] है, तो उसको अवलम्बन कर बोलो । पहले कहे गये [पुराणादि शास्त्र प्रमाण] प्रत्यक्ष-विपरीत हैं । इससे यह मैं नहीं मानता ।

सभ्याः—किं किं मन्यसे ? तदेवोच्यताम् ।

क्या क्या [प्रमाण] मानते हो, वही कहो ।

दयानन्दः—ऋग्यजुः सामाथर्वेति चत्वारो वेदाः, आयुर्वेदो धनुर्वेदो गन्धर्ववेदोऽर्थवेद इति चत्वारः उपवेदाः, शिक्षादयः षडङ्गाः, ईशादयो दश श्वेताश्वतरकैवल्ये च द्वादश उपनिषदः, व्यासजैमिनि-बौधायनकात्यायनादीनि सूत्राणि, मनुस्मृतिर्महाभारतरूपमितिहासः, वाल्मीकीयरूपं रामायणञ्चेति ।

ऋक् यजुः साम अथर्व ये चार वेद, आयुर्वेद धनुर्वेद गन्धर्ववेद अर्थवेद ये चार उपवेद, शिक्षादि वेदाङ्ग, ईशादि दश और श्वेताश्वर कैवल्य मिलाकर १२ उपनिषदें, व्यास जैमिनि बोधायन कात्यायन आदि के सूत्र ग्रन्थ, मनुस्मृति, इतिहासरूप महाभारत और वाल्मीकीय रामायण ।

विशुद्धानन्दः—(तदभिमुखं प्रत्युपविश्य) व्याख्यानानि ?

(स्वामी दयानन्द के सन्मुख बैठकर) [इनके] व्याख्यान ग्रन्थ ?

दयानन्दः—सनातनानि तान्यपि ग्राह्याणि ।

जो प्राचीन व्याख्यान ग्रन्थ हैं, वे भी ग्राह्य हैं ।

विशुद्धानन्दः—(हसन्) श्लोकाः ?

(हंसते हुए) श्लोक[2] ?

---

१. इससे पूर्व ही स्वामी जी ने हंसते हुए उत्तर दिया, ऐसा स्पष्ट निर्देश है । अतः यहां या तो 'अभय=भयरहित होकर' के स्थान पर सभय पाठ लेखक प्रमाद से हुआ है या काशी के पण्डितों ने परिवर्तित किया है ।

२. यहां श्लोक से अभिप्राय स्वामी विशुद्धानन्द का पुराण के श्लोकों से है, इसलिये उत्तर में स्वामीजी ने वेद से अविरुद्धों को प्रमाण कहा है ।

दयानन्दः—वेदाविरुद्धाश्चेत्तेऽपि ग्राह्याः । अपि च महाभारतादिष्वपि वेदव्याकरणशिष्टाचारविरुद्धस्य न प्रामाण्यम् । **(प्रगर्ज्य पिष्टपेषणवत्)** वचनानां[1] केषामपि न प्रामाण्यम् ।

यदि वेद से अविरुद्ध हों, तो वे भी ग्राह्य हैं । और महाभारत आदि में भी वेद-व्याकरण शिष्टाचार से जो विरुद्ध है, वह प्रमाण नहीं । (पिष्टपेषणवत् गर्जना करते हुए)[2] [वेद-विरुद्ध] वचनों का किन्हीं का भी प्रमाण नहीं ।

माधवाचारीः—(उच्चैः) सुनिए ! सुनिए ! जरा मेरी भी सुनिए! तैत्तिरीय शाखा में है कि—'**यदा गच्छत्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणुतादाविरस्मै**'[3] यहां पर पूर्त शब्द है कि **वापीकूपतडागादीनां पूर्तत्वं** पाराशरस्मृतिसम्मतम् । एवञ्च वाप्यादीनामुत्सर्गविधिः क्व वर्तते, वेदे पुराणे वा ?

(ऊंचे से) [4]सुनिये सुनिये, जरा मेरी भी तो सुनिये । तैत्तिरीय शाखा के **यदा गच्छत्** मन्त्र में 'पूर्त' शब्द का पाठ है । पूर्त का अर्थ पराशर स्मृत्यनुसार वापी कूप तडाग आदि है । इस प्रकार वापी कूप आदि की उत्सर्ग विधि कहाँ है, वेद में या पुराण में ?

दयानन्दः—**(नीचैः)** पूर्तशब्दार्थे एव विरोधः, अतो निरुक्तमानय ।

(धीरे से) पूर्त शब्दार्थ में ही विरोध है[5], इसलिये निरुक्त लाओ ।

---

१. अत्र कश्चित् पाठस्त्रुटितः प्रतिभाति । यद्वा—प्रसंगानुसारं 'वेदविरुद्धाना' इत्यध्याहार्य वाक्यं पूरणीयम् ।

२. यहां कुछ भाग टूटा है, अथवा प्रसंगानुसार 'वेदविरुद्ध' इतने अंश का अध्याहार करके पूर्ति करनी चाहिये ।

३. तै. सं. ५।७।७।१।।

४. हिन्दी भाषा में बोलना निग्रह-स्थान जानना चाहिये ।

५. यहां पाठ कुछ भ्रष्ट प्रतीत होता है । वैदिक यंत्रालय में छपे काशी-शास्त्रार्थ के अनुसार पूर्त शब्द के वापी कूप तडाग आदि अर्थ स्वामी जी ने स्वीकार किये थे । दोनों शास्त्रार्थों की तुलना में यहां वैदिक यन्त्रालय से छपे काशी-शास्त्रार्थ का पाठ अधिक प्रामाणिक है । पूर्त शब्द बोधक मन्त्र भेद भी यहां महत्त्वपूर्ण है ।

माधवाचारीः—(**समदृष्टया ऊर्ध्वदृष्टया च समन्तादवलोक्य**) यह बात पांच वर्ष का लड़का भी समझता है कि श्रुतियों में पूर्त का विधान है। वापी कूपों का प्रतिष्ठान 'पूर्त' कहलाता है। अब वापी कूपों की प्रतिष्ठा पद्धति कहां है, वेद में या पुराणों में ? पुराण नहीं मानते, तो यह पूर्त कर्म कैसे सिद्ध किया जायगा ? (**पुस्तकमवलम्ब्य पठति**) "अजाह्वै ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पयन् गाथा नाराशंसीमेवाहुः"[1] इत्यादि ।

(**सम एवं ऊर्ध्व दृष्टि से सब ओर देख कर**[2]) यह बात……किया जायेगा । (**पुस्तक हाथ में लेकर पढ़ता है**) "**अजाह्वै ब्राह्मणानीतिहासान्** पुराणानि० इत्यादि ।

दयानन्दः—अत्र पुराणानीति ब्राह्मणविशेषणम् ।

सुनते ही यहां 'पुराणानि' ब्राह्मणानि का विशेषण है ।

विशुद्धानन्दः—(**पुस्तकं दापयित्वा स्वयञ्च तत्र दत्तदृष्टिः**) कथं दूरेऽन्वयः ?

(**पुस्तक दिलवाकर और स्वयं उस पर दृष्टि रख कर**) दूर अन्वय कैसे होगा ? (='ब्रह्मणानि' और 'पुराणानि' के बीच में 'इतिहासः' पद पढ़ा है)।

दयानन्दः—(**पुस्तकं परित्यज्य**) "**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे**"[3] अत्र यथा तथैव ।

(**पुस्तक छोड़कर**) '**अजो नित्यः**' इत्यादि [गीता २।२०] में जैसे व्यवधान में पुराण शब्द 'अज' का विशेषण है, वैसे ही यहां भी होगा ।

विशुद्धानन्दः—(**स्थिरभावेन**) तत्र न व्यवधानम् । सर्वेषामेव विशेषणत्वात् ।

(**स्थिर भाव से**) वहाँ व्यवधान नहीं है, सभी विशेषण हैं ।

बालशास्त्री—(**स्मारयन्निव**) विशेषणस्य फलं वक्तव्यम् ।

१. अनुपलब्धमूलम्, पाठोऽप्यत्राशुद्धः प्रतिभाति ।

२. हिन्दी भाषा का पाठ संस्कृत भाग में छपे के अनुसार पढ़ें । यहां भी भाषा में बोलना निग्रहस्थान जानना चाहिये ।

३. गीता २।२०॥

(स्मरण कराते हुए के समान) [ब्राह्मण शब्द के पुराण] विशेषण का फल बताओ।

दयानन्दः—पुराणविशेषणेन नवीनानां व्यावृत्तिः फलम्।

पुराण विशेषण का फल नवीनों की व्यावृत्ति (=हटाना) है।

विशुद्धानन्दः—इतिहासस्यापि विशेषणं देयम्।

[तब तो] इतिहास का भी [पुराण] विशेषण देना चाहिये।

दयानन्दः—दत्तमेव छान्दोग्यादौ। (सस्वरं पठति) 'विज्ञानं वाव ध्यानात् भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणम् चतुर्थमितिहासपुराणः।'[1]

[इतिहास का भी पुराण विशेषण] छान्दोग्य आदि उपनिषदों में दिया ही है। (स्वर सहित पढ़ते हैं) 'विज्ञानं........इतिहासपुराणः।

सभ्याः—(सशिरःकम्पनम्) नैवं नैवं पाठः। इतिहासः पुराणमित्येव पाठः। तथा च नात्र पुराणस्य विशेषणत्वं सम्भवति।

([निषेधात्मक] सिर हिलाते हुए) नहीं, ऐसा पाठ नहीं है। 'इतिहासः पुराणम्' ऐसा ही पाठ है। इस पाठ में [नपुंसकलिङ्ग] पुराण शब्द [पुल्लिङ्ग] इतिहास का विशेषण नहीं हो सकता।

दयानन्दः—(गर्जन्) इतिहासपुराणः इत्येवमेव पाठः इति, नो चेत् मत्पराजयः, अन्यथा युष्माकं पराजयः इति लिख्यताम्।

(गर्जना करते हुए) 'इतिहासपुराणः' ऐसा ही पाठ है। यदि ऐसा न हो तो मेरा पराजय समझा जाय, अन्यथा तुम लोगों का पराजय माना जाये, यह लिखो।

ताराचरणः—(सहासमुच्चैः) एतावत्कालमपि त्वत्पराजयोऽवशिष्टः किम्?

(हंसते हुए ऊंचे से) क्या अभी तक तुम्हारा पराजय बचा हुआ है[2]?

---

१. अत्र 'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्' (छा. ७।७।१) इति द्वितीयान्त पाठः। अजमेरमुद्रिते काशी-शास्त्रार्थे तु 'आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः' (छा० ७।२।४) इति श्रुतिरुपलभ्यते। अत्रस्थयोत्तरकथया चापि प्रतीयते यदत्र श्रुतिपाठनिरूपणे व्यत्यासः समजनीति।

२. स्वामीजी ने जब स्वपाठ की शुद्धि और काशीस्थ पण्डितों के पाठ की अशुद्धि के लिए 'पराजय' की शर्त पर उन्हें ललकारा तो पण्डित लोग बगलें झांकने लगे, और स्वपराजय को छिपाने के लिए ताराचरण ने 'उल्टा चोर कोत्वाल को डाटे' वाली उक्ति के अनुसार स्वामीजी से उक्त वचन कहे।

दयानन्दः—(अग्राह्यभावेन) नहि युष्माभिः पराजितोऽहम्। जयाजये युष्माकमेव स्वकीयेच्छा।

(अस्वीकार्य के भाव से) तुम लोगों से मैं पराजित नहीं हुआ हूं। जय पराजय में [यह] तुम्हारी अपनी ही इच्छा है।

ताराचरणः—अद्यापि विचारयितुं प्रवृत्तश्चेत् कथय।

अब भी यदि विचार करने के लिए प्रवृत्त हो, तो कहो।

दयानन्दः—(उपहसति)[1] को थोय, को थोय, हा हा हाः।

(उपहास) को थोय, को थोय, हाः हाः हाः (यहाँ 'कथय' शब्द के ताराचरण के बंगाली असाधु उच्चारण का अनुसरण किया है)।

ताराचरणः—(सकोपं) किमेवं मुखव्रीडनं कुरुषे? त्वत्सदृशा मे बहवश्छात्राः सन्ति।

(कुपित होकर) इस प्रकार मुंह क्या बनाते हो? तुम्हारे जैसे मेरे बहुत से छात्र हैं।

दयानन्दः—(प्रहस्य) वद! वद! यथा बहवो मूर्खाः प्रत्यहमागत्यागत्य मां विविधकटून् वदन्तो गच्छन्ति तथा त्वमपि वद।

(हंसकर) कहो कहो। जैसे बहुत से मूर्ख प्रतिदिन [मेरे पास] आ आकर मेरे प्रति विविध प्रकार का कटु भाषण करके चले जाते हैं, वैसे तुम भी कहो।

सभ्याः—(विमृश्य) किमनेन लौकिकेन? क्षणमात्रेणैव समस्तः कोलाहलो निवर्त्स्यति, तत्प्रकृतमनुसर।

(विचार कर) इस लौकिक [विवाद] से क्या लाभ? क्षणमात्र में ही सारा कोलाहल शान्त हो जायेगा, इसलिये प्रकृत बात कहो।

माधवाचारी—(अत्युच्चैः सवागाडम्बरम्) शुक्लयजुर्वेदीय-शतपथब्राह्मणे अश्वमेधप्रकरणे—अष्टमेऽहनि इतिहासपाठः, नवमे अहनि पुराणपाठः श्रूयते, पुराणानामप्रामाण्ये तत्र तत्पाठः कथं वेदविहितः?

(अति ऊंचे स्वर से वाडाम्बर सहित) शुक्ल यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण के अश्वमेध प्रकरण में—'आठवें दिन इतिहास का पाठ, नवम दिन पुराण का पाठ करने का विधान किया है। पुराणों का अप्रामाण्य मानने पर उनका वहां पाठ वेद-विहित कैसे होगा?

---

१. वाङ्गस्य ताराचरणस्य अकारस्य ओकारोच्चारणरूपानुकरणम्।

दयानन्दः—तत्रान्यथैव व्याख्येयम्, पुस्तकमानय।

वहाँ इसकी व्याख्या दूसरे प्रकार की है, पुस्तक लाओ।

माधवाचारीः—गृहाण, एवं पाठः—"अथाष्टमेऽहन् एवमेवैतास्विष्टिषु संस्थितास्वेषैवावृदध्वर्यविति ह वै होतरित्येवाध्वर्युर्मत्स्यः सामदो राजेत्याह, तस्योदकेचरा विशस्त इम आसत इति मत्स्याश्च मत्स्यहनश्चोपसमेता भवन्ति, तानुपदिशतीतिहासो वेदः सोऽयमिति किञ्चिदितिहासमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यति नप्रक्रमाञ्जुहोति। अथ नवमेऽहन् एवमेवैतास्विष्टिषु संस्थितास्वेषैवावृदध्वर्यविति ह वै होतरित्येवाध्वर्युर्स्ताक्ष्यो वै पश्यतो राजेत्याह तस्य वयांसि [विशस्तानीमान्यासत इति वयांसि] च वयो विद्यिकाश्चोपसमेता भवन्ति तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यति न प्रकमाञ्जुहोति।"[1]

लो, वहां ऐसा पाठ है—(शतपथ का "अथाष्टमे……जुहोति" संस्कृत में दिया पाठ पढ़ता है)।

दयानन्दः—(तत्पत्रं गृहीत्वा बहुकालमावर्ज्य प्रत्यावर्ज्य च दृष्ट्वा स्वगतं पश्यन्निव तूष्णीं स्थितः)।

उस पत्रे को लेकर बहुत काल तक लौटा पौटा कर और देखकर अपने मन में विचार करते हुए के समान चुप रहा।

विशुद्धानन्दः—हर हर महादेव, ब्रुवन् उत्थितः। सभाभङ्गः। करतालिध्वनिश्च।

हर हर महादेव! ऐसा बोलते हुए [स्वामी विशुद्धानन्द] खड़े हो गयें। सभा समाप्त हो गई और तालियां बजाई गईं।

[इसके आगे के 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' के पाठ, जिससे उनके पक्ष की हीनता स्पष्ट प्रदर्शित होती थी, को काशी के प्रकाशकों ने छोड़ दिया (नहीं छापा)। वह परित्यक्त पाठ भाग्यवश प्रथम परिशिष्ट में प्रदर्शित 'प्रत्नकम्रनन्दिनी से उद्धृत पाठ में सुरक्षित उपलब्ध है, हम उसे नीचे देते हैं—)

श्रीमन्महाराजस्तु गभीरधीश्चारुचक्षुर्दृष्ट्वाऽऽद्यन्तं विचारकोलाहलं नहि तृप्तिं जगाम। ततः प्रकाशितवांश्च क्रमादिदं स्वागतम्। अस्तु, दयानन्दो धृष्टो मूर्खश्च परं न एकेन केनचित्कोविदेन पराजेयः संभाव्यते। स हि षड्भिः कर्णो निपातित इति न्यायेन

---

१. शतपथ १३।४।३।१२,१३॥

ध्वस्तबलो निरस्तः। अपि च नहि तन्निरासेनैव विचारः शेषतां गतः। उद्भावयन्तु कोविदा मिश्राः खण्डनं मण्डनं मण्डनं खण्डनं च ग्रन्थाकारेण प्रकाशमेतु च तत्समस्तं मदाज्ञया इति।

गम्भीर बुद्धि और उत्तम आँखों वाले महाराजा शास्त्रार्थ का आदि अन्त देखकर और कोलाहल पर विचार करके सन्तुष्ट तो न हुए, परन्तु उन्होंने अपना अभिप्राय क्रम से इस प्रकार प्रकट किया—दयानन्द ढीठ और मूर्ख है, परन्तु उसे किसी एक विद्वान् के द्वारा पराजित करना सम्भव नहीं है। कर्ण को छः योद्धाओं ने गिराया था, इस न्याय से दयानन्द का बल नष्ट कर देने और उसे हरा देने मात्र से विचार समाप्त नहीं हुआ। मैंने सब पण्डितों को आज्ञा दी है कि आपस में मिलकर खण्डन-मण्डन और मण्डन खण्डनात्मक ग्रन्थ बनाओ।

अपरे श्री हरेकृष्णव्यासः, श्री जयनारायण तर्कपंचाननः, श्री शिवकृष्ण वेदान्तसरस्वती इत्येवमादयो विद्वदग्रगण्याः कतिपया वदन्ति—विचारस्तु सम्यक् न भूतः, परं दयानन्दः पराजित इति तु सत्यम्।

श्री हरेकृष्णव्यास, श्री जयनारायण तर्कपंचानन, श्री शिवकृष्ण वेदान्त-सरस्वती आदि कतिपय विद्वान् कहते हैं कि शास्त्रार्थ तो ठीक नहीं हुआ, परन्तु यह सत्य है कि दयानन्द हार गया।

[श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा प्रकाशित इस शास्त्रार्थ वृत्त से भी यह बात सूर्य की भांति स्पष्ट है कि काशी के पण्डित मूर्त्ति पूजा का विधान वेद से सिद्ध नहीं कर सके। सिद्ध करना तो दूर रहा, एक टूटा फूटा प्रमाण भी उपस्थित नहीं कर पाये। इतना ही नहीं, काशी के पण्डित लोग अनेक बार निग्रहस्थान में आकर पराजित हुए। एक बार तो छान्दोग्य पाठ पर स्वामीजी ने जय पराजय की शर्त लगाकर ताल ठोक कर पराजित किया। इतना ही नहीं, काशीस्थ पण्डितों द्वारा प्रकाशित इस शास्त्रार्थ में जान बूझकर छोड़े गये दोनों अंशों से स्पष्ट है कि शास्त्रार्थ में दयानन्द सरस्वती का पराजय नहीं हुआ अपितु काशीस्थ पण्डित मण्डली ही, पराजित हुई। —यु० मी०]

परिशिष्ट (३)

सहायक-ग्रन्थ-सूची

१. **ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास**—ले० युधिष्ठिर मीमांसक। प्रथम संस्करण २००६ वि०।

२. **श्रीमद्दयानन्दग्रन्थ-संग्रह**—सं० जगत्कुमार शास्त्री। प्र० गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली २०१० वि०।

३. **श्रीमद्दयानन्ददिग्विजयार्क (प्रथम खण्ड)**—ले० पं० गोपाल शास्त्री शर्मा। द्वितीय संस्करण १८८७ ई०।

४. **ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन**—सं० पं० भगवद्दत्त। श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, द्वितीय संस्करण २०१२ वि०।

५. **दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह**--सं० रघुनन्दन सिंह निर्मल। आर्ष साहित्य प्रचारक ट्रस्ट, दिल्ली।

६. **काशी-शास्त्रार्थ**—वैदिक यंत्रालय, काशी से प्रकाशित द्वितीय संस्करण १९३९ वि०।

७. **काशी-शास्त्रार्थ**—वैदिक यंत्रालय, अजमेर का १३ वां संस्करण २०२६ वि.

८. **काशी-शास्त्रार्थ का इतिवृत्त**—ले० आचार्य विश्वश्रवा व्यास, २०२६ वि०।

९. **काशी के विद्वानों का और स्वामी दयानन्द जी का सच्चा काशी शास्त्रार्थ**—सं० मथुरा प्रसाद दीक्षित।

१०. **दूषण-मालिका**—ले० (भारतेन्दु) हरिश्चन्द्र। खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर (पटना)।

११. **प्रतिमा-पूजन-विचार**—प्रकाशक (भारतेन्दु) हरिश्चन्द्र खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर (पटना) १८८८ ई०।

१२. **सत्यधर्म-विचार मेला-चांदापुर**—प्रथम संस्करण १९३७ वि० में प्रकाशित।

१३. **Mela Chandapur (Translated into Engliah)**—By Prof. Bawa Arjan Singh.

१४. **आर्य-दर्पण**—१८८० ई० की संचिका (शाहजहांपुर से प्रकाशित)।

१५. **देशहितैषी**—१९३९ वि० की संचिका (आर्यसमाज अजमेर से प्रकाशित)।

—×—

प्राचीन आर्ष वाङ्मय से सम्बद्ध तथा ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थ

१. यजुर्वेदभाष्य-विवरण (प्रथमभाग)—इस ग्रन्थ में महर्षि दयानन्द प्रणीत यजुर्वेदभाष्य के प्रथम दस अध्यायों पर ऋषिभक्त वेदमर्मज्ञ स्वर्गीय श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। मूल वेदभाष्य को ऋषि के हस्तलेखों से मिलान करके छापा गया है। विस्तृत भूमिका तथा वेदविषयक विविध टिप्पणियों से युक्त। बढ़िया कागज, सुन्दर मुद्रण, सुदृढ़ जिल्द। मूल्य १६-००

द्वितीय भाग छप रहा है।

२. ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्म-चरित। मू० ०-५०

३. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन परिशिष्ट सहित—सं० श्री पं० भगवद्दत्तजी। मू० ७-७५

४. संस्कारविधि—ले० महर्षि दयानन्द सरस्वती। द्वितीय संस्करण पर आधृत, अजमेर-मुद्रित संस्करणों के दोषों से रहित; टिप्पणियों से युक्त; शुद्ध मनोहर मुद्रण। मू० १-७५। सजिल्द २-२५

५. संस्कार-समुच्चय—लेखक—पं० मदनमोहन विद्यासागर। संस्कारविधि की व्याख्या तथा परिशिष्ट में अनेक समयोपयोगी कर्मों का संग्रह। सजिल्द मूल्य १२-००

६. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—सं० पं०युधिष्ठिर मीमांसक। मोटे टाइप, बड़े आकार में सुन्दर शुद्ध और सटिप्पण संस्करण। मू. १२-००

भूमिका पर किए गए आक्षेपों के उत्तर के लिए परिशिष्ट १-५०

७. निरुक्त-शास्त्र—श्री पं० भगवद्दत्तजी कृत नैरुक्त-प्रक्रियानुसारी हिन्दीभाष्य सहित। मू० १५-००

८. ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन—ले० प्रो० भवानीलाल जी भारतीय एम० ए०, पी-एच० डी०। मू० सजिल्द ६-०० मात्र।

९. पूना-प्रवचन (उपदेश-मञ्जरी)—ऋषि दयानन्द सरस्वती के १५ व्याख्यान मू० २-५०

१०. वैदिक-स्वर-मीमांसा—ले० पं० युधिष्ठिर मीमांसक। संशोधित परिवर्धित द्वितीय संस्करण। वैदिक स्वर-विषयक सर्वश्रेष्ठ विवेचनात्मक ग्रन्थ। उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत। मू० ४-००

११. वैदिक ईश्वरोपासना—पातञ्जल योगदर्शन के अत्युपयोगी सूत्रों की ऋषि दयानन्दकृत व्याख्या। आर्ट पेपर पर सुन्दर दुरङ्गी छपाई, मुख पृष्ठ पर आकर्षक ऋषि-चित्र। मू० ०-३०

१२. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द—लेखक श्री वासुदेव शर्मा। मूल्य २-००

१३. दैवम्-पुरुषकारवार्तिकोपेतम्—धातुपाठ का व्याख्यात्मक प्राचीन ग्रन्थ। मूल्य ६-००

१४—वामनीय लिङ्गानुशासनं स्वोपज्ञवृत्ति सहितम्—संस्कृत भाषा के शब्दों का लिङ्ग बोधक सरल संक्षिप्त ग्रन्थ। मू० २-००, सजिल्द ३-००।

१५. आर्याभिविनय—लेखक ऋषि दयानन्द सरस्वती। दुरंगा गुटका साईज। सजिल्द मू० १-००

१६. व्यवहारभानु—ले० ऋषि दयानन्द सरस्वती मूल्य ०-३५

१७. आर्योद्देश्यरत्नमाला— ,, ,, मू० ०-१०

१८. हवनमन्त्र— ,, ,, मूल्य ०-१०

१९. सन्ध्योपासनविधि— ,, ,, मूल्य ०-१२

२०. सन्ध्योपासनविधि—दैनिक हवन-मन्त्र सहित। मू० ०-२०

२१. पंचमहायज्ञविधि—ले० ऋषिदयानन्द सरस्वती मू० ०-३५

२२. विरजानन्द-प्रकाश—श्री पं० भीमसेनजी शास्त्री एम० ए०। श्री स्वामी विरजानन्दजी का अनुसन्धानपूर्ण प्रामाणिक जीवन-चरित्र। नया सस्ता संस्करण मू० १-५०

२३. वेद और निरुक्त—ले० पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। मू० ०-५०

२४. निरुक्तकार और वेद में इतिहास—ले० पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु। मूल्य ०-५०

२५. देवापि और शन्तनु के वैदिक आख्यान का वास्तविक स्वरूप—ले. पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। मूल्य ०-५०

२६. त्वाष्ट्री-सरण्यू आख्यान का वास्तविक स्वरूप—ले. पं० धर्मदेव जी। मूल्य ०-५०

२७. आत्मा की जीवन गाथा—श्री कर्मनारायण जी कपूर। मूल्य १-००

२८. अमीरसुधा—(भजनसंग्रह) मू० ०-५०

२९. वाल्मीकि-रामायण—हिन्दी-अनुवाद सहित। अनुवादक तथा परिशोधक—श्री पं० अखिलानन्द जी झरिया। बालकाण्ड मू० २-५०। अयोध्याकाण्ड मू० ३-५०। अरण्य-किष्किन्धाकाण्ड मू० ४-५०। सुन्दरकाण्ड मू० २-७५। युद्धकाण्ड छप रहा है।

संस्कृत भाषा के अध्ययन के लिये विशिष्ट सहा·

१—**संस्कृतवाक्यप्रबोध**—ऋषि दयानन्द कृत . पं० अम्बिकादत्त व्यास द्वारा 'अबोध-निवारण' ग्रन्थ के· गये आक्षेपों का पाणिनीय व्याकरण के अनुसार उ· गया है। मूल्य १-२५, (मूल मात्र) मूल्य ·

२—**शब्दरूपावली**—ले० पं० युधिष्ठिर मीमांसक। इस ग्रन्थ के द्वारा शब्दों के रूप बिना रटे समझ पूर्वक बड़ी सुगमता से स्मरण हो जाते हैं। मूल्य ०-७५

३—**संस्कृत पठनपाठन की अनुभूत सरलतम विधि**—ले० पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। इस ग्रन्थ के द्वारा बिना रटे संस्कृत भाषा और पाणिनीय व्याकरण का बोध कराया गया है। प्रथम भाग ३-५०

द्वितीय भाग—ले० पं० युधिष्ठिर मीमांसक। प्रथम भाग के निर्देशों के अनुसार। मूल्य ५-५०

४—**अष्टाध्यायी (मूल)**—सं० पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। मू० ०-७५

५—**धातुपाठ (मूल)**—अकारादि क्रम से गण-पद-सेट्-अनिट्· बोधक धातुसूची सहित। दो कालमों में छापा गया है। मूल्य १-००

६—**'लिट्' और 'लुङ्' लकार की रूप-बोधक सरल-विधि**—ले० राजा गोविन्दलाल बंसीलाल (बम्बई) मूल्य १-५०

७—**अष्टाध्यायी-भाष्य (प्रथमावृत्ति)**—पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत। इस ग्रन्थ में प्रत्येक सूत्र के पदच्छेद-विभक्ति-समास-अर्थ-उदाहरण-उदाहरणों की सिद्धि संस्कृत और हिन्दी में विस्तार से दर्शाई है। स्वर-प्रकरण के उदाहरण सस्वर दिये गये हैं।

प्रथम भाग १२-००; **द्वितीय भाग** १०-००; **तृतीय भाग** १०-००

८—**वर्णोच्चारणशिक्षा (पाणिनीय)**—ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या सहित। मूल्य ०-२५

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान—

रामलाल कपूर एण्ड संस पेपर मर्चेन्ट्स

गुरु बाजार, अमृतसर।] [नई सड़क, देहली।
बारी मार्केट सदर बाजार, देहली।] [बिरहाना रोड, कानपुर।
५१ सुतारचाल, बम्बई।] [२३२, माडल टाउन, सोनीपत (हरयाणा)

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, (सोनीपत—हरयाणा)